आकृति से ग्रहों और लग्नों की अचूक पहचान

— श्री रामाधार सिंह

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
पटना

आकृति से ग्रहों और लग्नों की अचूक पहचान

[एक अनूठा एवम् कठिन फलित ज्योतिषशास्त्रीय शोध-कार्य]

शोधकर्त्ता और

रचयिता

श्री रामाधार सिंह, बी० ए० (आनर्स), बी० एल०

भूतपूर्व उपश्रमायुक्त,

भारत के सर्वप्रथम हिन्दी पञ्चाङ्ग के प्रणेता (१९३८-१९४८ ई०)

लक्ष्मी निवास, नीलाचल, ग्रा०/पो० मड़वनियाँ, पालामऊ, बिहार, ८२२१२८ ।

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

प्रेमचन्द मार्ग, राजेन्द्रनगर, पटना

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ निर्माण-योजना के अंतर्गत भारत-सरकार, मानव संसाधन-विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग) के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित ।

प्रकाशित ग्रंथ-संख्या : २९६

प्रथम संस्करण : जुलाई, १९८६ ई०

मूल्य : रु० ७०-०० (सत्तर रुपए)

प्रकाशक :
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
प्रेमचन्द मार्ग, राजेन्द्रनगर
पटना-८०० ०१६

मुद्रक
रामनरेश सिंह
वाल्मीकि प्रेस
पटना-४

प्रस्तावना

□

शिक्षा-संबंधी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपालन के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत-सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रन्थों का अनुवाद किया जा रहा है और मौलिक ग्रन्थ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत-सरकार विभिन्न राज्य-सरकारों के माध्यम से तथा अंशतः केन्द्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिन्दीभाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत-सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य-सरकारों द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी के तत्वावधान में हो रहा है।

योजना के अन्तर्गत प्रकाश्य ग्रंथों में भारत-सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ 'आकृति से ग्रहों और लग्नों की अचूक पहचान' श्री रामाधार सिंह की मौलिक कृति है जो भारत-सरकार के मानव-संसाधन विकास-मंत्रालय (शिक्षा-विभाग) के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-सम्बन्धी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

लोकेशनाथ झा

(लोकेशनाथ झा)
शिक्षामंत्री, बिहार सरकार
अध्यक्ष,
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

जुलाई, १९८६ ई०
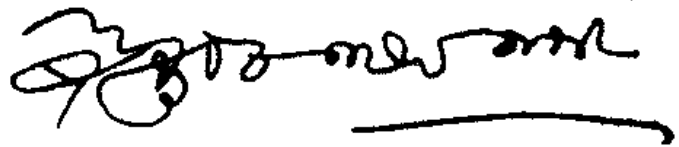
प्रकाशकीय

श्री रामाधार सिंह की पुस्तक 'आकृति से ग्रहों और लग्नों की अचूक पहचान' प्रकाशित करते हुए अकादमी को प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। ग्रहों और नक्षत्रों की सामान्य जानकारी लोगों के लिए लाभप्रद हो सकती है और इससे केवल भविष्य ही नहीं, वरन् व्यक्तित्व के सम्यक विकास में भी मदद मिल सकती है इसी दृष्टिकोण से इसका प्रकाशन आवश्यक माना गया है।

पश्चिमी देशों में, विशेषकर जापान में, किसी भी रोग का निदान करने के पूर्व सम्बन्धित ग्रहों की जानकारी रोगी का हाथ देखकर प्राप्त की जाती है। इससे रोग-निवारण में चिकित्सकों को पर्याप्त सहायता मिलती है। आशा है, इस ग्रंथ के प्रकाशन से सभी लोग लाभान्वित होंगे। इसके मुद्रण-क्रम में हमें अधिक ब्लौकों का निर्माण करना पड़ा है इसीलिए विवशता में इसका मूल्य अधिक रखना पड़ रहा है। उम्मीद है, जिज्ञासु पाठक पुस्तक की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इसे स्वीकार करेंगे।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन व्यक्तियों से हमें प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग मिला है, अकादमी उनके प्रति आभार प्रकट करती है।

(वैकुण्ठनाथ ठाकुर)
निदेशक,
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना

जुलाई, १९८६ ई०

प्राक्कथन

भगवान् की दया से अभी भारतवर्ष में फलित ज्योतिष का पठन-पाठन समाप्त नहीं हुआ है। यह एक विचित्र बात है। आज सौभाग्य से ही हमें यह भी कहने का अवसर मिल जा रहा है, नहीं तो वर्तमान वैज्ञानिक युग की चकाचौंध में मग्न अल्पज्ञों की ओर से जितना प्रहार इस विषय पर गत शताब्दियों में हुआ है उसे देखते आज इसका अस्तित्व मिट ही जाना चाहिये था। यदि गणित के विशेषज्ञों को सम्मान्य समझा जाय तो आज के युग में फलित शास्त्र का कोई स्थान नहीं होना चाहिये। यदि सचमुच उन उक्तियों में कोई तथ्य होता तो आज इस शास्त्र का नाम संसार से उठ गया होता। पर कोई चाहे कितना भी प्रसिद्ध क्यों न हो वह यदि विषयविशेष का विशेषज्ञ न हो तो उसकी उक्तियों का कोई मूल्य नहीं होता और न हो ही सकता है और इसीलिये ऐसी उक्तियाँ शास्त्र की सच्ची नींव पर कुठाराघात करने में समर्थ भी नहीं होतीं। वस्तुतः आज जितने विपक्षी वचन इस शास्त्र के मूलोच्छेद के लक्ष्य से कहे मिलते हैं वे सभी अनधिकारियों की ही उक्तियाँ हैं। किसी एक शास्त्र के विशेषज्ञ को किसी अन्य शास्त्र पर विरुद्धमत प्रदर्शन का अधिकार हो ही नहीं जाना चाहिये और न ऐसे अनधिकारियों को ही ऐसी बातें उठानी उचित है। पर बात होती है ठीक इसके विपरीत। अधिकांश कटाक्ष ज्योतिष के फलित भाग पर उन्हीं लोगों का होता है जिन्होंने इस शास्त्र को हृदयंगम करने का समुचित प्रयास नहीं किया है और न इसके पठन-पाठन में समय ही लगाया है। इस प्राक्कथन से ही पाठकों को विदित हो जायगा कि मेरा ध्यान इस शास्त्र की ओर किस विरुद्ध मानसिक परिस्थिति में आकर्षित हुआ और आगे चलकर क्यों इस शास्त्र पर मेरा विश्वास अटल हुआ। कहना नहीं होगा कि विश्वविद्यालय छोड़ने तक मैं स्वयं इसका कट्टर विरोधी था और यह पूर्णरूप से मान बैठा था कि इस ढोंगपूर्ण शास्त्र में सत्य का कोई अंश हो ही नहीं सकता। जब मैंने इस विषय का अध्ययन प्रारम्भ किया तो प्रायः इस शास्त्र के विरोध में पाये प्रमाणों को ही मैं यथावसर हृदयंगम करता था। करता ही क्या? सन् १९२७ ई० से आज तक किसी पण्डित ने मुझे कोई अकाट्य प्रमाण इस शास्त्र की वैज्ञानिक सत्यता का दिया नहीं। जो हिन्दी के ग्रन्थ अनूदित अथवा मौलिक मुझे मिले भी उनमें इस बात के पुट का सर्वथा अभाव ही था। अभी तक मेरी धारणा है कि इन लेखकों को स्वयं इसके अकाट्य वैज्ञानिक प्रमाण ज्ञात न थे क्योंकि उनका ज्ञान अधिकतर पुस्तकी ही था और उसमें अनुभव, अन्वेषण और इसकी जिज्ञासा के पुट का भी सर्वथा अभाव था।

आश्चर्य तो यह है कि हमारे यहाँ का कोई ऋषिप्रणीत मौलिक ग्रन्थ ग्रहों और राशियों के स्वरूपादि वर्णन से रहित नहीं है पर कालक्रम से, और परिपाटी छूट जाने से, सद्गुरु से शास्त्राध्ययन का अवसर नहीं रहा। देववाणी कालक्रम में न हमारी राष्ट्रभाषा रही और न हमारे विद्या विलास का साधन ही। एक राज्यसूत्र में न बँधे होने के कारण भारत का प्रत्येक भू-भाग अपनी प्रकृति के अनुकूल अपने अनोखे ढंग पर संगठित और संवर्द्धित होने लगा। फलस्वरूप वह अपनी अलग मातृभाषा का जन्मदाता हुआ। संस्कृत से लोगों का सम्बन्ध क्रमशः विच्छिन्न होने लगा तथा अपने प्राचीन ग्रन्थों से सीधा सम्पर्क भी टूटता गया।

यही कारण है कि अनेक प्रसिद्ध फलित ज्योतिषियों से पूछते रहने पर भी किसी ने लेखक को इस शास्त्र की सत्यता के पक्ष में अकाट्य वैज्ञानिक प्रमाण नहीं दिए। कालक्रम से जब आगे चलकर सन् १९३४ ई० के वर्षाकाल में मेरा साक्षात्कार डालटनगंज में दक्षिण भारत के आर्काट जिले के वालवानूर ग्राम के महाज्योतिषी स्वर्गीय पं० टी० वेंकटेश्वर अय्यर से हुआ तो प्रसंगवश उन्होंने मेरा ध्यान आकृति से लग्नादि-ज्ञान की पहचान की सम्भावना की ओर आकृष्ट किया। इस पर उन्होंने मुझे कोई मार्ग तो नहीं दिया पर उनके अव्यर्थ फल-कथन-शक्ति को देख कर मेरी आस्था इस शास्त्र पर लौट आई, क्योंकि चाहे इस गुत्थी का मूल कारण समझ में आवे या न आवे भविष्य फलादेशों को प्रत्यक्ष घटते देख और अनुभव कर कौन शास्त्र को उपेक्षित कर सकता है।

जहाँ तक मेरा अपना सम्बन्ध है, मैं जानता हूँ—यह नहीं कि किसी के कहने या लिखने पर विश्वास करके कहता हूँ—कि फलितशास्त्र का मूल बड़े मजबूत और वैज्ञानिक आधार पर उगा है और आगामी शताब्दियों में तो उसका बड़ा ही चमत्कारपूर्ण वैभव निश्चित है। शास्त्र अपने ऋषियों की देन और स्वदेशीय उपज होने पर भी इसकी उपेक्षा कर अब तक हमने इस पर जो बड़ा अत्याचार किया है उसका प्रायश्चित इसका उद्धार कर हमें ही करना है। मेरे आगे के कथन से हमारे देश के प्रतिभाशाली सामन्तों का ध्यान इस ओर आकृष्ट होकर इसकी समुन्नति का साधक हो यही हमारी साध है और इसीलिये यह छोटी-सी पुष्पाञ्जलि।

हमारा भारतीय ज्योतिष अति प्राचीन, और अधिक नहीं तो वेदों का समकालीन तो है ही क्योंकि वेदों का ही यह एक अंग है। कहा जाता है कि हमारा यह शास्त्र ४ लाख सूत्रों में विस्तृत है। ऐसी दशा में स्पष्टतः युगों से हमारे, मनीषियों के मनन, अध्ययन और उत्सर्ग का यह एक अति प्रिय विषय रहा है जिसपर अनेक ऋषियों ने परम्परा से अपने जीवन का उत्सर्ग कर इसकी सफलता और समृद्धि के निर्माण को अपना धन्य भाग माना है।

किन्तु इधर सदियों से अनेक राजनैतिक और सामाजिक, कारणों से फलित ज्योतिष प्रशासकीय उपेक्षा का विषय हो गया है जिससे इस शास्त्र पर जनसाधारण की अनास्था-सी हो गई है। गुप्त साम्राज्य काल के पश्चात लगातार सहस्राब्दियों तक इस देश के विदेशी शासनों में इसका स्तर बहुत नीचे गिर कर ही रह गया, इसका मूलोच्छेद नहीं हो गया, यही आश्चर्य है।

इस २०वीं सदी के प्रथम तीन दशकों में तो यह आधुनिक शिक्षित समाज की वैज्ञानिक चकाचौंध वाली दृष्टि में तो इसे एक पूरी ठगी ही कल्पित कर लिया गया था और इसके पठन-पाठन की ओर ध्यान देने वालों को मूर्ख ही समझा जाता था। विश्वविद्यालयों में तो हमारे राजनैतिक प्रतिबद्धता वाले व्याख्याताओं की निन्दा और उपेक्षा का पात्र तो यह विषय था ही उनके भय और प्रभाव में कोई विद्यार्थी इसके अध्ययन का नाम प्रत्यक्ष रूप में नहीं ले सकता था।

आश्चर्य तो यह है कि जो वैज्ञानिक न्यूटन प्रतिपादित सौरमण्डल की एकता को स्वीकार करता हुआ ग्रहों के पारस्परिक प्रभावोत्पादन द्वारा पृथ्वी पर विद्युतीय क्षेत्र की उत्पत्ति और उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया का अहर्निश प्रत्यक्षीकरण करता और स्वीकारता है, वह फलित ज्योतिष के आधारभूत सिद्धान्तों की सत्यता को तब तक कैसे अमान्य कर सकता है जब तक वह इस पृथ्वी पर की हवा का साँस लेकर ही जीवित रह सकने पाता है।

मैक्समूलर को इसी कारण कहना पड़ा था कि हमारे अज्ञान की खाई ऐसी अथाह है कि जिस फलित ज्योतिष का ज्ञान उच्च से उच्च शिक्षा का आदरणीय विषय है उसे हम जिप्सियों की ठग विद्या कह डालते हैं।

प्रश्न था कि जब हमारे ही ऋषियों के ही दुनिया को दिये इस शास्त्र का प्रचलन युगों नहीं तो शताब्दियों पुरातन काल से संसार में व्यापमान रहा है, और हमारे यहाँ की, जो ४ लाख सूत्रों में पिरोया हुआ अमूल्य निधि स्वरूप, हमें धरोहर में उपलब्ध है, तो क्या हमारे मूर्धन्य सम्मानित ऋषियों ने अपना सारा सिद्ध अनुशासित जीवन एक झूठे और निराधार विषय के पीछे गवाँ डाला है? अवश्य ही नहीं। तो फिर इसकी मूल वैज्ञानिक असलियत का निरूपण कर इस पर लगाए जाने वाले लांछन का मार्जन कर हमें ही तो इसे सत्य रूप में प्रतिष्ठित कर सकना चाहिए।

हमारे वेद दुनिया के सबसे पुराने रचित शास्त्र सर्वमान्य हैं और ज्योतिष वेदांग है। अतः इसकी प्राचीनता और मूलोद्गम में सन्देह का अवसर ही नहीं होना चाहिए। अतः यहाँ से ही संसार के अन्यान्य देशों में यह शास्त्र गया होगा

ऐसा अनुमान सहज ही लगाया जाना कोई अनुचित न होगा। कहते हैं कि चीन में इस शास्त्र का पूरा प्रचलन था और ग्रहण आदि अद्‌भुत आकाशीय नक्षत्र सम्बन्धी घटनाओं को पहले से ही घोषित कर रखने के लिए ई० सन् से 2600 वर्ष पूर्व भी शाही ज्योतिषी बहाल किए जाते थे। दुर्भाग्यवश तभी एक साल में वे गणित करने और इसे घोषित करने में विलम्ब कर गए और सारा देश आश्चर्य में डूब गया कि बिना पूर्व सूचना के ही सूर्य आकाश में तिरोहित हो गया, देश में इस अनहोनी दृश्य से खलबली मच गई। प्रशासन को उन ज्योतिषियों की सारी सम्पत्ति जब्त कर उन्हें देश से निष्कासित कर देना पड़ा।

प्राचीन काल्दियन लोगों के यहाँ सर्वविदित है कि यह शास्त्र ही उनका धर्म था। पिरामिड के जमाने में ही यह शास्त्र वहाँ से ही मिस्र में बढ़ कर तो प्रतिष्ठित था ही।

अमेरिका की प्राचीन जातियों में ई० सन् के सदियों पूर्व इस शास्त्र के प्रचलन के प्रमाण मिलते जा रहे हैं। मध्यकालीन यूरोपीय देशों में तो इस शास्त्र का घनघोर प्रचलन था और सफारियल का कहना है कि १८१८ के पहले अकेले यूरोपीय देशों में ही कई हजारों से भी अधिक प्रकार के भिन्न-भिन्न पंचाग प्रति वर्ष बनते और प्रचलित थे। यह वह जमाना था जब भारत में लगभग प्रत्येक मुख्य गाँव का अपना अलग-अलग पंचाग तैयार किया जाता था। भारत में गुप्त युग के बाद वाले युगों के विदेशी प्रशासनों के चलते राजनैतिक तथा सामाजिक कारणों से इस शास्त्र का विशेष ह्रास हुआ और २०वीं सदी के आते-आते यह लुप्तप्राय-सा होकर एक प्रकार से ठगी का ही माध्यम-सा रह गया था। कहना था कि भला जो तारा सैकड़ों प्रकाश वर्ष दूर टिम-टिमा रहा हो वह इस पृथ्वी के व्यक्ति विशेष के रूप की चिन्ता कर उसके भाग्य को कैसे निर्धारित और संचालित कर सकता है। मात्र यह कहना कि फलादेश सत्य उतरता है इसे सत्य प्रमाणित करने में इसलिए पर्याप्त नहीं था कि सत्य भविष्य कथन तो एक बाजीगरी भी हो सकती है, वैज्ञानिक तथ्य नहीं।

इसी वैज्ञानिक जिज्ञासा की पूर्ति के स्वरूप किये गये अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप ही आज मैं यह एक छोटी-सी ग्रंथपुष्पांजलि पाठकों को अर्पण कर पा रहा हूँ और आशा करता हूँ कि उन वैज्ञानिकों का यह एक मुँहतोड़ उत्तर सिद्ध होगा जो फलित ज्योतिष शास्त्र को निराधार और ठगी करार देने पर तुले हुए हैं।

कहना व्यर्थ है कि इस ग्रंथ में मैंने आकृति के जो अव्यर्थ लक्षण ग्रहों और लग्नों की पहचान के दिए हैं वे सब अपने ही अनुभव के फल हैं। जब तक उसके

अव्यर्थ होने का विश्वास अनुभव के बल पर जम नहीं गया तब तक कोई लक्षण इसमें अव्यर्थ नहीं कहा गया है। जहाँ कुछ भी संदिग्ध रह गया है वहाँ उसका उल्लेख स्पष्ट वैसा कर दिया गया है।

एक-एक विचार को स्थिर और दृढ़ करने में कितना परिश्रम, सुअवसर की प्रतीक्षा और धैर्य धारण करना पड़ा है उसे इस मार्ग पर अग्रसर होनेवाले विद्वान् ही सम्यक् हृदयंगम कर सकेंगे। इतने पर भी नहीं कहा जा सकता कि इनमें से किन-किन विचारों को दृढ़ और सुस्पष्ट करने में कितनी सफलता मिली है। यदि सहृदय विद्वान् पाठकों में से किसी एक को भी इन कथनों में से कोई फलित शास्त्र की अकाट्य जड़ जमाने के योग्य मालूम पड़ गया तो मेरा परिश्रम इतने से ही सफल हो जायगा। क्योंकि यह पुस्तिका इस धारणा को अपने देशवासियों के हृदय में बैठा देने के प्रयत्नस्वरूप ही लिखी जा रही है कि हमारे ज्योतिषशास्त्र का फलित विभाग बे-सिर-पैर का, झूठा और निराधार नहीं है। जब किसी व्यक्ति की आकृति में प्राप्त चिह्न से सम्बद्ध ग्रह की आकाशीय तत्कालीन स्थिति का ज्ञान हो जाता है तो ग्रह और व्यक्ति पर उसके प्रभाव का कार्य-कारण सम्बन्ध तो स्थापित हो ही जाता है, जिस मूल तर्क पर आधुनिक विज्ञान की आधारशिला निहित है।

अतः अब तो मैं यह नहीं कि किसी के कहने पर मानता हूँ बल्कि यह कि अब मैं स्वयं जानता हूँ कि फलित ज्योतिष एक पूर्ण ठोस और वैज्ञानिक आधार पर आधारित एक सच्चा आधुनिक तर्कसंगत कार्य-कारण-परक विज्ञान है, और आगामी शताब्दियों में इसका पूर्ण वैज्ञानिक वैभव का चमत्कारपूर्ण वृहद् विकास तो निश्चित है।

यदि हमारे इस प्रयास से फलित ज्योतिष के मूलाधार की सत्ता और वैज्ञानिक स्वरूप के प्रभावित होने में थोड़ी भी सहायता मिल सकी तो मैं अपना सारा परिश्रम सफल और सार्थक समझूँगा।

विनीत,

रामाधार सिंह

लक्ष्मी निवास, नीलाचल, ग्रा०/पो० मड़वनियाँ,

पालामऊ, बिहार ८२२१२८

आभार प्रदर्शन

बीसवीं शती के प्रारम्भिक दो-तीन दशकों में फलित ज्योतिष को विश्व-विद्यालयों के मूर्धन्य व्याख्याताओं और विद्वानों द्वारा एक असत्य और ठगी का शास्त्र माना और उसे नीची दृष्टि का पात्र समझा और समझाया जाता था। उनके विशुद्ध तर्कों से प्रभावित मैं उन दिनों फलित ज्योतिष को अवैज्ञानिक, गलत और त्रुटिपूर्ण शास्त्र हृदय से मान बैठा था और इस पर आस्था रखने वालों को अज्ञान का शिकार मानता था। इसी मनोदशा में एक बार वसन्तोत्सव के दिन मेरा साक्षात्कार पंडित सहदेव पाण्डेय जी से अपने गाँव के एक निकटवर्ती डाक बंगले पर एकाएक हुआ और उन्होंने फलित ज्योतिष की हृदय से सराहना की और मुझे इस ओर आकर्षित करना चाहा पर मैं उनसे तर्क में जुट कर इसे ठीक उल्टा प्रमाणित करने पर तुल गया। पर्याप्त वाद-विवाद में भी जब मेरा समाधान न कर सकने पर भी अन्त में उन्होंने अपने पक्ष में इस सर्वविदित शास्त्रोद्धरण का सहारा लिया और कहा कि यह उन ऋषियों का मत है जो वन में स्वच्छन्द फल-मूल खाकर जीते थे। उन्हें कोई गलत मत व्यक्त करने की क्या आवश्यकता थी? अतः आपको इस पर विश्वास कर शास्त्र को अंगीकार कर लेना चाहिए।

"प्रत्यक्षं ज्योतिष शास्त्रं
चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।"

मैंने उन्हें बतलाया कि आपका यह श्लोक-कथन मेरे पक्ष का समर्थक है, आपके पक्ष का नहीं, क्योंकि इसमें सूर्य और चाँद को साक्षी बनाया गया है जो गणित से निर्धारित ग्रहणों के शिकार होकर गणित पक्ष को प्रमाणित करते हैं फलित पक्ष को नहीं।

अंत में उन्होंने हमपर यह कटाक्ष किया कि आप इस शास्त्र से अनभिज्ञ हैं। अतः आपको इस शास्त्र पर मत प्रदर्शन का कोई अधिकार नहीं। आप इसे जान लेंगे तो मान भी लेंगे। मैंने उनके इस आह्वान के प्रतिक्रिया रूप शास्त्राध्ययन करना इसलिए उसी समय से प्रारम्भ कर दिया कि मैं शास्त्र जानकर उन्हें अपने मत में लाने पर बाध्य करूँगा। अतः मैं उनका हृदय से आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा के बिना मैं इस ज्योतिषशास्त्र की ओर न आकर्षित होता और न इस ग्रंथ के प्रस्तुत करने का अवसर ही आता।

सात वर्षों के कठिन अध्ययन के पश्चात् भी मैं अपने मत में अडिग ही था कि सन् १९३४ के ग्रीष्म काल में दक्षिण भारत के एक प्रख्यात ज्योतिर्विद और अपूर्व भूत, वर्तमान और भविष्य फल-कथन-शक्ति से सम्पन्न आर्काट जिले के वालवानूर ग्राम के निवासी और हनुमान ऐस्ट्रोलोजिकल ब्यूरो नामक संस्था के प्रवर्त्तक पं० टी० वेंकटेश्वर अय्यर से पालामऊ जिले के डालटेनगंज में अकस्मात भेंट हुई। उनके अव्यर्थ फल कथन की शक्ति को देखकर मुझे अपना मत बदलना पड़ा और मैं पुनः इसका वैज्ञानिक आधार खोजने में प्रवृत्त हुआ। उन्हीं के वार्तालाप के प्रसंग में उनके मुख-आकृति से ग्रहों की जन्म-काल-स्थिति पकड़ पाने की वैज्ञानिक सम्भावना की ओर गया। अतः मैं उनका हृदय से आभारी हूँ कि बिना उनकी प्रेरणा के इस ग्रंथ के लिखने और ज्योतिर्विज्ञान के सत्य मूलाधार पर पहुँचने का अवसर ही नहीं आता।

आकृतिगत चिह्नों से जन्मकालीन ग्रहस्थिति के ज्ञान की सम्भावना के लिए सबसे पहले जिस ग्रन्थ से प्रेरणा मिली वह ग्रन्थ है महाराज सम्भु सिंह सुठालियाधीश (राजपुताना) कृत "ज्योतिष कल्पद्रुम" जिसमें उन्होंने मंगल आदि अनेक ग्रहों की पहचान के चिह्न देने का प्रयत्न किया है। अतः उसके लेखक के ऋण के लिए धन्यवाद प्रदर्शित करता हूँ।

उसके बाद इस ओर बढ़ने की बलवती प्रेरणा स्व० बी० सूर्यनारायण राव आदिप्रवर्त्तक और सम्पादक ऐस्ट्रोलोजिकल मैगेजिन, बंगलोर की जातक चन्द्रिका आदि अनेक कृतियों से मिली जिसमें उन्होंने लिखा है कि उन्होंने अनेक सज्जनों को उनकी कुंडली कहे बिना ग्रहस्थिति बतलाकर चकित कर दिया है। उन्होंने "जातक चन्द्रिका" के अंग्रेजी अनुवाद में यत्र-तत्र प्रसंगवश ग्रहों की पहचान के चिह्नों का भी उल्लेख किया है। अतः मैं उनका इसके लिए सदा ऋणी रहूँगा।

इसी क्रम में मैंने श्री दीक्षित कृत "ज्योति शास्त्रायांचा इतिहास" नामक मराठी ग्रंथ में किसी पटवर्धन नामक ज्योतिर्विद का उल्लेख पाया जो आकृति से ग्रह की नहीं बल्कि उस राशि का अंश भी बतला देते थे जिस राशि में वह पड़ता था। यह एक अलौकिक प्रतिभा थी और उसे पुनः प्राप्त कर लेना हम भारतीयों का प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए। इस उल्लेख से अपने प्रयत्नों में और दृढ़ता आई और विघ्नों से मुकाबला करने का बल मिला। अतः मैं उस ग्रन्थ के कर्त्ताओं के प्रति बहुत आभारी हूँ!

यह ग्रन्थ बहुत पहले लिखा जाकर अप्रकाशित पड़ा रहा। मेरे समान साधनहीन व्यक्ति के लिए प्रकाशन असम्भव था। किन्तु श्री अरुण पाठक आई० ए० एस० महोदय और श्री एस० के० चाँद, आई० ए० एस० और श्री दिनेश्वर लाल

'आनन्द', डिपुटी मजिस्ट्रेट की अहैतुकी कृपाओं से यह ग्रंथ संसार का प्रकाश देख सका जिसके लिए मैं उन महान आत्माओं के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता। अतः मैं उनका हृदय से आभार ही प्रदर्शित कर संतोष प्राप्त कर रहा हूँ।

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी ने जिस उत्साह और उदारता से इसका प्रकाशन अंगीकृत कर जिस परिश्रम और तत्परता से इसे चन्द सप्ताहों के भीतर निकाल डाला वह हर प्रकार स्तुत्य है। अतः मैं उसके निदेशक श्री बैकुण्ठनाथ ठाकुर जी का भी बड़ा आभार स्वीकार करते हुए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। उसी प्रकार मैं वाल्मिकी प्रेस, सैदपुर, पटना का भी विशेष अनुगृहीत हूँ जिसके निदेशकों ने इस ग्रंथ की सुन्दर छपाई और कलापूर्ण आकर्षक रूप में इतना शीघ्र निकाल देने की कृपा की।

किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी यदि हमारे अंतरंग सहयोगी श्री राम कुमार मेहता, अध्यापक का निष्कपट हार्दिक सहयोग और अथक परिश्रम और लगन का लाभ मुझे इस ग्रन्थ को छपवाने में पांडुलिपि प्रस्तुत करने और प्रेस का मार्गदर्शन करने का न मिला होता तो भी शायद यह ग्रन्थ इतनी जल्दी पाठकों के सामने न आ पाता। वस्तुतः इस दिशा में उन्होंने हर प्रकार के कष्ट और असुविधा सही है। ये मेरे ज्योतिष के कार्यों में सदा अंगीभूत ही रहे हैं। अतः उनसे उऋण होना असम्भव सा है। मैं उन्हें अनेकानेक धन्यवाद प्रकट कर ही संतोष कर रहा हूँ।

—लेखक

विषय-सूची

प्रथम प्रकरण

अध्ययनीय विषय का ध्यान रखते हुए कुछ बातें यहाँ पहले ही चेतावनी स्वरूप और पाठकों की सुगमता और सन्मार्गदर्शन के लिये कह देना आवश्यक है।

पहली बात तो यह है कि, कोई चाहे कितना भी कुशल क्यों न हो, अपने मानसिक चित्र को शब्दों से ठीक-ठीक पाठकों के मानसपटल पर हूबहू प्रतिबिम्बित कर सकने में असमर्थ ही रहेगा। कम से कम तो लेखक इस दोष से पूर्ण है। अतः कहीं-कहीं तो जानते हुए भी कि वर्णन में यह त्रुटि रह जा रही है, मुझे लाचार जैसा कहा जा सका वैसा ही छोड़ना पड़ा है। उसमें सुधार नहीं किया जा सका। अतः यदि पाठकों को कहीं यह त्रुटि दीख पड़े और ठीक-ठीक कथनानुसार लक्षण किसी की आकृति में सहसा न देख पड़े, वो पाठकों को कुछ और धैर्य धारण कर लेख को पुनः पढ़कर लेखक के मन के भाव को समझने का प्रयास करना चाहिये। सब से अच्छा प्रयत्न यह होगा कि अनेक व्यक्तियों की आकृतियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर उन्हें कथनानुसार लक्षण न मिलें तो जो लक्षण उसके बदले में उन सभी आकृतियों में एकनिष्ठ जान पड़े उसे लेख में ढूंढ़ने का पुनः प्रयास किया जाय और देखा जाय कि वह अर्थ लेख में भी अभिप्रेत है या नहीं। अनेक बार पाया जायगा कि जो लक्षण पाठकों ने ढूंढ़ निकाला वही लेखक का भी अभिप्रेत था। पर इसका अर्थ यह नहीं कि जो कुछ यहाँ कहा गया है उसमें सुधार की गुन्जायश नहीं है बल्कि यह कि किसी निष्कर्ष पर पहुँचने में जल्दबाजी करना अनुचित और शास्त्र की उन्नति में बाधक नहीं तो अवरोधक अवश्य होगा।

दूसरी बात यह कि आकृतियों के जो चित्र लक्षणों के स्पष्टीकरणार्थ यहाँ दिये गये हैं उन्हें अनेक स्थलों पर पाठक सोलहो आने ठीक न पाकर उन्हें उनका व्यंजक वा ध्वन्यात्मक ही पावेंगे। कारण स्पष्ट है। लेखक के साथ जिन सज्जनों का

सम्पर्क इस सम्बन्ध में होता है वह शतप्रतिशत आकस्मिक ही होता है। इसीलिये निश्चित लक्षण सम्पन्न किसी व्यक्ति का साक्षात्कार उसकी कुण्डली के साथ तो लेखक को हठात् ही होता है। उस व्यक्ति का चित्र उस समय कैसे लिया जा सकता है। अनुरोध पर ध्यान देकर यदि किसी सज्जन ने कालान्तर में अपना फोटो दे देने की कृपा की तब तो यह संयोग भगवान् की दया से मिल गया और वह पाठकों के सामने रखा जा सका। अन्यथा उपलब्ध लक्षणव्यञ्जक चित्रों में से जो चित्र उस लक्षण का अधिक से अधिक सादृश्य-प्रदर्शक है उसी पर निर्भर किया जा सका है और पाठकों को उसी चित्र से संतोष कराना पड़ा है। अधिकांश क्या ९५ प्रतिशत सज्जन तो ऐसे ही मिले जिन्होंने प्रसन्नता से चित्र देने का वचन देकर भी उसकी पूर्ति की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसलिये वर्णन को असल लक्षणों की ओर ध्यान का मात्र आकर्षक ही समझना अधिक युक्तियुक्त होगा। प्रतिभाशाली पाठक इतने से ही असली लक्षणों को पकड़ सकने में समर्थ होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं।

तीसरी बात यह है कि जो चित्र हमें भाग्यवश प्राप्त हो सके उनमें अनेक ऐसे निकले जो सस्ते फोटो ग्राफरों से खिचवाये गये हैं। अतः ऐसे चित्रों में सच्चे लक्षणों को पूरा नहीं व्यञ्जित कर सकने की जो स्वाभाविक त्रुटियाँ होती हैं वे सब कितने ही चित्रों में यहाँ वर्तमान हैं। फलस्वरूप कितने तो ऐसे व्यर्थ चित्र हैं जो मूल व्यक्तित्व की छाया का भी प्रदर्शन नहीं करते। सच तो यह है कि एकाध तो इन में से ऐसे निकले जिन्हें देख कर मूल व्यक्ति में वर्तमान अव्यर्थ निश्चित सुनहले लक्षणों का कोई अटकल भी नहीं लगा सकता—वस्तु तत्त्व का ज्ञान कहाँ से प्राप्त कर सकता है! इस आशय के स्पष्टीकरणार्थ पाठकों का ध्यान ब्लौक न० २० की ओर दिलाया जाता है। इस चित्र वाले सज्जन पर लेखक के अनुभवों की कड़ी परीक्षा ली गई थी। उन सज्जन की आकृति में गुरु, राहु और मेष लग्न के इतने स्पष्ट और निश्चित लक्षण हैं कि जिन्हें देख कर लेखक ने इस चित्र के हस्तगत करने के कई वर्ष पहले मेष लग्न में गुरु और राहु की स्थिति को बिना कुण्डली के ही बतलाकर अपने संदिग्ध मानस और शास्त्र के अविश्वासी मित्रों को चकित कर फलित शास्त्र पर की अनास्था को आस्था में परिवर्तित करने पर बाध्य किया था। पर दुर्भाग्यवश उसी

व्यक्ति का ऐसा चित्र मिल सका जिसे पाठकों के समक्ष उपस्थित करने योग्य किसी प्रकार न होने पर भी उपलब्ध रूप में ही उसे अनिच्छापूर्वक भी उपस्थित करना ही पड़ा। (इसकी पूरी कहानी लेखक के "ज्योतिषसाधना के कुछ संस्मरण" नामक ग्रन्थ में देखें)। तो स्मरण रखें कि ऐसे ही कई अन्य फोटो भी आपको इस पुस्तक में मिलेंगे। अतः कहना तो इतना ही है कि चित्र अनेक अवसरों पर असल लक्षणों को व्यक्त करने में असमर्थ हुए हैं और पाठकों को इस पुस्तक का अध्ययन उनकी इस त्रुटि का ध्यान रख कर ही करना उचित होगा।

चौथी बात यह कि चित्र चाहे कितना ही सुस्पष्ट हो और एक कुशल फोटो ग्राफर द्वारा लिया गया हो पर उस मनुष्य का साक्षात्कार नहीं करा सकता। विशेषकर मनुष्य की त्वचा का वर्ण तो चित्र से पता लगा पाना असम्भव ही है। काला आदमी भी फोटो में गोरा और गोरा भी काला ज्ञात हो सकता है। इसलिये इस शास्त्र के अध्ययन करने वाले सज्जन को चाहिये कि चित्र पर कभी नितान्त निर्भर न करें। उससे वे केवल उतना ही काम निकाल लें जितना सम्भवतः निकाला जा सके। नितान्त निर्भर तो सम्बद्ध व्यक्ति की साक्षात् आकृति पर ही करना चाहिये।

पाँचवीं बात यह कि चित्र तो केवल बाहरी आकृति उस समय की ही प्रदर्शित कर सकता है जिस समय चित्र लिया गया हो। किन्तु अनेक लक्षण तो मनुष्यों की आकृतियों में तब प्रकट होते हैं जब वे स्वाभाविक रीति से चलते, बात-चीत करते, भाषण देते, क्रुद्ध होते, हँसते वा गम्भीर मुद्रा से चिन्ता में निमग्न रहते हैं। उदाहरणार्थ यहाँ दिये चित्रांक ४ को देखें। इस चित्र को देखकर सहसा यह नहीं कह सकते कि इनके लग्न में शनि ही है। पर इन से बातें करते ही आप इसके वहाँ होने के एक नहीं अनेक स्पष्ट लक्षण पा जायेंगे। आगे इस विषय पर प्रसंगानुसार काफी प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है (विस्तारार्थ देखें संस्मरण)।

यह तो हुई उन तस्वीरों की त्रुटियाँ जो उपलब्ध हो सकीं और जो पाठकों के हाथों में रखी जा सकी हैं। पर सब से बड़ी और छठी बात तो यह है कि हजारों चित्र जो निश्चित और अव्यर्थ रूप से अविश्वासियों को कट्टर पक्षपातियों में

परिवर्तित कर सकने में समर्थ होते प्राप्त ही नहीं हो सके और न उनका प्राप्त होना अब सम्भव ही है। लोगों से साक्षात्कार तो हुआ मार्ग में, रेल पर, आफ़िस में, जंगलों में, दिहातों में, दिन में, रात में, कचहरियों में, खेलकूद इत्यादि में और ऐसे अवसरों पर लक्षणों के प्रतीक प्रतिनिधि आकृतियों को पाकर मन मार कर फोटो के लिये ललचते रह जाना पड़ा। अब बिना फोटो के सहारे केवल वर्णन मात्र से पाठकों के मानस पटल पर उन व्यक्तिविशेषों की आकृतियों को यथातथ्य अंकित करके बैठा देना कितना कठिन कार्य है यह पाठक स्वयं समझ लें। अतः वर्णन पढ़ने के बाद कथित लक्षणों की जाँच के लिये पाठकों को इन प्रतीकों के पाने की आशा में वर्षों व्यतीत करने होंगे, तब कहीं वर्णन की सच्चाई का ठीक प्रमाण उन्हें मिल सकेगा।

सातवीं बात और कदाचित् सबसे बड़ी बात तो यह है कि मनुष्य की आकृति पर उसके मन में उठने वाले मानसिक तूफानों की प्रतिक्रिया बराबर होती, उपती, और मिटती रहती हैं। उसकी बाहरी परिस्थिति का भी प्रभाव उस पर पड़े बिना रहता नहीं। देश, काल और पात्र के भेद से मनुष्य के चेहरे पर अनेक भले और बुरे प्रभाव पड़ा करते हैं और कभी-कभी पहनावा, रहन-सहन, स्थान और जलवायु का ऐसा अस्थिर अनेकविध प्रभाव पड़ जाता है कि वास्तविक लक्षण को ढूँढ़ कर विलग कर लेना साधारण निरीक्षक का काम नहीं। अतः आकृति में ग्रह-जनित लक्षणों के पकड़ सकने की सफलता बहुत कुछ निरीक्षक या पाठक के विवेक और स्मृति पर ही निर्भर करती है! कोई दो व्यक्ति बहुत ही कम ही दशा और अवसर पर किसी व्यक्तिविशेष को ठीक-ठीक एक ही लक्षण से पहचानते हैं। बहुधा वे उन्हें अपने-अपने हृदयंगम किये हुए विलग-विलग लक्षणों से ही पहचान सकते हैं। यह मनोवैज्ञानिक नियमों की अनुकूल ही प्रतिक्रिया है और वह प्रत्येक व्यक्ति के लिये अलग प्रकार की हुआ करती है। जब दो व्यक्ति कोई पुस्तक पढ़ते हैं वा कोई चित्र देखते हैं तो दोनों के मन पर भिन्न-भिन्न विचार उठते और भिन्न-भिन्न अंगों की बनावट की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया हुआ करती है और यही प्रतिक्रिया मनुष्य को कार्यक्रम में धीरे-धीरे अपनी रीति पर बढ़ा कर, अन्यों से विलक्षण बनाती चली जाती है। यह नियम कदाचित् और भी विशेष रूप से ग्रहजनित

लक्षणों की पहचान में लागू है। यही कारण है कि अनेक व्यक्तियों की कुण्डलियों में किसी ग्रह की स्थिति देख कर भी उन व्यक्ति विशेषों की आकृतियों को निरीक्षण करते समय भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का ध्यान भिन्न-भिन्न लक्षणों की ओर चला जाना सम्भव ही नहीं अत्यन्त स्वाभाविक है। अतः कितने ही अवसरों पर बतलाये लक्षण का ठीक-ठीक वास्तविक रूप पकड़ पाना प्रत्येक व्यक्ति के लिये असम्भव-सा हो जाता है। ऐसे अवसरों पर दो निरीक्षकों में सच्चे रूप में मतभेद का हो जाना आश्चर्य की बात नहीं। साथ ही इन कठिन आकृतियों का अध्ययन करते समय मूल लक्षणों की ओर ध्यान न जाकर प्रसंगवश अन्य लक्षणों की ओर चला जाना उससे भी अधिक स्वाभाविक है जो आगे चल कर उन्नति का बाधक है। अतः अपना मत निश्चित करने के पूर्व पाठकों को इन धोखों से बचने का पूरा ध्यान रखना आवश्यक है।

आठवीं बात यह कि प्रत्यक्षतः एक ही लक्षण भिन्न-भिन्न ग्रहों से ग्रहराशि-जनित युति, दृष्टि और स्थिति से निरीक्षण करने पर पता चलेगा कि वस्तुतः प्रत्येक ग्रह के लक्षण अलग-अलग हैं और दृष्टि दोष के कारण ही वे प्रमाद उत्पन्न कर एक से दिखलाई पड़ते हैं। इस काम में इसीलिये अधिक सावधानी की आवश्यकता है बल्कि यहीं उनकी शक्ति, धैर्य और लगन की अन्तिम परीक्षा हो जाती है।

नवीं और अन्तिम बात यह कहनी है कि कोई लक्षण निछूना (विशुद्ध) एक ही कारण का कार्य वा फल नहीं होता। प्रायः वह कारण-कलाप वा कारण-समूह का ही प्रतिफल हुआ करता है। कुण्डली और आकृति के अध्ययन में तो यह बात और भी तथ्य रखती है। जन्म काल में पूर्व क्षितिज में उगने वाले भचक्र के किसी अंश पर भिन्न-भिन्न ग्रहों की दृष्टि, स्थिति और युति का एक सामूहिक प्रभाव एक साथ पड़ता है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उस बिन्दु पर उत्पन्न होनेवाला प्रतिफल केवल एक ग्रह विशेष के प्रभाव का ही प्रतिफल है। पूर्व क्षितिज पर जन्म काल में उगने वाला भचक्रबिन्दु ही शिशु की आकृति का प्रतीक होती है। इसलिए आकृति में जो भी लक्षण देख पड़ें वे कारणसमूहों की प्रतिक्रिया के फल होंगे और वैसी हालत में किसी ग्रहविशेष के नितान्त अविकृत प्रभाव को किसी व्यक्तिविशेष में किसी समय या स्थान पर पाना सम्भव नहीं। अतः यहाँ आकर हमारी विकास की गाड़ी रुकती जान पड़ती है। यहाँ आकर अन्वेषण, विश्लेषण और उहापोह की पूरी कठिन

परीक्षा का समय उपस्थित हो जाता है। ग्रहराशिजनित प्रतिक्रिया अंकों की गणित प्रतिक्रिया-सी नहीं बल्कि द्रव्य मिश्रण की रासायनिक प्रतिक्रिया सी होती है जिसमें अनेक अवसरों पर मिश्रण के नुस्खे में बालभर का परिवर्तन भी फल में आमूल महान् अनपेक्षित अन्तर उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। अंकों के योग, वियोग, गुणन और भाजन के फल निश्चित होते हैं पर रासायनिक सम्मिश्रण के परिवर्तन का प्रतिफल सदा अनोखा होता है। चूने और हल्दी का सम्मिश्रण न उजला, न पीला, न उजला-पीला मिला ही रंग लाता है बल्कि अनपेक्षित बिलकुल लाल रंग। यही बात ग्रहजनित प्रतिक्रिया में भी पूर्णरूप से लागू है। ग्रहस्थिति में बिन्दु मात्र का अन्तर होते ही उसके फल में जीवन-मरण-सा विपरीत फल होता है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि इस कठिनाई के कारण हम अपना अध्ययन-कार्य किसी प्रकार शिथिल कर दें, पर कि ऐसी सम्भावनाओं के लिए प्रत्येक ज्योतिष के विद्यार्थी या अध्ययनेच्छु व्यक्ति को सदा तैयार रहना चाहिए। ज्यों-ज्यों अध्ययन परिपक्व और उचित मार्गावलम्बी होता जायगा त्यों-त्यों पता लगता जायगा कि इतना होते हुए भी प्रत्येक ग्रह की छाप किसी भी मिश्रित प्रतिक्रिया में अपने अनुभव के बल पर पहचान ली जा सकती है। और एक बार इस छाप के मन में बैठ जाने पर आगे का मार्ग सदा के लिए सुगम हो जाता है। समय और परिश्रम इस छाप को पहचानते तक ही लगते हैं किन्तु एक बार पहचान हो जाने पर समय और परिश्रम का मूल्य सब्याज कई गुना मिल जाता है।

●

द्वितीय प्रकरण

ग्रहों के लक्षणों के स्पष्टीकरण का विवरण प्रारम्भ करने के पहले एक बात की ओर ध्यान आकृष्ट कर देना आवश्यक है। यहाँ आगे जो लक्षण या प्रभाव ग्रह-जनित बतलाये गये हैं वे वही हैं जो उनके लग्नादि भावों में बैठ जाने के बाद उनके या उनकी तत्रस्थिति के कारण उगे पाये गये हैं और जिन्हें देख उनकी कुण्डली-गत स्थिति ठीक-ठीक अनुमित की जा सकी है। पर इन्हें जानकर इस भ्रमात्मक निष्कर्ष पर नहीं पहुँचना चाहिए कि जब-जब कुण्डली में वे ग्रह ऐसी स्थिति में पाये जायँगे तब-तब सम्बद्ध व्यक्ति की आकृति में वे चिह्न या लक्षण उत्पन्न पाये ही जायँगे। ऐसा नहीं होगा। कारण स्पष्ट है। हमारा यह अध्ययन लक्षण से ग्रह आदि की पहचान कराता है न कि ग्रह से लक्षण आदि की। हमारा ध्येय यहाँ यह नहीं कि हम जान लें कि कोई ग्रह किस-किस स्थिति में क्या-क्या सम्भव शारीरिक चिह्न उत्पन्न करता है। ऐसे अध्ययन का दायरा तो बहुत बड़ा होगा और साथ-साथ बड़ा दुर्गम और विशाल रूप में विस्तृत। यह भी नहीं कि ऐसा अध्ययन सम्भव नहीं या ऐसा करना कुछ अनुचित होगा पर मात्र यह कि हमारा दृष्टिकोण ही यहाँ कुछ दूसरा है। हमारा ध्येय यहाँ फलितशास्त्र का अध्ययन नहीं बल्कि यह प्रमाणित करना कि हमारा यह शास्त्र निराधार नहीं है। हम उत्पन्न प्रभाव को देख कर कुण्डलीगत ग्रह की स्थिति बतलाकर यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि ग्रहस्थिति मानव जीवन और शरीर को प्रभावित करती है और फलित शास्त्र का वैज्ञानिक आधार है जिसका अध्ययन उचित ही नहीं बल्कि अनिवार्य है; क्योंकि सत्य वस्तुस्थिति की न कोई उपेक्षा कर सकता है न उससे अपना पिंड ही छुड़ा सकता है।

हमारे प्रस्तुत अध्ययन के दृष्टिकोण में आकृति-गत चिन्ह-विशेषों का अध्ययन प्रधान है न कि कुण्डलियों का। इसलिए ग्रहजनित जो लक्षण और प्रभाव यहाँ आगे बतलाये गये हैं वे आकृतियों में उन्हें पा कर और कुण्डलियों से जाँच कर उनका

सत्यापन कर बतलाये गये हैं। अतः पाठकों से निवेदन है कि वे भी इस पुस्तक के अध्ययन के समय या अपने अनुभवों को अग्रसर करने में वही दृष्टिकोण रखें। अर्थात् वर्णित लक्षण या किन्हीं अन्य लक्षणों को किसी में पाकर उससे सम्बद्ध ग्रह का कुण्डलीगत स्थितिविशेष का अनुमान करें और तब उसकी कुण्डली से उसका मिलान करें। तब देखेंगे कि उन्हें अपने काम में अधिक सफलता मिल रही है। नवसिखुओं के लिए तो यह बात और भी अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है।

सारांश यह कि आकृति में ग्रहविशेषजनित लक्षणों को पहले देख कर कुण्डली से उस स्थिति का मिलान करें न कि कुंडली में ग्रहस्थिति को देख कर उसके लक्षणों को उस मनुष्य की आकृति में पाने की आशा करें। ऐसा करना बड़ी भूल होगी और इस पुस्तिका में वर्णित अध्ययन का यह क्रम है ही नहीं। कारण स्पष्ट है। ग्रह के एक नहीं अनेक प्रभाव और फल हुआ करते हैं। यहाँ तक कि उन्हीं नव ग्रहों और बारह राशियों के दायरे में विश्व का कण-कण आ जाता है और ये ही ग्रह-राशियाँ इनको अपने-अपने अधिकारों में अन्तर्हित किये हुई हैं।

उनकी युति, दृष्टि, स्थिति और देश-काल को देख कर यह नहीं कहा जा सकता कि यह ग्रह-स्थिति उस व्यक्तिविशेष में अपने प्रभावों में से किस प्रभाव का द्योतक है। जब इस पुस्तक में ग्रहों के केवल उन्हीं लक्षणों पर ध्यान रखा गया है जो व्यक्तियों में शारीरिक लक्षणस्वरूप प्रकट पाये गये हैं तो यह कैसे कहा जा सकता है कि वह ग्रह प्रत्येक कुंडली में उसी स्थान पर बैठ कर वही फल उत्पन्न किया करेगा और दूसरा नहीं। एक ही ग्रह तो भिन्न-भिन्न कुंडलियों में एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न-भिन्न फल उत्पन्न कर सकता है जो आप के अनुमान किये हुए लक्षणों से कदाचित् ही मिला करेगा। इसलिये अपना दृष्टिकोण किसी प्रकार बदल देने पर पाठकों को बहुधा निराश ही होना पड़ेगा। जैसे यदि आप ने यहाँ पढ़ा कि मनुष्य की आकृति दुबली-पतली और लम्बी हो तो अनुमान करें शनि लग्नस्थ है। अब आप यदि किसी व्यक्ति में ये लक्षण पा जायँ और आप की समझ में भूल न हो तो आप निश्चय उसकी कुंडली में शनि को लग्नस्थ पावेंगे। पर यदि इसके विपरीत आप ने किसी की कुंडली में शनि को लग्नस्थ पाकर उसे लम्बी आकृति वाला पाने की आशा की तो अनेक बार आप को विफल होना

पड़ेगा। कभी-कभी तो आप को यह देख कर आश्चर्य होगा कि किसी के लग्न में शनि है पर वह व्यक्ति लम्बे के बदले नाटा है। बात यह है कि लग्नस्थ शनि सम्भवत: कौन-कौन प्रभाव उत्पन्न कर सकता है उसका अध्ययन यहाँ नहीं किया गया है। यहाँ तो केवल उन्हीं लक्षणों पर ध्यान दिया गया है जिन्हें शनि ने व्यक्तिविशेषों में लग्नस्थ होकर पैदा कर दिया है। अब यदि वर्णित लक्षण किसी व्यक्ति में उत्पन्न और मौजूद पाये जायँ तब तो यह निश्चित है कि उस कुंडली विशेष के लग्न में बैठ कर शनि ने यह फल प्रकट कर दिया है और तब आप का यह अनुमान प्राय: सर्वदा सत्य निकलेगा कि उस व्यक्ति की कुंडली में शनि लग्नस्थ है। बात यह है कि शनि के लग्नस्थ होने से पैदा होने वाले सभी लक्षण एक साथ ही अव्यर्थ रूप से सभी कुंडलियों में नहीं उत्पन्न होते। युति, स्थिति और दृष्टि भेद से अपने अधिकृत लक्षणों में से किसी में कुछ लक्षण पैदा हो जाते और शेष नहीं होते; इसलिए आप लग्नस्थ शनि को देख कर यह अनुमान निश्चित रूप से नहीं कर सकते कि उस व्यक्ति में यह शनि किस प्रभाव का उत्पन्न करने वाला है। पर आप जहाँ वह प्रभाव उत्पन्न हुआ देख लेंगे वहाँ तो आप निश्चित रूप से कह सकते हैं कि शनि की स्थिति वहाँ है। इस बात को बहुधा लोग ध्यान में नहीं रखते और इसी कारण दो-एक उदाहरणों में अपने अनुमानों को सच निकलते न देख पाते ही झट यह समझ बैठते हैं कि शास्त्र ही झूठा है। अत: इस पुस्तक में हर स्थान पर यह स्मरण रखना चाहिए कि लक्षणों से ग्रहस्थिति का पता तो अवश्य लगता है पर इसके विपरीत ग्रहस्थिति देख कर सर्वदा अनुमानित लक्षण शरीर में नहीं मिलते।

उदाहरणार्थ, पाठकों का ध्यान इसी पुस्तक में (चित्रांक ११ में) दी गई आकृति की ओर आकृष्ट किया जाता है। चित्र देखते ही समझ में आ जाता है कि इन सज्जन में शनि के लग्नस्थ रहने वाला प्रभाव उत्पन्न हुआ है। अत: निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इनकी कुंडली में शनि लग्नस्थ है। वस्तुत: लेखक की पहली जान-पहचान इन सज्जन से साक्षात्कार होने पर, उनकी कुंडली में लग्न सिंह और लग्नस्थ शनि को बिना कुंडली देखे ही पहचान कर कह दिया गया था और लेखक के इस कथन ने आप को आश्चर्य में डाल दिया था। इसके विपरीत यदि आप चित्रांक ३६ में दी गई कुंडली में यह देख कर कि लग्नस्थ शनि है सहसा यह अनुमान कर लें कि

वह व्यक्ति लम्बा और दुबला-पतला होगा तो उनकी आकृति देखते ही आप का भ्रम स्पष्ट हो जायगा। ये सज्जन लम्बे तो हैं नहीं, नाटे और असाधारण मोटे हैं क्योंकि शनि ने यहाँ दूसरे ही प्रभाव उत्पन्न किये हैं जिनका वर्णन आप को आगे मिलेगा ही। इस आकृति में मेष लग्न और शनि के भी चिह्न स्पष्ट हैं जिन्हें देख इनका लग्न शनि-युक्त मेष कह कर पीछे कुंडली से सत्यापित कर दिया गया था।

ग्रहों की पहचान के जो लक्षण बतलाये गये हैं उन्हें बड़े और दीर्घकालीन अनुभवों के पश्चात् ही व्यक्त करने का साहस किया गया है। एक-एक बात को दृढ़ करने और स्पष्ट समझने में वर्षों लग गये हैं। इस विषय के किसी विशेषज्ञ से न भेंट हुई और न किसी पुस्तक में इसका वर्णन ही पाया। लेखक को तो अभी तक यह भी पता नहीं कि इस विषय पर किसी अन्य भाषा में भी कोई ग्रन्थ लिखा भी गया है वा नहीं। स्व० श्री बंगलोर सूर्यनारायण राव ने सर्वार्थ चिंतामणि की अंग्रेजी टीका की अपनी टिप्पणियों में जहाँ-तहाँ कुछ ग्रहों के कुछ अव्यर्थ लक्षणों का उल्लेख अवश्य किया है पर उनका वर्णन प्रसंगवश ही होने से पूर्ण नहीं और न उतने सूक्ष्म ही हैं। हाँ, उन्होंने अपने अनेक मित्रों की कुंडली देखने के पूर्व ही उनकी आकृति से ही ग्रह-स्थिति का पता देकर चकित कर दिया था। अतः उन्होंने अवश्य इस विद्या में पर्याप्त दक्षता प्राप्त कर ली होगी। पर बड़े खेद की बात है कि आपने इस विषय का कोई ग्रन्थ छोड़ा नहीं। उनका बहुमूल्य अनुभव रत्न उनके साथ ही हमने खो दिया। उनके विचारों का यथातथ्य उपयोग आवश्यक स्थल पर अवश्य किया गया है पर वास्तविक लाभ उनके कथन से लेखक को यही हुआ कि इस ओर बढ़ने में हृदय में दृढ़ता आ गई और संकटों को सहते भी सदा प्रगति आगे बढ़ायी जा सकी। पाठकों को यदि उनके वर्णित लक्षणों को उनकी उक्त टिप्पणी में देखने का अवसर आया होगा तो यह पता लगते देर न लगेगी कि यहाँ वर्णित लक्षणों में क्या और कहाँ भेद है। तथापि इतना तो अवश्य है कि उन्होंने उतना भी नहीं लिखा होता तो कदाचित् इस पुस्तिका के लिखने का अवसर ही नहीं आया होता। इधर, कुछ दिनों से मराठी का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लेने पर, देखा गया कि श्री दीक्षित जी की "भारतीय ज्योतिष का इतिहास" (भारतीय ज्योतिष्यांचा इतिहास) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में लेखक ने पटवर्धन नाम के किसी विख्यात ज्योतिषी का अपना अनुभूत वर्णन किया है जो आकृति से ग्रहस्थिति ही नहीं, ग्रह के स्पष्ट अंश तक बतला

दिया करते थे। पर उन्होंने ही लिखा है कि इस प्रतिभाशाली अद्भुत व्यक्ति ने इस विषय पर कोई ग्रन्थ अपने पीछे न छोड़ा।

पुराने ग्रन्थों में, जिनके उद्धरण आगे दिये गये हैं, ग्रहों के स्वरूप वर्णन के प्रसंग में जो लक्षण उनके दिये गये हैं उनमें कहीं यह नहीं लिखा है कि कुण्डली में इनकी किसस्थिति विशेष से मनुष्य में ये लक्षण प्रकट होते हैं। यह तो कहीं लिखा ही नहीं कि आकृति में इन लक्षणों को देखकर ऐसी ग्रहस्थिति का अनुमान करना चाहिये। वर्णन भी इतना सांकेतिक और इस ढंग से है कि कोई इन्हें पढ़कर लक्षणों को ठीक-ठीक नहीं पकड़ सकता। अतः इन वर्णनों से मुझे लक्षण के ज्ञान प्राप्त करने में कोई सहायता न मिली। बल्कि इन ग्रन्थों को अध्ययन कर जाने पर भी इनसे इस विषय की ओर ध्यान भी न गया क्योंकि इनमें वर्णन ही कुछ ऐसे ढंग से हैं कि इधर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। एकाध स्थान पर तो ऐसा हुआ कि लक्षणों को स्वतंत्र रूप से अनुभूत और निश्चित कर लेने पर ही कुछ श्लोकों की पुनरावृत्ति के समय पता चला कि इसका अर्थ वैसा भी किया जा सकता है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है पुराने आचार्यों ने १९ वीं शती ई० के पूर्व कभी ऐसा दावा भी अपने ग्रन्थों में नहीं किया है। प्रसंगानुसार इसका उल्लेख आगे होता गया है। वहाँ ही इसका विशेष स्पष्टीकरण भी मिलेगा। यहाँ इतना ही कहना है कि बतलाये लक्षणों में से ८० फी शती तो अवश्य अपने निजी अनुभवों पर ही आधृत हैं। जहाँ ग्रन्थों का सहारा लिया है वहाँ उनका स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है।

यही कारण है कि आगे के वर्णन में ग्रहों के साधारण उल्लेख के क्रम को उनके वर्णन करने का क्रम यहाँ नहीं रखा गया है। अर्थात् सू० च० मं० बुध गुरु शु० श० राहु और केतु इस क्रम से वर्णन न कर क्रम को अपने अनुभवों के बल पर जिनके लक्षण अधिक स्पष्ट प्रकट होते हैं और जिन्हें पहचानने में पाठकों को कम कठिनाई पड़ती है उन्हें ही पहले रखकर उसी क्रम से अन्यों को पीछे रखते चला गया है। इससे आशा है पाठकों को कोई असुविधा न होगी।

●

तृतीय प्रकरण

राहु

राहु ठोस पदार्थमय, अन्य ग्रहों की नाईं, कोई वास्तविक ग्रह नहीं है। यदि हम अन्य ग्रहों के ऐसा राहु का साक्षात्कार आकाश में कभी करना चाहें तो सम्भव नहीं क्योंकि अन्य ग्रहों और ज्योतिष पिण्डों (ताराओं) के समान यह कोई ज्योतिर्मय पिण्ड नहीं है। सौरमण्डल में सूर्य की चतुर्दिक परिक्रमा करने वाले जो पाँच तारा ग्रह मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि हैं उनके ऐसा राहु कोई स्थूल पिण्ड नहीं है। वस्तुत: यह तो कोई पिंड है ही नहीं बल्कि एक बिन्दु है जिसका कोई परिमाण लम्बाई, चौड़ाई या मुटाई—होता ही नहीं। वैज्ञानिक परिभाषा में ग्रह उन तारों को कहते हैं जो सूर्य की चारों ओर अपनी-अपनी कक्षाओं पर परिभ्रमण किया करते हैं। पर हमारे भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अभ्यन्तर फल विभाग में ऐसे आकाशीय पिण्डों को भी ग्रहों में गणना कर लिया गया है जो सूर्य की परिक्रमा नहीं करते। जैसे सूर्य और चन्द्रमा को। वस्तुस्थिति तो यह है कि सूर्य अपनी ही परिक्रमा क्या करेगा। हमारे अंगीकृत अर्थ में किसी की भी परिक्रमा करता है कि नहीं, संदिग्ध है। वैसे ही चन्द्रमा तो पृथ्वी की परिक्रमा करता है, सूर्य की नहीं। हाँ, पृथ्वी उसे साथ-साथ घसीटे सूर्य की परिक्रमा अवश्य कर लिया करती है। तौ भी पृथ्वी को ग्रह का स्थान नहीं दिया गया है। उसका स्थान सूर्य ने लिया है। पृथ्वी की चारों ओर सूर्य की जो भासमान गति है वही कदाचित् इसका कारण रही हो।

पर चाहे जो हो, सूर्य, चन्द्रमा, और अन्य पाँच तारा ग्रहों को मिला कर ७ ग्रह हुए और उनमें राहु और केतु की संख्या जोड़ देने से हमारे शास्त्र के नव ग्रह तैयार हो जाते हैं। वरुण, प्रजापति, और प्लूटो जो ज्योतिष पिण्ड हाल ही में सौर परि-वार में सूर्य की चारों ओर परिक्रमा करते खोजे जा चुके हैं हमारे ज्योतिष शास्त्र में

ग्रह नहीं माने गये हैं। कदाचित् उस समय की दुनिया को इनका पता ही न था। किन्तु राहु और केतु की तो बात ही भिन्न है। उनके कल्पित बिंदु मात्र होने पर भी इनकी गणना नव ग्रहों में से दो मुख्य ग्रहों में की गई है और कदाचित् ऐसा करना उचित भी है।

यह समझना प्रारम्भ करने के पहले कि राहु मनुष्य की आकृति में अपनी स्थिति युति, दृष्टि इत्यादि के कारण क्या-क्या प्रभाव उत्पन्न करता है यह जान लेना आवश्यक है कि राहु है क्या वस्तु। प्राचीन काल में अपने ग्रन्थों में इनका नाम पात के नाम से जाना जाता है और ये चन्द्रमा के पात हैं। अन्य तारा ग्रहों के भी ऐसे ही पात होते हैं पर उनका हम पृथ्वीवासियों से कोई विशेष प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं होता अतः फलित विभाग में उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया। उनका कोई विलक्षण दृश्य पृथ्वीवासियों को कभी देखने को भी नहीं मिलता और इसी से उनकी गणना कदाचित् ग्रहों में नहीं की गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राहु और केतु दो बिन्दुएँ हैं जिनका स्थान तो वैज्ञानिक आधार पर निश्चित है पर इनका कोई परिमाण (लम्बाई, चौड़ाई और मुटाई) नहीं है जैसा प्रत्येक बिन्दु का होता है। हम इन बिन्दुओं का स्थान प्रत्यक्ष कभी-कभी देख भी पाते हैं। ऐसा अवसर ग्रहणों के समय आता है। जब कभी पूर्णिमा या अमावस्या के दिन (अर्थात् जब चन्द्रमा या तो सूर्य के सन्निकट या उससे १८° अंशों की दूरी पर सबसे अधिक हटा हुआ होता है) राहु या केतु का सूर्य से अन्तर १८° या ९° अंशों से क्रमशः कम होता है तो क्रमशः चन्द्र और सूर्य ग्रहण हो जाते हैं। तब हमें पता लग जाता है कि इन दो बिन्दुओं का भी गणितागत निश्चित स्थान है। जब अमावस्या के दिन ये ९ अंशों के भीतर आती हैं तो उस समय चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के बीच पड़े सूर्य की किरणों को पृथ्वी के भागों में पहुँचने नहीं देता और उस भाग में लोग सूर्य को नहीं देख पाते और वहाँ अन्धकार छा जाता है। लोग समझते हैं कि सूर्य में ग्रहण लग गया अर्थात् राहु ने सूर्य को ग्रहण कर (पकड़) लिया। इसी प्रकार जब पूर्णिमा के दिन ये पात १८° अंशों से कम में आ जाते हैं तो पृथ्वी चन्द्र और सूर्य के बीच होती है और उसकी छाया चन्द्रमा पर पड़कर उसे आच्छादित कर देती है और लोग समझते कि राहु या केतु ने चन्द्रमा को ग्रहण (पकड़) कर लिया है या निगल लिया है। यदि इन दोनों

बिन्दुओं की यथार्थता को ध्यान में रखा जाय तो यह वस्तुतः सत्य भी है कि सूर्य और चन्द्र ग्रहणों के समय उनके मुख में अर्थात् ९° से १८° अंशों के भीतर आ जाते और आकर पुनः बाहर भी निकल जाते हैं। यदि चन्द्रमा की स्थिति ऐसी हुई कि स्थान विशेष के लोगों की दृष्टि से सूर्य पूरा छिप जाय तो पूरा (वा खग्रास = ख = आकाश, शून्य, ग्रास = कवलित करना वा विलीन कर डालने वाला ग्रहण) ग्रहण होता है नहीं तो अधूरा वा खण्ड ग्रास ग्रहण होता है। उसी प्रकार पृथ्वी की छाया जाकर चन्द्र को पूरा ढक ले तो खग्रास चन्द्र ग्रहण और नहीं तो खण्ड ग्रहण होता है।

खैर, हमें यहाँ तो इतना ही कहना है कि राहु और केतु की स्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञान सर्वदा ग्रहणों के दिन ही हुआ करता है और उस दिन सूर्य या चाँद छिप जाते हैं और पृथ्वीवासी इतना ही देख पाते हैं कि ग्रहण के फलस्वरूप हमारे यहाँ अन्धकार छा जाता है और सूर्य और चन्द्रमा राहु के उदरस्थ होते समझे जाते और तब हमें इनके अस्तित्व का एकाएक भान होता है। इनका भान अन्धकार रूप में ही होने के कारण हमें यही जान पड़ता है कि (ये अन्धकार ही लाया करते हैं वा) ये अन्धकार रूप ही हैं। इसी कारण इनका नाम ही पड़ गया "तमोग्रह", या तमः। इनका दूसरा और सौरमंडलीय ज्यामिति की यन्त्राकृति का स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण रूप, नाम सर्प है। सर्प रेखाकृति होता है और सिमटकर जब बैठता है तो वृत्ताकार भी हो जाता है। सर्प के आधे-आध भाग करें तो एक में शिर और दूसरे में उसकी पूँछ पड़ेगी। अर्थात् उपरले भाग में शिर और निचले में उसकी पूँछ होती है। अतः राहु को (चढ़ते पात को) सर्प का शिर और केतु को उसकी पूँछ कहते हैं। यदि हम वृत्त के इन दो बिन्दुओं का ध्यान उस वृत्त के साथ ही करें तो हमें पता चलेगा कि इनका नाम सर्प और एक का शिर और दूसरे का पूँछ रखना कितना यथार्थ है। वृत्त के उस भाग से, जहाँ राहु पड़ता है, राहु का प्रारम्भ होता है, वह मुँह हुआ और वहाँ से वृत्त का आधा भाग उसमें जुड़ा हुआ है ज्ञात होगा वह उसकी धड़ हुई। पुनः केतु के पिछले धड़ का आरम्भ हुआ और अन्त में घूमकर उसकी अन्तिम छोर वा पूँछ राहु से आकर मिल जाती है। अतः केतु पूँछ हुआ। कक्षा वृत्त को यदि कुण्डलीभूत (गेड़ुराया हुआ) सर्पराज कहें तो उपमा कितनी फबती है यह कहना अनावश्यक है।

वृत्त के उस आधे भाग पर ध्यान दें, जो राहु से लेकर केतु तक लटकती हुई जान पड़ती है, तो हमें यह समझते देर न लगेगी कि राहु की आकृति पतली और लम्बी क्यों है। उसी प्रकार केतु से लेकर राहु तक सटे हुए कक्षाभाग को केतु की आकृति का द्योतक मान लें तो पता चल जाएगा कि केतु की आकृति भी लम्बी और पतली ही है।

उक्त सारे वर्णन से दूसरी बात यह समझ में आ जाती है कि राहु और केतु का ग्रह के रूप में वास्तविक ठोस स्थिति कुछ नहीं बल्कि इनके अस्तित्व की उत्पत्ति पृथ्वी कक्षा और चन्द्र कक्षा से बने हुए सौरमंडल रूपी यंत्र के एक भाग से हुई है। अर्थात् ये यंत्रजनित हैं।

ऊपर के वर्णन से इतना तो स्पष्ट है कि राहु और केतु दोनों में से कोई अन्य ग्रहों की नाईं ठोस आकाशीय भौतिक पिण्ड नहीं है। वे एक रेखागणित की कल्पित विन्दु मात्र हैं। अब यदि यह दिखलाया जा सके कि ये अभौतिक कल्पित बिन्दु भी (या बिन्दु ग्रह भी) कुण्डली में भिन्न-भिन्न प्रभाव कुण्डली वाले जातक के भिन्न-भिन्न अंगों में प्रकट कर सकती हैं तो उससे यह और भी सिद्ध होता है कि अन्य ग्रह जिनका साक्षात् अस्तित्व आकाश में है और जो सौर-परिवार के ठोस भौतिक महान् अंग हैं अवश्य इनसे अधिक प्रभावोत्पादक हो सकते हैं।

आगे के वर्णन से पाठकों को विदित हो जायगा कि (और लेखक का भी यही अनुभव-जनित विचार है) कि इनके प्रत्यक्ष प्रभावों के हिसाब से इनका ग्रहों की सूची में रखना उससे भी अधिक उचित है जितना किसी अन्य ग्रह का उस सूची में रखना।

ऊपर कहा जा चुका है कि राहु कोई वास्तविक ग्रह नहीं, पर वह ग्रहराज सूर्य और चन्द्र को भी अवसर पर (अर्थात् साथ होने पर) दबा देता है और अपने उदर में अन्तर्हित कर बैठ जाता है अर्थात् सूर्य और चन्द्र से निर्झरित रश्मिपीयूष को हम तक पहुँच कर अपना संजीवन काम निष्पन्न करने से रोक देता है। संसार की जीवनी शक्ति उस समय क्षीण-सी होती जान पड़ती है और संसार अन्धकार में विलीन हो जाता है। सारांश यह कि सूर्य ऐसे तेजस्वी का तेज भी राहु के निकट पहुँचते ही लुप्त हो जाता है।

उसी प्रकार जब राहु लग्नांश के सन्निकट हो साथ-ही-साथ पूर्व क्षितिज में जन्म काल में उगता है तो वह जातक की आकृति में अपनी स्पष्ट छाप छोड़े बिना रहता नहीं। विदित ही है कि जो भचक्र बिन्दु पूर्व क्षितिज पर जातक के जन्म-काल में उगती रहती है वही जातक का प्रतीक होती है। उस विन्दु को अपने निकट पाकर राहु उसे अपने में ऐसा अन्तर्हित (तिरोहित) कर लेता है कि बिन्दु तद्रूप हो जाती है और जातक की आकृति में उसके स्पष्ट चिह्न उग आते हैं।

पहला प्रभाव लग्नस्थ राहु का मनुष्य की आकृति पर यह पड़ता है कि मुख का वर्ण धूमिल हो जाता है। यह नहीं कि मनुष्य बिलकुल काला हो जाय पर कालिमा की झलक धूएँ-सी उसके चेहरे पर अवश्य मिलने लगती है। गुरु, बुध और शुक्र के साथ यदि बैठा न हो तो उक्त लक्षण अवश्य पैदा होता है। पर यदि इनमें से किसी के साथ बैठे, विशेषकर गुरुयुत हो तब वर्ण अत्यधिक गोरा भी हो जाता है। तौ भी अनुभवी व्यक्ति को पता चलते देर न लगती कि राहु की छाया का कुछ असर मुखाकृति पर हो ही गया है। राहु द्वारा उत्पन्न मुखाकृति की श्यामता या धुँधलापन अन्य ग्रहजनित धुँधलेपन या श्यामता से ठीक-ठीक विलगाया नहीं जा सकता। अन्य ग्रह भी मुखाकृति पर श्यामता, धूमिलता या धुंधलापन उत्पन्न करते हैं। अतः श्यामता या धूमाकृति अकेली राहु की स्थिति सूचक अचूक लक्षण नहीं हो सकती।

लग्नस्थ राहु जातक को लम्बा बनाता है। उसके इस प्रभाव में व्यवधान तभी होता है जब राहु अन्य ग्रहों की बलवत्ती युति दृष्टि और स्थिति से प्रभावित होकर कुछ दूसरा ही फल उत्पन्न करने पर बाध्य हो जाता है। (देखें चित्रांक-५३)

किन्तु प्रत्येक लम्बे व्यक्ति को देख कर यह निश्चित रूप से एकाएक नहीं कहा जा सकता कि उसकी लम्बाई राहुजनित है या अन्य किसी कारणवश। बात यह है कि लग्नस्थ राहु ही अकेला मनुष्य को लम्बा नहीं बनाता, बल्कि शनि, सूर्य, और केतु भी लग्न में बैठकर मनुष्य के डीलडौल को लम्बा बनाते हैं। इसलिए राहु-जनित लम्बाई को पहचानने के लिए सूक्ष्मता से यह जानना आवश्यक है कि इसकी और अन्य ग्रहजनित लम्बाई में भेद क्या है। बिना इसको हृदयंगम किये राहु-जनित लम्बाई को अन्यों की लम्बाई से पृथक करना कठिन होगा। राहु-जनित

लम्बाई के साथ शरीर में स्थूलता का नितान्त अभाव होता है। पर शरीर भीतर से लोहे के तार के ऐसा मजबूत और आघात-प्रत्याघात को भलीभाँति वहन करने में समर्थ होता है। चेहरे पर झुर्रियाँ मौजूद रहती हैं और सारे शरीर की त्वचा कुछ ढीली-ढाली और चिमड़ा होती है। चेहरा ऐसा लगता है जैसा मुँह में बहुत बरें होकर अच्छा हो जाने पर किसी का चेहरा जान पड़ता है। ज्ञात होता है जैसे मनुष्य बीमार से उठा हो और उसके शरीर के त्वचा से किसी सत्त्वरस (विटामिन, Vitamin) का सहसा अभाव हो गया हो। कुछ काल की बीमारी से उठने पर मनुष्य की त्वचा का जो रंग-ढंग और दशा होती है ठीक वही रंग-ढंग राहु के लग्न में बैठने पर हो जाता है। इस लक्षण को व्यक्त करनेवाला कोई चित्र अभाग्यवश उपलब्ध नहीं रहा। जो चित्र उपलब्ध हैं वे अन्य लक्षणों को ही व्यक्त करते हैं। चित्र पर त्वचा की इस दशा को कोई ठीक-ठीक व्यक्त भी नहीं कर सकता। तो भी चित्रांक ५५, ५९ और ७० के देखने से इसका बहुत कुछ आभास मिल जा सकता है।

सूर्य के लग्नस्थ होने पर जो लम्बाई होती है उसमें चेहरे में झुर्रियाँ, त्वचा की सिकुड़न और वृद्धावस्था के चिह्न बिल्कुल नहीं होते। उसमें शरीर हृष्ट-पुष्ट और स्फूर्तिमान् तथा त्वचा चमकदार होती है। देखने से उसमें एक प्रकार की कोमलता (मुलायमियत) या स्निग्धता और चमक (आब) वर्तमान रहती है। किसी भी हालत में सूर्यजनित लम्बाई के साथ-साथ शरीर की पुष्टि का कोई अभाव नहीं दृष्टिगत होता। जहाँ शरीर की पुष्टि के साथ डील-डौल लम्बी हो वहाँ राहु की स्थिति की सम्भावना को हृदय से हटा देना चाहिए जब तक ऐसा न करने का कोई विशेष कारण न हो।

जब शनि के लग्नस्थ होने से आकृति लम्बी होती है तो उसमें शरीर बेहद दुबला-पतला और नसें उभड़ी हुई होती हैं। नसों की यह उभाड़ हाथों और ठेहुने से नीचे पैरों में विशेष स्पष्ट दीख पड़ती हैं। तलहथी को उलटकर देखते ही नसों की उभाड़ झट स्पष्ट हो जाती है। यदि जातक कम अवस्था का हो तो नसें उभड़ी तो नहीं मिलतीं पर उभड़ी हुई-सी प्रत्यक्ष जान पड़ती हैं। कभी-कभी अधिक अवस्था वाले व्यक्तियों में नसें उभड़ी न मिलकर उभड़ी हुई-सी स्पष्ट

नीली मोटी रेखा रूप में मिलती हैं। कहने का तात्पर्य कि ऐसे व्यक्तियों में नसों की नीली रेखायें हाथों और पैरों में अवश्य रहती हैं और द्रष्टा का सीधा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहतीं। साथ ही शनि के लग्नस्थ होने पर मनुष्य की आँखों से कान्ति मिट जाती है और आँखें बहुधा धँस जाती हैं। धँसने के साथ-साथ आँखें छोटी भी हो जाती हैं। इससे अधिक वे तिरछी बैठी हुई-सी रहती हैं। आगे इसके लक्षणों के वर्णन के समय इसका और स्पष्टीकरण मिलेगा। यहाँ तो इतना ही पर्याप्त है कि यदि ये लक्षण भी साथ-साथ मिलें तो राहुकृत लम्बाई की सम्भावना मन से हटा देनी चाहिए।

शनि के लग्नस्थ होने पर शिर भी छोटा हो जाता है। यहाँ तक कि नियम के विरुद्ध विशेष कारणों से जहाँ लग्नस्थ शनि के साथ शरीर हृष्ट-पुष्ट और दृढ़ मिलता है वहाँ भी शिर का आकार अपेक्षाकृत बहुत छोटा होता है चित्रांक ४ पर यहाँ इतना स्मरण रहे कि ऐसी दशा में शिर छोटा होने पर भी सुगठित और जानदार होता है। ये सभी बातें राहु में नहीं पायी जातीं।

राहु और केतु की लम्बाइयों में भिन्नता बड़ी कम और अत्यन्त सूक्ष्म होती है, तथापि एक बार पहचान की पकड़ हो जाने पर बिलगाना अत्यन्त सरल और सहज हो जाता है। केतु जब लग्नस्थ होता है तो आकृति तो लम्बी देता है पर शरीर का दुबला-पतला या कमजोर (निर्बल) या श्याम होना कोई आवश्यक नहीं। सबसे बड़ी विकृति केतु के कारण जातक के मुख की आकृति में पैदा हो जाती है। चेहरा देखने में बड़ा भद्दा और प्रायः डरावना-सा लगता होता है। अन्य ग्रहजनित कारणों से मनुष्य चाहे कितना ही सुन्दर हो पर यदि केतु भी लग्नादि विशिष्ट स्थानों में हो तो उसके मुख की ओर देखते ही किसी चीज का अभाव-सा अनायास बोध होने लगता है जिससे उसके मुख की सुन्दरता जाती रहती है। अच्छे और भाग्यशाली पात्रों में सुन्दरता का अभाव न रहने पर भी देखते ही कुछ खटक जाता है और आपका मन उस मुखाकृति को सुन्दर स्वीकारने पर तैयार नहीं होता। निम्न श्रेणी के जातकों में अर्थात् जिनका केतु बहुत ही अशुभ हो उनमें उनके मुख की आकृति सचमुच डरावनी होती है। आँखों के कोटर (खोढरे) धँसे हुए और विस्तृत होते हैं। आँखों के गोलक वृत्ताकार गोल-ढोल होते हैं और व्यक्ति आँखें फाड़ कर देखने का प्रयास करता है। वह इसमें सहज रूप से अभ्यस्त पाया जाता है। आँखों

के नीचे के जबड़े वाली हड्डियाँ नाक के मध्य से सीधे दोनों पार्श्वों में उभड़ी हुई होती हैं।

उनके (उन उभड़ी हड्डियों के) नीचे ही गाल दोनों ओर से बैठी हुई होती है और गालों के इन गढों के नीचे जबड़े की हड्डी पुनः उभड़ी हुई होती है। अर्थात् मुख की सीध में निचले जबड़े की हड्डी भी उभड़ी और प्रशस्त होती है जिससे चेहरा सब मिलाकर अशुभाकृति और अधिकतर वीभत्स हो जाता है। कभी-कभी इन चिह्नों के बदले ललाट एक ओर कनपट्टी के ऊपर दबा हुआ (या कुछ धँसा हुआ) होता है, बाल वहाँ के उड़ जाते हैं और खल्वाट से लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

देखने में मुखाकृति गोलाकार होती है और जबड़ों की हड्डियाँ निकली हुई तथा गाल धँसा हुआ होता है। ये लक्षण राहु और केतु की लम्बाइयों की भिन्नता के पहचानने में प्रायः कभी चूक नहीं होने देते।

चित्रांक १७, ३३, ६२, ६४, और ६६ के लक्षणों को ठीक-ठीक हृदयंगम करने के इच्छुक पाठकों को चाहिए कि लग्नस्थ केतु और राहुवाले कुछ व्यक्तियों की सूक्ष्म और बारीक परीक्षा कर स्वयं देख और समझ लें।

ऊपर इस बात का संकेत कर दिया गया है कि राहुजनित आकृति की लम्बाई में अन्य ग्रहों का प्रभाव पड़ने पर बहुत अनपेक्षित परिवर्तन मिल सकता है और ऐसे अवसरों के लिए पाठकों को सर्वदा प्रस्तुत रहना चाहिए।

यदि राहु और गुरु साथ-साथ लग्नस्थ हों तो आकृति की लम्बाई में घोर परिवर्तन हो जाता है पर बुध और शुक्र की ऐसी स्थिति से कोई विशेष फर्क नहीं होता। कारण कदाचित यह है कि गुरु स्वयं लग्नस्थ होकर मनुष्य को नाटा बनाने का यत्न करता है। इतना ही नहीं शरीर का गठन भी काफी दृढ़, मोटा और बलगमी बना देता है। यह सब गुरु की युति का फल है। चित्रांक १ और २० के फोटो और कुण्डली का मिलान करते ही उक्त बात की पुष्टि और भी सुदृढ़ हो जायगी।

इसी प्रकार अन्य ग्रहों के साथ युति आदि के कारण राहुजनित आकृति की लम्बाई में भिन्न-भिन्न प्रकार के परिवर्तन हो जाते हैं। चित्रांक ६२ और ६३ की विशेषताओं की ओर तीक्ष्ण दृष्टि रखकर अभ्यास करने से भिन्नताओं के रहते भी राहु के लग्नस्थ होने की छाया को हृदयंगम कर लेना कोई कठिन समस्या नहीं होगी।

यहाँ पर इतना दुहरा देना अनावश्यक न होगा कि उक्त कथन का अभिप्राय केवल इतना ही है कि जहाँ कहीं तथाकथित राहु के लक्षण स्पष्ट आकृति में दृष्टिगत हो वहाँ कुण्डली मिलाने पर लग्नस्थ राहु अवश्य पाया जायगा। किन्तु इसका उल्टा

अनुमान ठीक न होगा अर्थात् हर हालत में लग्नस्थ राहु को पाकर मनुष्य को लम्बा ही होने की आशा सर्वदा प्रतिफलित नहीं होती।

किन्तु लम्बाई से भी अधिक सटीक पहचान राहु के लग्नस्थ होने की मनुष्य के दाँतों में रहती है। दांतों का आकार, प्रकार, लम्बाई, बनावट तथा दंतपंक्तियों का गठन और बैठाव से राहु का लग्नस्थ होना निश्चित रूप से अचूक पहचाना जा सकता है।

सबसे प्रथम तो यह कि राहु के लग्नगत होने पर चाहे कोई अन्य ग्रह कितना ही प्रभाव डाले दाँतों में कुछ-न-कुछ विकार हुए बिना रहता नहीं। चाहे तो दाँत निकले होंगे, बड़े-बड़े बेडौल आगे की ओर बढ़े होंगे, विशेषकर ऊपर के जबड़े में दांत मैले-कुचैले होंगे, कमजोर और देखने में शक्तिहीन होंगे, चाहे पंक्तियों में उनकी सजावट इस प्रकार होगी कि वे एक दूसरे से बिखरे हुए ज्ञात होंगे, और दो दांतों के बीच काफी फासला छूटता जायगा। सबसे अव्यर्थ चिह्न तो कदाचित यह है कि राहु के लग्नस्थ होने से सामने के ऊपर वाले दोनों दाँतों के बीच पर्याप्त विलगाव अवश्य होगा। वे दोनों परस्पर सटे नहीं हो सकते। नीचे वाले भी जो दो दाँत सामने के हैं उनकी भी यही दशा होती है। लेखक की सम्मति और अनुभव में तो यह राहु की स्थिति का एक अव्यर्थ चिह्न है। यह चिह्न चित्रांक २३, ४४, ५५, ७०में स्पष्ट मौजूद है।

बिहार के भूतपूर्व शिक्षा मंत्री माननीय श्रीयुत आचार्य बदरीनाथ वर्मा जी की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट कराया जाता है क्योंकि आप ज्योतिष का ज्ञान स्वयं रखते और फलित के श्रद्धालु थे। इनके मंत्री पदाधिरूढ़ होने के कई वर्षों पूर्व अर्थात् सन् १९३८ ई० की शरदऋतु में जब इनसे लेखक का साक्षात्कार मीठापुर में एक मित्र के यहाँ हुआ तो उनकी आकृति देखते ही इनके अगले दोनों दाँतों की बनावट और उनके बीच के रिक्तस्थान को देखकर ही उनके लग्नस्थ राहु का होना बेखटके ठीक बतला दिया था। इनके लग्न का भी अनुमान उसी समय ठीक-ठीक मिथुन कर दिया गया था पर उस पर तो आगे पर्याप्त प्रकाश डाला ही गया है। इसकी चर्चा आगे मिलेगी ही। यहाँ तो इतना ही कहना है कि यह पहचान राहु के लग्नस्थ होने का एक अव्यर्थ चिह्न है।* चित्रांक ५५ को जरा ध्यानपूर्वक देखें। इन सज्जन की अवस्था चित्र लेने के समय कम थी और आपने फोटो लेते समय अपने दाँतों को छिपाने का भी पर्याप्त प्रयास किया है पर तो भी इतना तो स्पष्ट है कि दाँतों के बाहर निकलने की ओर का झुकाव प्रत्यक्ष है और अगले दोनों दाँतों के

* चित्र अप्राप्त, कुंडली इस प्रकार है—लग्न मिथुन में राहु, चन्द्र, सिंह में शनि, कन्या में मंगल, बुध, शुक्र, तुला में सूर्य और धनु में वृहस्पति, केतु।

बीच थोड़ा स्थान रिक्त रह गया है जो बोलते समय झलक जाता है। अवस्था कम होने से अभी यह लक्षण उतना स्पष्ट नहीं होने पाया है पर अवस्था की वृद्धि के साथ-साथ लक्षण और भी स्पष्ट हो जायेंगे। चित्रांक ५९ में यह लक्षण अत्यन्त स्पष्ट है पर चित्र उतना स्पष्ट नहीं आया है। इनके लग्न का भी अनुमान मात्र चेहरे से ही किया गया था जो गणित करने पर ठीक निकला। चित्रांक ४४, ७० में लग्नस्थ राहु के सभी लक्षण वर्तमान हैं। वस्तुतः इस पुस्तक में लग्नस्थ राहु के उदाहरणार्थ जितने चित्र दिये गये हैं सभी में यह अव्यर्थ लक्षण वर्तमान हैं। सचमुच इस चिह्न को लग्नस्थ राहु की पहचान का अव्यर्थ चिह्न समझना और इसे एक स्वर्णिम नियम मानना चाहिये।

पाठकों से अनुरोध है कि वे इस अव्यर्थ नियम की परीक्षा आजमा कर करें और ज्योतिष का चमत्कार देखें। उन्हें आशातीत सफलता मिलेगी और शास्त्र पर आस्था हो जायगी।

प्राचीन ग्रंथों के अवलोकन से पता चलता है कि सदियों से हमारे आचार्य इस बात को समझते आये हैं कि राहु का सम्बन्ध मनुष्य की अस्थि से है। शारीरिक बनावट में अस्थि (हड्डी) का कारकत्व नहीं तो उसपर राहु के प्रभाव का उल्लेख प्राचीनों द्वारा होता आया है। यद्यपि दाँतों का समावेश अस्थि में नहीं होता तथापि वे उससे बहुत मिलते-जुलते से ही हैं। चाहे जो कारण हो, लग्न में या लग्न के समीप रहने पर राहु दाँतों पर अपनी छाप दिये बिना रहता नहीं।

चित्रांक २० वाले सज्जन की आकृति में गुरु का प्रभाव इतना स्पष्ट और सबल है कि आकृति से राहु का प्रभाव तिरोहित-सा हो गया है तथापि इनके बिचले ऊपर के दो दाँतों में राहु के अव्यर्थ चिह्न अर्थात् इनके बीच-बीच का रिक्त स्थान वर्त्तमान है जो बातें करते स्पष्ट हो आता है। यह अवश्य है कि अन्य सहचारी चिह्न कोई प्रकट नहीं देख पड़ते। तौ भी मात्र इनके वर्ण और ऊपरले दोनों तथा उनके ठीक निचले दोनों दाँतों के रिक्त स्थानों को देखकर ही राहु की स्थिति का अनुमान कुंडली देखने के कई सप्ताह पूर्व बाजी के साथ कर लिया गया था। अन्यान्य सहचारी लक्षणों के अभाव में राहु की स्थिति का अनुमान ससंकोच ही स्थिर किया गया था। मनुष्य की हड्डी पर राहु के अनेक सहचारी, पर अचूक लक्षण नहीं मिलते हैं पर इनकी मुखाकृति मात्र से उनमें से एक भी उगा नहीं जान पड़ता। पीछे पता चला कि इनमें से एक सहचारी लक्षण यहाँ अस्थिगत वर्तमान है जिसे लेखक को तब दिखलाया गया जब उसकी परीक्षा ली गई और जब परीक्षण ने सफल हो लोगों को चकित कर डाला। यद्यपि उपरोक्त प्रभाव इनकी दंतपंक्ति से तिरोहित

हैं तथापि ध्यानपूर्वक देखने पर पता चलेगा कि इनकी नाक बीच में अति सूक्ष्म रूप में टेढ़ी है। फुटबॉल के खेल में जिसके ये सदा एक कुशल खिलाड़ी रहे, आपको गहरी चोट आई थी जिसमें आपकी नाक की हड्डी बीच से टूट गई और अनेक औषधि और उपचार के पश्चात् तब कहीं आराम हुआ। उस दिन से आपकी नाक कुछ टेढ़ी हो गई। यह बात उस समय खुली जब गुरु की स्थिति और राहु की सम्भावित स्थिति कुंडली में तीन हफ्तों पहले बतला दी गई थी और जब कुंडली छपरे से मंगाकर डालटनगंज में कथन की सत्यता की जाँच की गई तो उस समय वार्तालाप में खुला कि नाक की हड्डी पर आखिरकार राहु का प्रभाव उगा हुआ था।

यदि शनि का साथ वैसी दशा में हो और शनि बलवान् हो तो मनुष्य का शरीर अत्यन्त दुबला-पतला, मांस-मेदहीन, लम्बा और देखने में अत्यन्त झुझुआवन (हल्के या नगण्य देह भुजावाला) होता है। ज्ञात होगा जैसे उसका शरीर सूखी पत्ती की नाईं हवा में मानों उड़ ही जानेवाला है। कायदे आजम श्री जिन्ना को तो हमारा प्रत्येक देशवासी जानता ही है और उनकी आकृति से, यदि साक्षात्कार नहीं तो पत्रों में छपे उनके चित्रों को देखकर, तो अवश्य ही परिचित हैं। उनके लग्न में भी शनि और राहु की युति थी। अब आप उनकी आकृति, शरीर की बनावट इत्यादि का अपने मन में ध्यान करें तो राहु और शनि की युति का क्या फल होता है आपकी समझ में तत्काल आ जायगा। श्री जिन्ना साहब की कुंडली इस प्रकार थी—लग्न कुम्भ, कुम्भ में शनि राहु, मेष में चन्द्रमा, सिंह में केतु, तुला में मंगल, वृश्चिक में वृहस्पति, धनु में सूर्य बुध।

खेद की बात है कि राहु और मंगल की लग्नयुति का कोई उदाहरण अभाग्यवश यहाँ नहीं दिया जा सका। इस युति का भी फल बहुत कुछ राहु-शनि की युति के ऐसा ही होता है। विभेद केवल इतना ही है कि मंगल के कारण शरीर अधिक दुबला नहीं होने पाता जैसा शनि के कारण हो जाता है। तथापि चित्रांक ७० को देखें। यह राहु-मंगल का उदाहरण है। फल बहुत कुछ इसी प्रकार का होता है। यहाँ विशेष ध्यान पाठकों का इनकी दाँतों की ओर आकृष्ट किया जाता है कि

हमारे विज्ञ पाठक जाँच लें कि ऐसी स्थिति में दाँत किस प्रकार बड़े-बड़े विरल और आगे की ओर बढ़ने का झुकाव रखनेवाले होते हैं।

कहा जा चुका है कि राहु के लग्नस्थ होने से रंग पर श्यामता छा जाती है और चेहरा झिंगुरा जाता है। मुखाकृति ठीक वैसी ही लगने लगती है जैसी बीमारी से उठे मनुष्य की मुखाकृति। आवश्यक बात यहाँ ध्यान देने की यह है कि चेहरे पर फुंसियों के मिटे हुए कालिमा मिश्रित बुनके-बुनके से अनेक दाग मुख में दिखलाई पड़ते हैं। त्वचा की रंगत देखने में ज्ञात होता है जैसे वह ढीला हो और मांसपेशियों की कमी हो गई हो या किसी कारणवश त्वचा (बाहरी चर्म) की जीवनी शक्ति के साथ-साथ उसकी कान्ति की भी समाप्ति हो गई हो। चर्म के ढीलेपन को केवल चेहरे में ही नहीं खोजकर उसे सारे शरीर में ढूंढ़ना चाहिए। देखने में मिलेगा कि बदन की आकृति और त्वचा का रंग तो गोरा है पर ढीलापन अवश्य वर्तमान है। सारांश यह कि मनुष्य देखने में जान पड़ता है जैसे इसमें अवस्था से कहीं अधिक बूढ़ेपन के चिह्न आ गये हों।

ऊपर यह भी कहा गया है कि राहु का प्रभाव हड्डियों पर पड़ता है और वह उन्हें अपने प्रभाव में लाने में कोई कोर-कसर छोड़ता नहीं। इस भाव का एक रूप उसका यह है कि लग्नस्थ हो वह हड्डियों को या पूरे अस्थिपञ्जर को सम्बर्द्धित कर डालता है जिससे मनुष्य का डील-डौल ऊँचा अर्थात् लम्बा हो जाता है। इतना अवश्य इस सम्बन्ध में स्मरण रखें कि वह अस्थि को पतली नहीं बल्कि काफी दलीदार बनाता है जिससे मनुष्य राहु के प्रभाव में बहुत कृशित नहीं होने पाता यद्यपि उसकी त्वचा शरीर पर ढीली बैठी जान पड़ती है। देखें चित्रांक ५९। इसमें आप देखेंगे कि ये सज्जन लम्बे होने पर भी बहुत दुबले नहीं। फिर देखें चित्र अंक ७०। किन्तु इसके विपरीत देखें चित्रांक ४, ५, ६। इन सभी सज्जनों के लग्न में शनि है पर इनमें से प्रत्येक व्यक्ति अत्यन्त क्षीणकाय और दुबला-पतला है।

राहु की लम्बाई के साथ एक बात विशेष ध्यान देने योग्य और सदा स्मरणीय होती है। शरीर पञ्जर लम्बा होने के कारण हाथों और पैरों की प्रधान हड्डियाँ तो लम्बी होती हैं पर उनमें विचित्रता यह होती है कि अपनी-अपनी जोड़ों पर (अर्थात् जहाँ-जहाँ हाथों और पैरों में जोड़े हैं वहाँ) वे ढीली लगी होती हैं। तात्पर्य यह कि हड्डियाँ अपनी जोड़ों पर सख्त और मजबूत जुटी हुई नहीं ज्ञात होतीं और उनसे उनकी मजबूती का चिह्न प्रकट नहीं होता। शनि की लम्बाई में यह बात नहीं। उसमें ये सभी जोड़ें खूब गठित रूप में बैठी दृष्टिगत होतीं और स्पष्ट बलवती ज्ञात होती हैं। सारांश यह है कि लग्नस्थ राहु में शरीर को सुगठित

पाने की आशा कम रखनी चाहिए। इसके विपरीत शनि प्रायः सुगठित शरीर देता है और अन्य ग्रहों के प्रभाव में जहाँ वह इस नियम के विरुद्ध अपना प्रभाव दिखलाता है वहाँ के सुगठितपने का तो पूछना ही क्या है। देखें चित्रांक ९ और चित्रांक ११। इन दोनों के लग्नस्थ शनि है। एक में शनि पर गुरु की दृष्टि और दूसरे में मंगल का साथ है। फल स्पष्ट है। दोनों के शरीर का गठन खूब सुगठित और शरीर लोहे की नाईं दृढ़ और मजबूत है।

दूसरी बात ध्यान देने की यह होती है कि लग्नस्थ राहु से उत्पन्न लम्बाई की दशा में मनुष्य प्रायः सदैव आगे की ओर झुका हुआ ही देखा जाता है पर शनि तो कदाचित् ही कभी ऐसा होने दे। लग्नस्थ शनि वाला मनुष्य नीचे शिर झुका-कर चलने वाला तो प्रायः सदा मिलेगा पर झुका हुआ बहुत कम।

चित्रांक १४, ५५, ५९, ७० के सभी सज्जन शिथिल जोड़ वाले और कुछ-न-कुछ झुके हैं। इनमें कोई छाती टाँठ करके चलने वाला नहीं। किन्तु चित्रांक ४, ५, ६ और ९ इत्यादि में से कोई सज्जन झुककर चलनेवालों में नहीं हैं। यहाँ तक कि चित्रांक ५, ६, ६० और ६७ के सज्जन भी जो काफी लम्बे व्यक्ति और बहुत ही दुबले-पतले शरीर वाले हैं बिलकुल सीधा ही होकर चलने वाले लोगों में से हैं। हाँ, इनमें से अधिकांश व्यक्ति केवल अपना शिर नीचे करके कुछ सोचते हुए से चलने वाले अवश्य हैं।

कहा जाता है कि राहु मिथुन और कन्या राशियों में अपना पूर्ण अच्छा फल देता है। कदाचित् बुध के घर में वह अपने को अधिक प्रकृतिस्थ पाता है। बुध की प्रकृति से उसका मेल भी अधिक खाता है। कदाचित् यही कारण है कि जब राहु लग्न में पड़ जाता है तो मुख की आकृति को बुध क्षेत्र के प्रभाव से बनने वाली मुखाकृति की नाईं बना देता है। बुध के लग्नस्थ होने से क्या-क्या लक्षण आकृति में उत्पन्न होते हैं इसका एक दिग्दर्शन आपको आगे मिलेगा ही। पाठक उसे देखकर समझ लें कि मेरे कहने का अभिप्राय क्या है। आप वहाँ देखेंगे कि कभी-कभी राहु किसी भी राशि में लग्नस्थ होने पर वह बहुधा कन्या राशि का चिह्न आकृति में ला देता है। कभी-कभी तो आप धोखे में पड़कर कह देंगे कि या तो कन्या लग्न में उस व्यक्ति का जन्म है या बुध लग्नस्थ है। कन्या लग्न में पैदा होनेवाले सज्जनों की आकृति का वर्णन आगे कर दिया गया है। कारण क्या है कहा नहीं जा सकता पर उक्त प्रभाव और लक्षण के प्रकट होने में कोई संदेह नहीं। देखें चित्रांक ३ आकृति कन्या लग्न की हैं। चित्रांक ३ के सज्जन से श्री पंडित टी० एस०

वेंक्टेश्वर ऐय्यर जू महाज्योतिषी, बालवानूर दक्षिण अर्काट, से डालटनगंज में लेखक के सामने ही एक दिन सन् १९३४ ई० में भेंट हुई। जुलाई या अगस्त का महीना था और संध्या ६ बजने का समय था। देखते ही ज्योतिषी जी ने कहा "You are kanya" आप कन्या हैं। सब एकाएक हँस पड़े। वे टूटी-फूटी अंग्रेजी में ही बातें कर पाते थे। क्योंकि वे न हिन्दी जानते थे न संस्कृत केवल अपनी मातृभाषा या टूटी-फूटी अंग्रेजी बोल लेते थे। अतः हमलोगों से वार्त्तालाप का उनके साथ अंग्रेजी ही माध्यम थी। तो उनकी अंग्रेजी सुनकर लोग हँस पड़े और उक्त सज्जन की ओर सब की दृष्टि जा पड़ी। उनका हँसमुख चेहरा भी हँस पड़ा। ज्योतिषी जी के कहने का तात्पर्य था कि सज्जन का जन्म लग्न कन्या है। पर जब कुंडली खोली गई तो देखा गया कि मुंसिफ साहब (पीछे जस्टिस)का जन्म लग्न कन्या नहीं पर लग्न में राहु अवश्य है और इन सज्जन में राहु के लग्नस्थ होने के वर्णित सभी लक्षण वर्तमान हैं। लम्बी आकृति, दाँतों की वनावट, ढीली-ढाली जोड़ें, त्वचा का ढीलापन और रंगत, शरीर से मेद का पूर्ण अभाव आदि अनेक लक्षण स्पष्ट हो आये हैं। उस समय आश्चर्य हुआ कि कन्या लग्न कहने में अव्यर्थ फल कथन की शक्ति से सम्पन्न और यौगिक शक्ति सम्पन्न आँखों वाले महाज्योतिषी लग्न पहचानने में भूल कैसे कर गये। उस समय लेखक का ध्यान आकृति से ग्रह स्थिति के अनुमान की सम्भावना की ओर कुछ भी नहीं गया था। जब ज्योतिषी जी का कन्या के बदले तुला होने की ओर ध्यान आकृष्ट किया तो उन्होंने इतना ही कहा कि लक्षण तो सभी कन्या लग्न के हैं अब यदि इष्टकाल ठीक न पकड़ाया होगा तो तुला की बगलवाला लग्न कन्या ही लग्न होगा। इष्ट में थोड़ी कमी से यह सम्भव था। पीछे जब लेखक की प्रगति ग्रहादि के अनुमान आदि में विशेष रुचि हुई तो देखा गया कि अकेला राहु लग्न में पड़कर अनेक अवसरों पर बुध और कन्या के सभी लक्षण उत्पन्न कर डालता है और यही कारण है उस सज्जन की आकृति में राहु ने कन्या के लक्षण स्पष्ट उत्पन्न कर दिये हैं। और यदि ज्योतिषी जी ने कन्या के सभी लक्षण आप सज्जन में उगा पाया तो कोई आश्चर्य नहीं। पीछे लेखक ने उक्त सज्जन की कुंडली का पूरा अध्ययन किया तो देखा कि इष्ट में भूल की कोई गुंजायश नहीं और उनके भविष्य वर्तमान जन्मपत्र से ठीक मिलते हैं। अतः इष्ट और लग्न दोनों ठीक हैं।

सूक्ष्म दृष्टि से देखते-देखते अभ्यास पड़ने पर ही पाठक समझ सकेंगे कि कन्या लग्न और राहु के लक्षणों में क्या-क्या भेद हैं और एक को दूसरे से विलग करने और पहचानने के कौन-कौन लक्षण हैं। अधिकांश अवसरों पर चमड़े की दशा ही (त्वचा की दशा ही) दोनों को विलग करने में पाठक की सहायिका सिद्ध

होगी। एक बार इसकी ठीक पहचान हो जाने पर भूल होने की तो कोई बात ही नहीं। स्वतः ज्योतिष के चमत्कार को देख और समझ कर बड़ा ही आश्चर्य होगा।

कन्या लग्न के जितने उदाहरण देने की इच्छा थी उतने तो प्रतिनिधि फोटो के अभाव में दे ही नहीं सका तो भी चित्रांक २९ के देखने से उसका बहुत कुछ ठीक ज्ञान हो जाना चाहिए।

अभी तक यही जतलाने का प्रयत्न किया गया कि राहु की आकृति से अनुमान कर सकने के जो-जो लक्षण इंगित किये गये हैं वे सब राहु के लग्न में बैठने के हैं या लग्न में उसके पाये जाने के हैं। पर अनुभव में तो यह भी आया है कि ऊपर और आगे चलकर जो-जो लक्षण शरीर में उगकर उनकी स्थिति लग्न में इंगित करते हैं वे सभी लक्षण ग्रहों के दूसरे या बारहवें घर में भी बैठने से प्रायः मिल जाते हैं। सभी अवस्थाओं में ग्रहों के लग्नस्थ होने के लक्षणों और द्वितीयस्थ या द्वादशस्थ होकर उन्हीं लक्षणों या उसी प्रकार के लक्षणों में क्या बारीक विभेद है इसका पूरा अनुभव नहीं हो पाया है। और जहाँ-जहाँ ऐसा विभेद ज्ञात हो गया है वहाँ-वहाँ प्रसंगानुसार उसे स्पष्ट कर दिया गया है। पर अधिकांश अभी अनिश्चित हैं। देखने में सहसा कोई विभेद जान नहीं पड़ता। अतः लक्षणानुमिति से यदि ग्रह लग्नस्थ जान पड़े पर कुंडली में उसे वहाँ न पा उसे दूसरे या बारहवें घर में पाया जाय तो अनुमान सत्य ही समझना चाहिए। लग्न से दूसरे भाव में जिसे मुख माना जाता है, पड़ने पर यदि उसके लग्नस्थ लक्षण मुखाकृति में पैदा होते देखे जायँ तो इसमें आश्चर्य का विषय हो ही क्या सकता है, देखें चित्र। पर आश्चर्य का विषय यह है कि कभी-कभी १२वें घर में बैठकर भी ग्रह मुखाकृति में वे ही प्रभाव ले आते हैं जो लग्न में बैठकर उन्हें लाना चाहिए। दूसरे और १२वें दोनों भावों के प्रथम भाव के आगे-पीछे सटे रहने के कारण ये दोनों घर भी स्यात् मुखाकृति को अपने प्रभाव क्षेत्र में ले आते हैं। कारण जो हो पर मुखाकृति को ये दोनों भाव भी प्रभावित करते हैं इसमें शंका का स्थान नहीं है। हाँ, विवेक से काम लेने पर लग्न और उससे सटे दोनों भावों की ग्रहस्थिति को भी समान लक्षणों के उत्पन्न करने पर भी विलगाया जा सकता है। देखे चित्रांक ८२ चन्द्र से दूसरे घर में केतु।

सारांश यह कि ऊपर जो-जो लक्षण राहु के लग्नस्थ होने के बतलाये गये हैं उन्हें अनेक बार द्वितीय और १२वें घरों में भी राहु के पड़ जाने पर पाने की आशा करनी चाहिए। और उदित लक्षणों के सहारे यदि राहु का अनुमान लग्न में किया गया और वह कुण्डली में दूसरे या १२वें घर में पड़ा पाया गया तो इस नियम को सत्य ही समझना चाहिए क्योंकि लग्नांश से लगभग १५° अंश

पर ही तो १२वां या २रा घर कुण्डली में मिलता ही है। इसलिए १२वें बैठा ग्रह लग्नांश से थोड़े ही क्षण पहले और दूसरे बैठा ग्रह लग्नांश से कुछ ही क्षण पश्चात् उगता है। अत: इष्ट काल के थोड़े भेद से दूसरे या १२वें घर का ग्रह पहले में आ जाता है। न भी आवे तो भी ३० अंशों का प्रभावक्षेत्र तो ग्रहों का प्राचीनों का भी सम्मत है।

राहु के द्वितीयस्थ और लग्नस्थ होने के चिह्नों में थोड़ा अन्तर है और कदाचित् इसको भली-भाँति हृदयंगम कर लेने पर द्वितीयस्थ राहु की स्थिति पहचानने में भूल होने की बहुत कम सम्भावना है।

दूसरे घर में या बारहवें भाव में राहु के बैठने पर उसका प्रभाव जितना दाँतों पर पड़ता है उतना शेष सारे शरीर पर नहीं। इसलिए लग्नस्थ और द्वितीस्थ राहु के चिह्न दाँतों पर यद्यपि समान जान पड़ते हैं तो भी द्वितीयस्थ राहु मुखाकृति को छोड़ अन्य अंगों पर अपना प्रभाव नहीं दिखा पाता। इस प्रकार जहाँ राहु के लक्षण सारे अंग में प्रकट हों वहाँ तो उसे लग्न में समझें और जहाँ केवल मुखाकृति में हो, विशेषकर दाँतों में ही उसके विकारी लक्षण हों, वहाँ समझें कि राहु द्वितीयस्थ है। किन्तु बिना पूर्ण अभ्यास के इन दोनों स्थानों की स्थिति को निश्चयपूर्वक विलगाना जरा कठिन कार्य है। बारहवाँ राहु भी वैसे ही विलगाया जा सकता है पर अधिक अवसरों पर द्वादशस्थ राहु दाँतों के साथ-साथ ललाट, ओठ, भौंहों और ललाट के दोनों कोनों में से किसी एक को भी प्रभावित करता है। यदि उसके साथ पाप ग्रहों में से एक या अनेक बैठे तो यह प्रभाव अवश्य और अधिक स्पष्ट देख पड़ता है। जहाँ ऐसा मिले वहाँ उसे प्राय: बिना चूक बारहवें कहा जा सकता है। ये लक्षण भिन्न-भिन्न रूप में मिलते हैं। जैसे ललाट में बीच से हटा हुआ कटने का या घाव का चिह्न। ललाट के कोने का किंचित धँस जाना; भौंहों पर कटने का निशान या वहाँ के बालों का असमय झड़ जाना; और ओठों का कोनों में ऐंठ जाना या टेढ़ा हो जाना। कभी-कभी चेहरा सब कुछ रहते भी एक फीकेपन और सौन्दर्यहीनता की झलक अकारण-सा दे जाता है। ऐसे अवसरों पर बड़ी सूक्ष्मदर्शी दृष्टि और विलगाव की पकड़ के अभ्यास की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। विचार में जरा-सी भूल भी निर्णय को निष्फल कर देगी। इसी से कहा कि बिना पूर्णाभ्यास के इन स्थानों की स्थिति का निश्चयपूर्वक विलगाव जरा कठिन कार्य है। लेखक तो कितने अवसरों पर अब भी इसके पहचानने में संदिग्धमानस ही रहता है। इसलिए बड़े परिश्रम और अभ्यास की आवश्यकता इस कार्य में है और पाठकों को इस विचार की पुष्टि और जानकारी के लिए बड़े धैर्य और अध्यवसाय से काम लेना पड़ेगा।

ऊपर कहा जा चुका है तो भी यहाँ दुहराना अनुचित न होगा कि दूसरे भाव के लिये कही गई बात उसके बारहवें भाव में भी लागू होती है। अर्थात् इन दोनों स्थानों में भी राहु के कारण दोनों दंतपंक्तियों और उनके आगे के दोनों दाँतों में वे ही विकार उत्पन्न होते देखे पाये जाते हैं जो उसके लग्नस्थ होने से प्रकट होते हैं। अर्थात् दाँतों के बाहर निकलने की ओर का झुकाव, दाँतों का अपनी पंक्ति में एक दूसरे पर चढ़ जाना, उनका विरल-विरल जड़ाव और सबसे अधिक ऊपर वाले अगले सामने के दोनों दाँतों का बड़ा तिरछा निकला हुआ होना और दोनों के बीच स्पष्ट खाली जगह का होना। कभी-कभी दाँत बिलकुल गंदे, कीट से भरे होते वा समय से पहले गिरे पाये जाते हैं।

यदि राहु की स्थिति शनि के साथ में द्वितीयस्थ हो तो ये लक्षण बड़े ही स्पष्ट और अपने पूर्ण विकसित रूप से पैदा होते हैं और उसमें सोचना नहीं पड़ता कि यह विकार किस ग्रह की स्थिति का द्योतक है। ऐसी अवस्था में राशियों की भिन्नता के कारण कुछ थोड़ी हेर-फेर तो होती ही है पर दाँतों की पंक्ति सुचारु रूप से सिलसिलेवार सजी हुई और सुन्दर कभी नहीं होती और न देखने में पंक्तियाँ सबल और सुगठित ही जान पड़ती हैं। यह एक प्रधान लक्षण राहु और शनि की अलग-अलग पहचान का है कि जहाँ शनि के प्रभाव में आकर दन्त और दन्तपंक्तियाँ सुदृढ़ (मजबूत) और सुगठित होती हैं वहाँ राहु के कारण वे शक्तिहीन और दुर्बल-सी ज्ञात होती हैं। अन्य विकार दोनों से ही प्रायः एक ही से पैदा होते हैं।

राहु और मंगल की एकत्र स्थिति भी दूसरे घर में दन्तपंक्ति और ऊपर के अगले दोनों दाँतों में पर्याप्त विकार उत्पन्न करती है। पर हर समय यह पहचानना उतना आसान नहीं और अभी इसके अव्यर्थ वा अचूक लक्षण समझ में नहीं आये हैं। पर तो भी कुछ उदाहरण ऐसे मिले हैं जिनमें मंगल और राहु दोनों की एकत्रस्थिति के कारण दाँत परस्पर हटे-हटे होते और बेहद लम्बे हो अगले नोक पर नीचे की ओर टेढ़े हो जाते हैं।

एक और बहुत प्रधान और अचूक लक्षण की ओर अभी तक पाठकों का ध्यान आकृष्ट नहीं कराया जा सका है। यद्यपि बिना इसे ठीक-ठीक जाने उक्त सभी लक्षण कदाचित् कभी आपको धोखा दे सकते हैं। इस लक्षण को राहु की स्थिति की जाँच के साथ कभी भूलना नहीं चाहिए और बिना इस नियम को लागू किये आप का निश्चय सत्य में परिवर्तित हो सकना अनेक अवसरों पर कठिन होगा।

वह अमूल्य लक्षण यह है कि राहु लग्न में वा कभी-कभी दूसरे या बारहवें भी जब होता है तो मनुष्य के मुखड़े को बाहर नोकदार-सा होकर निकलने नहीं देता बल्कि नाक समेत ललाट और ओठ के बीच में भीतर धँसा देता है। अर्थात् ऐसे

मनुष्य का मुख निकला हुआ नहीं होकर बल्कि गोलाकार हो जाता है। तात्पर्य यह कि जब देखते ही मुखाकृति लमलोल न होकर खोखला-सा और गोल-ढोल जान पड़े और उसे आगे की ओर निकला हुआ न कहा जा सके तो ९०% सम्भावना है कि शनि लग्नस्थ नहीं है और उसके बदले में राहु है। भौंहों के निकट की ललाट की हड्डी से लेकर यदि ठुड्ढी के सामने की हड्डी तक एक रेखा खींची जाय तो यदि नाक की नोक को छोड़कर अन्य सभी भाग इससे बाहर न जाते हुए ज्ञात हों तो समझना चाहिए कि आकृति लमलोल नहीं कही जा सकती। इसके निर्णय करते समय नाक के मध्य भाग के नीचे की ओर तालुओं की ऊपर वाली हड्डी को ध्यान से देखना चाहिए। यदि वह भाग भीतर की ओर पिचका हुआ वा दबा हुआ हो तो मुखड़ा खोखला और गड्ढेदार मालूम होगा। ये सभी राहु से प्रभावित लक्षण हैं। यदि वह भाग पिचका हुआ-सा न होकर बाहर निकलता हुआ-सा उक्त रेखा के बाहर निकलता हुआ-सा ज्ञात हो तो मुखाकृति लमलोल कोटि की कही जायगी और यह लक्षण बहुधा शनिकृत होता है। यह लक्षण विशेषरूप से तब भी प्रकट होता है जब राहु द्वितीयस्थ हो। जब ऐसा होता है तब मनुष्य का चेहरा अधिक चौड़ा तो होता पर प्रशस्त नहीं होने पाता है।

राहु की लग्नस्थिति के अव्यर्थ लक्षणों में से एक यह भी है कि मनुष्य का मुखौटा भीतर पचका हुआ और चारों ओर ध्यान देने पर खोखला जान पड़ता है। स्मरण रहे कि पहले के कथनानुसार हर दशा में राहु के कारण चेहरा सर्वदा कान्ति-हीन ही पाया जाता है। यदि कान्ति वर्तमान हो तो समझना चाहिए कि किसी अन्य ग्रह का भी प्रभाव बलवान् रूप में पड़ रहा है।

ऊपर के लक्षणों पर ध्यान देते समय एक यह बात और स्मरणीय है कि राहु के कारण चाहे वह दूसरे भाव में हो वा प्रथम में हो मनुष्य की मुखाकृति बदसूरत नहीं होने पाती। सारा मुखमंडल सुशृंखल रूप से सुगठित और सुन्दर दिखलाई पड़ता है यद्यपि त्वचा की सिकुड़न ढीलापन और कान्तिहीनता तो किसी रूप में अवश्य वर्तमान रहती है। यदि पाठकों ने फाइलीरिया और मुष्कवृद्धि वाली बीमारियों के शिकार सज्जनों की कान्तिहीन मुखाकृति का यदि सावधानी से अध्ययन और मनन किया होगा तो उन्हें पता चल जायगा कि राहु की स्थिति से त्वचा की कैसी सिकुड़न और कान्तिहीनता से तात्पर्य है। इन सभी दशाओं में मनुष्य भला-चंगा लगता हुआ भी सूखा जान पड़ता है। त्वचा में रूखड़ापन आ जाती है, झुर्रियाँ और बुढ़ापे के अन्य लक्षण मुख पर प्रकट होते हैं और चेहरा सर्वदा उदास रहता है।

अनेक मनुष्यों के विषय में पूछ-ताछ करने पर पाठकों को पता लगते देर न लगेगी कि फाइलीरिया और मुष्कवृद्धि वाले बीमारों में से अधिकों के साथ राहु वा केतु उनकी उन बीमारियों का कारण है। उनकी कुण्डलियों में प्राय: राहु की स्थिति लग्न, दूसरे, चौथे, वा आठवें घर में पायी जायगी।

राहु की कल्पना एक प्रकार से चापीय यन्त्र के एक भाग की कल्पना के रूप में हुई है और उसका आविष्कृत रूप ही है यन्त्र, और यन्त्र सर्वदा उत्तम रूप से सुसंगठित और कहीं से बेतुका नहीं होता। यही कारण है कि हो सकता है कि राहु अनेक अनिष्ट विकारों का उत्पन्न करने वाला होने पर भी चेहरे को भद्दा होने या बिगड़ने नहीं देता। यह बात शनि और केतु के लिये नहीं कही जा सकती क्योंकि उनके प्रभाव में प्राय: विपरीत ही फल होता है। अकेला शनि यदि वृश्चिक राशि का लग्नस्थ हो तो मुखाकृति अपेक्षाकृत बहुत सुन्दर ही होती है। केवल सामने से मुखौटा पतला लगता है। देखें चित्रांक ९ धनुलग्न में शनि मुखाकृति बिगड़ने नहीं देता बल्कि यदि गुरु की दृष्टि हो तो आकृति सुन्दर, भव्य और शरीर लौह तुल्य ठोस और सबल बनाता और डील तगड़ा देता है। (देखें चित्रांक ६५) पर केतु के कारण कोई न कोई विकृति मुखाकृति में अवश्य पैदा हो जाती है। राहु के प्रभाव में चेहरे का रंग फीका थकावट के चिह्नों से पूर्ण और चेहरा अनाकर्षक भी हो जा सकता है पर यह नहीं कहा जा सकता कि चेहरे की बनावट बिगड़ने पायी है। यदि राहुजनित चेहरे में केवल कान्ति और थोड़ी चर्बी ला दी जाय तो चेहरा अवश्य अत्यन्त सुन्दर हो जाय। किन्तु इन्हीं दोनों के अभाव में वही चेहरा रूखा, उदास और अनाकर्षक हो जाता है। इस ग्रह के मुख पर पैदा होने वाले लक्षणों को ठीक-ठीक पहचानने और दूसरे ग्रहों के बहुत कुछ वैसे लक्षणों से विभेद करने के लिये अपनी दृष्टि शक्ति को काफी दिनों तक अभ्यास के द्वारा शिक्षित कर लेना पड़ता है। जल्दीबाजी में सर्वदा भूलों के लिये स्थान रह जाता है।

जब राहु लग्न में होता है तो मनुष्य अपनी वेशभूषा पर पर्याप्त ध्यान देता हुआ देख पड़ता है। अर्थात् वह गन्दा नहीं रहना पसंद करता। यद्यपि उसके कपड़े मामूली होते हैं और उसमें कोई विशेष रूप की सफाई नहीं देख पड़ती तथापि उसकी वेशभूषा अच्छी होती है और उसका वह पर्याप्त ध्यान रखता है। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त यदि मनुष्य होता है तो उसका पहनावा शिर से पैर तक ठाट-बाट के साथ होता है। वह यूरोपियन सूट बहुत पसन्द करता है। इसकी टाई, जूते और पैतावे तथा उसके बाल इत्यादि में चुनाव और सजावट की बड़ी अभिरुचि पायी जाती है। यदि कोई पूछे तो कहना होगा कि राहु हर प्रकार यूरोपियनों का प्रतीक है। ऊपर से नीचे तक सूट को सजकर पहनने की उसकी आन्तरिक इच्छा उसके शरीर

के प्रत्येक कपड़े से टपकती रहती है। चित्रांक ५५ देखें। पहनावे की यह सजावट और सफाई केतु और शनि के साथ प्राय: नहीं पायी जाती। अन्य ग्रहों की दृष्टि और युति इत्यादि से किसी व्यक्तिविशेष में यदि ऐसी अभिरुचि पाई भी जाय तो ध्यानपूर्वक देखने में कहीं-न-कहीं उसमें कुछ दोष आँखों को खटक ही जायगा। किन्तु राहु पर यदि कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े तो यह बात राहु के लग्नस्थ होने पर नहीं पायी जायगी।

राहु और केतु की मुखाकृतियों (मुखड़ों वा मुखौटों) के विभेद का यह प्रधान लक्षण स्मरणीय है कि राहु के लग्नस्थ होने पर मुँह का झुकाव नोकदार और पतला होने की ओर का होता है पर केतु लग्नस्थ हो तो मुखड़ा चौड़ा और प्रशस्त होता है। दोनों गाल धँसे हुए, गालों की हड्डियाँ उभड़ी हुई विशेषकर नाक के मध्य की बगल में आधे इंच हटकर और मुख की दोनों ओर छोरों पर मांस उभड़ा हुआ होता है। अर्थात् देखने में वहाँ दोनों ओर एक छोटे टीले-सा ऊँचा स्थान विदित होता है जिससे गाल के गड्ढे और भी स्पष्ट विदित होने लगते हैं। दाँत काफी मोटे और लम्बे होते हैं पर इनकी बनावट की विशेष पहचान जिससे राहु से उनको विलगाया जा सके, आपको आगे केतु के प्रकरण में मिलेगी। चेहरा बैठा और धंसा हुआ पर उभड़ा हुआ और कभी-कभी काफी मजबूत (पर्याप्त दृढ़), जबड़े की हड्डियाँ निकली हुई, नाक के मध्य की बगल में गाल धँसे हुए (ध्वस्त) और देखने में भयावह लगती हैं। आँखें गोल और बातें करते समय बाहर निकलती हुई-सी और बेजान ज्ञात होती हैं। विदित होता है कि बोलते समय जातक की आंखों पर काफी बल पड़ रहा हो और वे उसके दबाव में बाहर पिचककर निकलती हुई-सी हों। किन्तु आँखों में कान्ति का सर्वदा अभाव रहता है। कभी-कभी तो आँखों के कोनों से कीच निकलते रहते हैं अथवा कीच का कुछ-कुछ भाग दोनों कोनों में से किसी में अवश्य चिपका पाया जायगा।

राहु और केतु के वेशभूषा में यह विभेद होता है कि केतु के कारण मनुष्य का पहनावा बड़ा ही भद्दा होता है। जहाँ राहु अपने कपड़ों को सजाकर सुचारु रूप से रखने की प्रबल अभिरुचि प्रदर्शित करता है वहाँ केतु ठीक इसके विपरीत अपनी वेशभूषा पर कुछ ध्यान नहीं देता। भीतर से वह इसे अत्यन्त अनावश्यक समझता और उसके कपड़े-लत्ते ढीले-ढाले, बेढंगे, मैले और किसी-किसी दशा में तो चिथड़े ही होते हैं। काफी उच्च शिक्षा प्राप्त सज्जनों में भी और जो अन्य प्रकार से दूसरे कार्यों में अपनी विद्या-बुद्धि का काफी परिचय देते हैं उनमें भी अपने कपड़े-लत्तों की ओर विशेष उपेक्षा देखी जाती है। कदाचित् केतु के प्रभाव में उनके मन में धार्मिक अन्धविश्वास घर कर लेता है। अत: वे आत्मतुष्टि में बाहरी दुनिया के मनोभावों

और विचारों को उपेक्षित कर डालते हैं और दूसरों के भले-बुरे दृष्टिकोण के परे हो जाते हैं और अपनी वेशभूषा पर कुछ भी ध्यान देना बेकार समझते हैं। देखें चित्रांक ८। जहाँ राहु की वेशभूषा नियमबद्ध ढंग की होती है वहाँ केतु में इसकी कोई परवा भी नहीं रहती। केतु और राहु वाले व्यक्तियों की प्रकृति, स्वभाव, चाल-चलन, बातचीत और विद्या-बुद्धि इत्यादि का विशेष वर्णन तो पाठकों को आगे प्रसंगानुसार मिलेगा ही। यहाँ केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि केतु जिस व्यक्ति के लग्न में होता है वह मनुष्य अपने को खुलकर धार्मिक बतलाता और धार्मिक वार्तालाप का पूर्ण इच्छुक होता है। यदि उसका केतु किसी प्रकार भ्रष्ट या शक्तिहीन न हुआ तो वह धार्मिक या दार्शनिक चर्चा में प्रवीण और धर्मज्ञ भी होता है। पर अन्यथा वह केवल बाहर से आडम्बरी होता है और उसका ज्ञान बिल्कुल छिछला किन्तु चाहे वह ज्ञानी वा विज्ञ हो वा न हो पर धर्मवार्तालाप उसे बड़ा प्रिय होता है। बातचीत के क्रम में अवसर पाते वह उस चर्चा को ला घसीटता है। ईश्वर, भगवान् और धर्म के नाम उसके मुँह से बार-बार निकला करते हैं।

किन्तु लग्नस्थ राहुवाला व्यक्ति कभी ऐसा नहीं करता। राहु वाला व्यक्ति भी धार्मिक ही झुकाव का होता है और यदि चर्चा चल जाय तो वह उससे मुकरता तो नहीं पर स्वयं ऐसी चर्चा उठाने का या उसमें जल्दबाजी का इच्छुक वह नहीं होता। वस्तुतः केतु के जातक से राहुवाला जातक अधिक धार्मिक होता है पर उसकी यह बात उसके कार्यों से अधिक प्रकट हुआ करती है, बातों से नहीं। राहु सत्य और उचित मार्ग के अवलम्वन का सदा पक्षपाती होता है और अपने में उन गुणों के धारण करने का हिमायती होता है और दिखलावे का प्रयास नहीं करता। केतु का जातक, एक शब्द में, बेढंगा होता है।

राहुवाले व्यक्ति का भी ईश्वर पर पूर्ण भरोसा होता है और वह हृदय से आस्तिक होता है। केतु वाले जातक का विश्वास देवी-देवता और भूत-प्रेत पर अधिक होता है और वह भीतर से वस्तुतः आस्तिक नहीं होता। उसकी अनेक बातें बिक्षिप्त की बातों की नाईं हुआ करती हैं। अनेकांशों में वह वस्तुतः औघड़-पंथी होता है। केतुवाला जातक ऐसा भान करता है कि उसने सचमुच भूत-प्रेतों का साक्षात्कार किया है वा देखा है। मन्त्र-तंत्र पर उसकी पूर्ण आस्था होती है। यदि केतु शक्तिशाली और शुभ हुआ तो वह संन्यस्त भी हो जाता है।

सारांश यह कि जहाँ राहु का जातक वर्त्तमान समाज-व्यवस्था, रहन-सहन, चाल-चलन, आदि के नियमों के पालन का कट्टर पक्षपाती होना चाहता है वहाँ केतु वाला व्यक्ति नियम के भीतर चलने का बिलकुल विरोधी रहना चाहता है। उसके सभी ढंग निराले और जनसाधारण को नापसन्द होने लायक हुआ करते हैं।

बातों में केतु का जातक धार्मिक ग्रंथों और साधु-सन्तों की वाणियों, श्लोकों, दोहों और चौपाइयों के उद्धरण में प्रवीणता दिखलाता है। दार्शनिक व्याख्यायें करने और सुनने का बड़ा इच्छुक तो वह प्रत्यक्ष जान पड़ता है पर इस सम्बन्धी सारा वार्तालाप छिछला, सारहीन, अतर्कसंगत, और यथार्थ—ज्ञानशून्य ही होता है। हाँ, यदि केतु कारणविशेषवश, कुण्डली में बली और शुभ हुआ तो बात दूसरी होती है। देखें चित्रांक ६४ जिसमें धनुलग्नस्थ केतु बली गुरु तथा अन्यों की शुभ-दृष्टि के प्रभाव में उत्तम फलदायक हो गया है। चित्रांक ६२ में ठीक उसके प्रतिकूल फलद केतु है। राहु का जातक भी, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, धार्मिक प्रवृत्तिसम्पन्न ही होता है पर इतना खुलकर बातचीत नहीं करना चाहता। इन बातों का सिलसिला उठाना या उठे हुए को जारी रखना नापसंद करता है पर धार्मिक प्रवृत्ति का ही होता है।

अभीतक लग्नस्थ राहु पर ही अधिक ध्यान दिया गया है पर अन्य भावों में भी उसके बैठने से कई विशिष्ट लक्षण प्रकट होते देखे गये हैं। पर इतना सदा स्मरण रखना चाहिए कि अन्य भावों के वर्णित लक्षण मेरे पर्याप्त अनुभूत नहीं हैं और उनमें सुधार की सम्भावना बहुत है। तौ भी जो देखने में आया है उसे लिख देना ही शास्त्र की उन्नति में सहायक है।

राहु जब दूसरे भाव में पड़ता है तो अनेक अवसरों पर तो यह लग्नस्थ के ही सभी लक्षण प्रादुर्भूत कर डालता है। अतः जो कुछ वर्णन ऊपर किया जा चुका है वह सभी द्वितीयस्थ राहु का भी समझा जा सकता है। विशेष यह कि द्वितीयस्थ राहु दो बातें प्रायः अव्यर्थ प्रकट करता है। पहली यह कि द्वितीयस्थ राहु दाँतों को लम्बा करके काफी बाहर की ओर निकालकर बातें करने की ओर की प्रवृत्ति देता है। लग्न से अधिक प्रभाव इस विषय में वह यहाँ प्रकट करता है। यदि दूसरे घर के राहु के साथ शनि या मंगल की दृष्टि या योग हो तो यह लक्षण बिना प्रकट हुए रहता नहीं। दाँत बड़े-बड़े और बेढंगे निकल आते हैं। दाँतों के बीच का रिक्त स्थान भी काफी खुला हुआ और चौड़ा होता है। जैसे-जैसे मनुष्य की अवस्था प्रौढ़ता को प्राप्त होती जाती है वैसे-वैसे ये लक्षण भी विशेष स्पष्ट होते जाते हैं। यह बात राहु के लक्षणों के अध्ययन में प्रत्येक भाव के सम्बन्ध में सर्वदा स्मरण रखनी चाहिए। राहु और शनि और इसीलिए केतु भी अपने-अपने लक्षण पूर्ण रूप से प्रौढ़ावस्था में ही प्रकट करते हैं। बल्कि यों कहा जा सकता है कि ये यथाशीघ्र प्रौढ़ता के लक्षण मनुष्य में अनवसर ही उत्पन्न करके दम लेते हैं। ३० वर्षों का व्यक्ति ४० वर्षों का, ४० का ६० का आदि-आदि इसी प्रकार से आगे का लगने लगता है।

अतः राहु के द्वितीयस्थ होने से दाँतों पर इसका विशेष असर पड़ता है। साथ ही पाप सम्बन्ध से (पाप ग्रहों की युति, दृष्टि, या स्थिति हो तो) यह प्रभाव और भी पूर्ण विकराल रूप धारण कर लेता है।

दूसरी बात वह यह करता है कि मनुष्य के मुखड़े को धँसा देता है। नाक के आधे भाग की अस्थि पुञ्ज की बनावट कुछ ऐसी हो जाती है कि वह भाग पचक कर बैठ जाता और सारा चेहरा देखने में खोखला नहीं तो भीतर की ओर दबा हुआ अवश्य जान पड़ता है। स्मरण रहे कि केवल राहु के ही प्रभाव में होवे तो चेहरे की आकृति की सुन्दरता वा सुगठन बिगड़ने नहीं पाता। चेहरा भरा हुआ होने पर भी उक्त लक्षण की छाप प्रवीण व्यक्ति को भाँप सकने में विलम्ब होता है।

ये लक्षण लग्नस्थ राहु के भी हैं। अतः दोनों की सूक्ष्मता बिना पूर्ण अनुभव के मन में ठीक बैठ नहीं सकती। इस लक्षण के साथ यदि यह भी देख पड़े कि मनुष्य बातों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर (अर्थात् अतिरंजन का पुट देकर) कहने का अभ्यस्त-सा है तो समझें कि राहु द्वितीयस्थ है। ऐसे होने पर मनुष्य से सम्हलते-सम्हलते भी कुछ बात झूठी, अनुचित वा गलत कहा जाती है। अतिरंजना तो द्वितीयस्थ राहु का स्वाभाविक गुण-सी है।

द्वितीयस्थ राहु के दो पारस्परिक प्रतिकूल लक्षण प्रकट होते देखे गये हैं। या तो बड़ा ही कर्कस, अप्रिय और चुभती बातें करने में अपनी सानी नहीं रखता (अद्वितीय होता है), या ऐसी-ऐसी विनम्र बातें करके आपको भुलावा देकर लुभा लेने की चेष्टा करता है कि आप झटपट उसमें फँस जाते हैं। किन्तु कुछ दिनों के बाद ही आप को पता लगेगा कि ये लुभाने वाली बातें उसने अपने किसी छिपे अभिप्राय की सिद्धि के लक्ष्य से ही आप से उस समय करके आप को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। चाहे व्यक्ति लब्धप्रतिष्ठ हो, विख्यात हो, ज्ञानी वा सभ्य हो उसकी बातें मुलायम होने पर भी चातुर्य भरी और अन्त में फँसा देने वाली होती हैं। यदि बड़े-बड़े नीतिज्ञों, राजनीति विशारदों की कुण्ड-लियों में यह योग अन्य सुयोगों के साथ पाया जाय तो ऐसा नीतिज्ञ बड़े-बड़ों को भी बड़ी-से-बड़ी समस्या को सुलझाते समय आँखों में धूल झोंक छका सकता है और अपनी मनोरथसिद्धि में सफल हो सकता है। विज्ञ पाठकों को इसकी परीक्षा करके देखनी चाहिए।

यदि राशि अच्छी मिले और अन्यान्य कारणों से राहु कुण्डली में बली और शुभ हो तो उस व्यक्ति के अतिरंजन को समझना कठिन होता है और इसका पता बहुत पीछे चलकर फलों के प्रकट होने वा उसकी प्रकृति को जान लेने पर लगता है पर

यदि अशुभ और निर्बल हुआ तो वह अधिक स्पष्ट और शीघ्र ही बिना परिश्रम समझ में आ जाता है।

हर अतिरंजन में कुछ-न-कुछ असत्य की मात्रा रहती ही है। अतः कालान्तर में द्वितीयस्थ राहु वाला व्यक्ति असत्य भाषण में संकोचहीन हो जाता है और अवस्था के साथ उसके असत्य भाषण की मात्रा भी बढ़ती जाती है। उसका यह स्वभाव-सा हो जाता है और उसके राहु की प्रकृति के अनुरूप नहीं चाहने पर भी वह कुछ-न-कुछ झूठ का पुट अपने वक्तव्य में दे ही डालता है।

यदि व्यक्तित्व अन्य कारणों से प्रभावशाली और बलवान हुआ तो ऐसा मनुष्य अपने प्रिय वचनों से धोखे में लाकर लोगों को अपने अनुकूल करने और अपना अभिप्राय साधने में कुशल हो जाता है। यों भी कहा जा सकता है कि ऐसा मनुष्य महाराजनीतिज्ञ होता है। यदि व्यक्तित्व अप्रभावशाली और शक्तिहीन हुआ तो मनुष्य को राहु का प्रभाव एक खासा झूठा बना डालता है।

भिन्न-भिन्न और कभी-कभी विपरीत फलों को सुनकर पाठक कभी-कभी घबरा जा सकते हैं या गड़बड़ी बोध करने लग सकते हैं कि आखिर ये विपरीत फल एक ही साथ किसी व्यक्ति में प्रकट हो कैसे सकते हैं। इतने फल एक साथ एक ही व्यक्ति में पाने की आशा भी दुराशा ही है।

बात सही है। पर घबराहट की नहीं। एक ही ग्रह के प्रभाव से प्रभावित पाठकों को भाँति-भाँति के लोगों से साक्षात्कार हुआ करेगा। उन में से किसमें कौन लक्षण पाये जायेंगे यह कहना कठिन है। कभी-कभी एक ही व्यक्ति में इनमें से अनेक लक्षण एक साथ ही मिल जायेंगे तो कभी-कभी एकाध से ही सन्तोष करना पड़ेगा। किसी में कोई तो किसी में कोई और लक्षण मिल जाया करेंगे। पर स्मरण रहे कि इन लक्षणों के अतिरिक्त अन्य लक्षणों के प्रकट पाये जाने पर उनसे राहु की स्थिति की पकड़ हो सकेगी इसमें संदेह है। अवर्णित अन्य लक्षणों में से कौन-कौन राहु की स्थिति का द्योतक है या होगा यह तो अभी खोज निकालना है। ऐसे लक्षणों की सूची तो अन्वेषण और शोध के साथ सदा बढ़ती जायगी। हमारा यह वर्तमान अध्ययन राहुकृत सभी लक्षणों की सूची एकत्र करने का नहीं है। हम तो अभी उन लक्षणों मात्र को विलग समझने का प्रयत्न कर रहे हैं जिन्हें पा जाने पर राहु की स्थिति पकड़ सकें। सारांश कि हम कुण्डली में ग्रह देखकर उससे उत्पन्न होने वाले सम्भावित लक्षणों का फलादेश नहीं कर रहे हैं। हम तो ठीक उसके विपरीत आकृति में लक्षण देखकर कुण्डली में (अर्थात् जन्मकाल में) ग्रह कहाँ बैठा है उसे पता लगा रहे हैं। बार-बार दुहराना आवश्यक जान पड़ता है कि ग्रहकृत या ग्रहाधीन अनेक शारीरिक चिह्न या पारिवारिक या सामाजिक फल होते

हैं। उनमें से कौन व्यक्तिविशेष में पाये जायेंगे यह हमारे अध्ययन का विषय हो नहीं। हम तो यदि कोई लक्षण उगा या प्रकट आकृति में पा जायें तो यह खोज कर रहे हैं कि यह किस ग्रहकृत है और वह जन्मकाल में किस स्थिति में था, जहाँ से उसने उस लक्षण को व्यक्ति में उत्पन्न कर दिया है। ऐसा एक चिह्न या लक्षण भी पर्याप्त हो सकता है और यदि पा जायें तो अनेक भी। न जाने कौन-सा लक्षण हम किस व्यक्ति में पा जायें इसलिए ऐसे सभी परिचित सभी चिह्नों और लक्षणों की ओर पाठकों का ध्यान ले जाना आवश्यक है।

तात्पर्य यह कि वर्णित लक्षणों में से कोई-न-कोई एक या अनेक एक साथ वा विलग मिल जाया करेगा। जितने ही अधिक लक्षणों से अनुमान की पुष्टि होगी उतना ही उस अनुमान के अधिक सत्य सिद्ध होने की आशा करनी चाहिए।

तृतीयस्थ राहु यदि मंगल या शनि के साथ हो तो मनुष्य के कानों में दोष होता है। चाहे वह उसके कारण कम सुनता है या वह बहरा ही हो जाता है। ऊँचा सुनना या बहरापन पापग्रस्त राहु के तृतीयस्थ होने का अव्यर्थ लक्षण नहीं अतः यह देश-काल-पात्रानुसार सही अनुमान का सहायक लक्षण मात्र हो सकता है। चित्रांक ७३ में दोष वर्तमान है पर अल्पमात्रा में।

तृतीयस्थ राहु मनुष्य को अत्यन्त निर्भीक बनाता है। उसका पराक्रम उसकी बातचीत और बातचीत की प्रणाली से झलकता है। लक्षण अव्यर्थ या अचूक नहीं पर विचारणीय अवश्य है। अनुभव के बल पर पर्याप्त सुधार की जगह है।

यदि मनुष्य की धड़ का मध्य भाग (विशेषकर उसकी छाती और उसके आस-पास का भाग) शिकस्त, कोतह, या दबा हुआ जान पड़े या पता चले कि उसके शरीर के उस भाग की बनावट किसी प्रकार सुडौल न होकर आँखों में खटक जा रही है तो समझना चाहिए कि चतुर्थ भाव में राहु है। यह लक्षण अव्यर्थ न होकर एक सहायक मात्र है।

राहु के चतुर्थ होने पर मनुष्य थोड़ा बहुत साँजर (Fileria) की बीमारी का शिकार हुआ करता है। अवस्था की प्रौढ़ता के साथ-साथ यह लक्षण और भी स्पष्ट होता जाता है। जब किसी मोटे या प्रत्यक्षतः तन्दुरुस्त देख पड़ने वाले मनुष्य को आप कान्तिहीन पावें और देखें कि शरीर शुष्क-सा जान पड़ता है तो आप अनुमान कर सकते हैं कि यह मनुष्य साँजर का शिकार है और इसके

चतुर्थ राहु होगा। यदि राहु गुरु के साथ चतुर्थ हो तो आँख मूंद कर साँजर की बीमारी बतलाई जा सकती है।

यदि मनुष्य बहुधा सर्दी और खाँसी का शिकार हो जाता हो या सन्निपात रोगाक्रान्त हो जाया करता हो और उपरोक्त ४ थं राहु के लक्षण हों तो ५, ३, ६ राशियों में शनि, सूर्य या गुरु का साथ राहु को ४ थं में हो ऐसा अनुमान भी कर सकते हैं। परन्तु ये सभी लक्षण राहु की स्थिति के अव्यर्थ निश्चायक नहीं हैं।

जब कभी मनुष्य नाकों से बोलता दृष्टिगत हो, नाक की बनावट में विशेषता हो और नाकों की भनभनाहट की आहट उसकी बातों में पड़े तो राहु सम्भवतः ५वाँ ही होगा। इनमें अव्यर्थ लक्षण कोई नहीं है।

पैरों में घाव के निशान उँकवत, और खरड़ की बीमारी अथवा यन्त्रादि से कटे का चिह्न रह गया हो या पैरों में उजला दाग या कुष्ठ के लक्षण हों तो अनेक अवसरों पर राहु का षष्ठस्थ होना सफलतापूर्वक अनुमान लिया जा सकता है। यह नियम भी अभी परीक्षणीय है। राहु से भिन्न पापग्रहों से भी ऐसे ही मिलते-जुलते लक्षण पैदा होते हैं। शोध इनके लक्षणों से राहु के लक्षणों का विभेदसूचक लक्षण ज्ञान से उस नियम को परिपक्व बनाया जा सकता है।

७वें भाव से १०वें भाव तक की राहु की स्थिति का ज्ञान केतु की लग्न से छठे की स्थिति के ज्ञान से अनुमाना जा सकता है। केतु के इन भावो में होने के लक्षण आगे केतु के प्रकरण में वर्णन किये जायेंगे। इस प्रकार राहु की स्थिति लग्नादि १२हों भावों में अनुमानी जा सकती है। उसी प्रकार ऊपर जो लग्न से छठे भावों तक की राहु की स्थिति भाँपने बताई गई उससे केतु के ७वें से १२वें भाव तक की स्थिति इस प्रकार अनुमानी जा सकती है कि केतु राहु से सदा १८० अंश वा ६ राशियाँ दूर सदा रहता है। अतः १, २, ३, ४, ५, ६, भावों में राहु हो तो क्रमशः ७, ८, ९, १०, ११, १२, वें भावों में केतु रहता ही है।

अब तक राहु की स्थिति के जो लक्षण बतलाये गये वे सभी लग्न से प्रथम द्वितीय भाव आदि की गणना के हिसाब से बतलाये गये। पर चन्द्र लग्न से भी मिलते हैं। जो-जो लक्षण राहु की स्थिति लग्न वा उससे दूसरे-तीसरे भाव में होने पर के कहे गये हैं वे सभी लक्षण राहु के चन्द्र लग्न में वा उससे दूसरे इत्यादि भाव में बैठने से भी अवश्य उत्पन्न होते हैं।

प्रारम्भिक अध्ययन काल में जब लेखक इस विषय का निरीक्षण किया करता था तो ऐसा भान होता था कि लग्न से ही विचारने पर ये फल घटते हैं और

लग्नाधिपति से ही ये लक्षण शरीर में उत्पन्न होते हैं। पर ज्यों-ज्यों अनुभव बढ़ता गया और इस पर विचार प्रौढ़ होते गये त्यों-त्यों देखा गया कि वह धारणा गलत है। चन्द्रमा इस सम्बन्ध में लग्न से भी अधिक उपयोगी और बली है और इस सम्बन्ध में वह अपना विशिष्ट स्थान रखता है। पाठकों को निःसंकोच कहा जा सकता है कि चन्द्रमा को यदि अधिक नहीं तो लग्न से किसी प्रकार कम महत्त्व इस सम्बन्ध में नहीं दिया जा सकता। लेखक का मत तो अब यह है कि चन्द्रमा के साथ बैठने वाले ग्रह मनुष्य की आकृति में लग्नस्थ ग्रहों से अधिक स्पष्ट अपनी छाप प्रकट करते हैं। इसलिये जो कुछ वर्णन लग्न को लक्ष्य कर किया गया है उसे चन्द्र को भी लक्ष्य कर किया गया समझें।

बिहार सरकार के एक लब्धप्रतिष्ठ उच्चाधिकारी से एक बार प्रथम-प्रथम साक्षात्कार हुआ जिन्हें देखने का भी संयोग उसके पहले नहीं हुआ था। उसी भेंट में बातों के क्रम में इस शास्त्र की चर्चा चल पड़ी और उनका लग्न और ग्रहस्थिति बताने को एकाएक कहा गया। तत्काल बिना अधिक सोचे उत्तर दे दिया गया क्योंकि बातें करते समय पहले ही लेखक उनकी आकृति पर अपनी आदत के अनुकूल विचार जमा लिया था और अवसर की प्रतीक्षा में ही था। बतलाया गया कि उनके लग्न में शनि अथवा राहु की स्थिति है और लग्न से दूसरे घर में एक नहीं अनेक ग्रहों की स्थिति के चिह्न स्पष्ट हैं। यह भी कहा कि यह बात लग्न वा चन्द्र से ठीक निकलेगी। सुनते ही देखा उनके चेहरे पर प्रसन्नता की झलक मिली और उन्होंने झट अपनी कुण्डली एक कागज पर खींच डाली। राहु के विषय में इतना और स्पष्ट कर दिया था कि लग्न और चन्द्र लग्न दोनों में से एक के साथ अवश्य है। कुण्डली पर दृष्टि डालते ही देखा कि लग्न तो रिक्त है पर राहु चन्द्रमा के साथ है और लग्न से दूसरे घर में चार ग्रह वर्तमान हैं।

उसके पश्चात् जब कुण्डली की शुद्धता की जाँच की गई और शुद्ध-शुद्ध कुण्डली तैयार की गई तो देखा गया कि इष्ट में बिना हेर-फेर के शनि लग्न दूसरे में न होकर लग्न में ही है और चन्द्र राहु युति अक्षुण्ण रही। दूसरे घर में अन्य ग्रहों की स्थिति भी ठीक ही रही। यहाँ विचारणीय बात यही है कि आकृति में लग्न या चन्द्र के साथ शनि और राहु के होने के स्पष्ट चिह्न आकृति में थे पर यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता था कि शनि लग्न में था कि चन्द्र के साथ। असल कुण्डली में वह लग्नस्थ था ही नहीं पर शुद्ध लग्न बनने पर वह लग्नस्थ मिला। राहु भी लग्नस्थ हो सकता था पर चन्द्र के साथ के चिह्न उसमें स्पष्ट थे। शारीरिक कृशता और नसों की प्रधानता के प्रत्यक्ष होते हुए भी आँखों का अविकृत सुन्दर जड़ाव लग्नस्थ शनि की स्थिति का अनिश्चायक था। गहरे अक्षिकोटरों के साथ आँखों का सुन्दर जड़ाव और मुखड़े का लमलोल न होना तथा सारे शरीर की गठन की भव्यता का

नष्ट न होना चन्द्र-राहु युति का निश्चायक था। यहाँ चन्द्र + राहु के लक्षण शनि + लग्न के लक्षणों के ऊपर प्रधानता या मुख्यता प्राप्त थे। अतः चन्द्र लग्न को इस सम्बन्ध में लग्न से कम प्रधानता किसी प्रकार नहीं दी जा सकती। चित्र के अभाव में केवल कुंडली से ही अब संतोष करना पड़ रहा है जो इस प्रकार है लग्न मेष में शनि, वृष में सू० शु० बु०, कर्क में मंगल, सिंह में केतु, मकर में गुरु कुम्भ में चन्द्र-राहु।

राहु की एक और बड़ी सूक्ष्म विशेषता है जो बड़े परिश्रम के पश्चात् ठीक-ठीक मन में बैठ (या जम) पाती है किन्तु यदि एक बार ठीक-ठीक मन में बैठ जाने पर लग्नस्थ राहु की स्थिति की पहचान का एक प्रधान अव्यर्थ लक्षण हाथ लग जाता है।

कहा जाता है कि कन्या राशि राहु का घर (स्व गेही) है। किसी ने राहु का घर (वा क्षेत्र) कन्या बतलाते समय इसका कोई कारण नहीं बतलाया है पर देखने में यह आया कि राहु चाहे किसी राशि का क्यों न होकर लग्नस्थ हो पर वह कन्या राशि के चिह्न आकृति में प्रकट अवश्य करता है। कन्या के जो-जो लक्षण हैं वे आगे लग्नों की पहचान के वर्णन के प्रकरण में मिलेंगे। यहाँ मात्र इतना स्मरण रखना है कि चौड़ा, गोला (या लम्बा-चौड़ा बराबर) और हँसमुख चेहरा जिसमें उजली (या दुधिया) दन्तपंक्ति विराजमान है, कन्या लग्न के आधारभूत प्रधान लक्षण हैं। विशेष यह है कि नाक की दोनों ओर गाल के कोनों से लेकर नीचे सीध में ठुड्ढी की दोनों ओर के गालों के किनारे या यों कहिये कि मुख के कोनों तक यदि हम चले आवें तो ये सभी अंग एक लम्बी रेखा की सीध में होंगे और चेहरा सामने से पचकाऊ होगा।

ये सभी लक्षण बुध और कन्या दोनों के हैं। पर आश्चर्य तो यह है कि ये सभी लक्षण अकेला या अन्यान्य ग्रहों के साथ भी राहु के लग्नस्थ होने पर भी पैदा होते हैं। देखें चित्रांक २३, ५८ और इन्हें परस्पर मिलावें। राहु, कन्या लग्न और बुध के इन लक्षणों में भेद केवल इतना है कि बुध या कन्या लग्न के होने से चेहरे पर गम्भीरता की कालिमा नहीं झलकती किन्तु राहु में यह झलक जाती है और यही झलक राहु की स्थिति की निश्चायिका है। अभ्यास के बिना सरलतापूर्वक राहु की इस विशेषता को यथेष्ट रूप में पकड़ा नहीं जा सकता। साथ ही यह तो कभी भूलना ही नहीं चाहिए कि लग्नस्थ राहु के कारण देहयष्टि ऊँची (लम्बी) और ढीले-ढाले जोड़ों वाली होती है और कन्या का कद छोटेपन की ओर की स्वाभाविक प्रवृत्ति रखता है। बुध में कद तो कभी-कभी लम्बा होता है पर तब देह-यष्टि न तो दुबली-पतली और न ढीली-ढाली जोड़ों वाली ही होती है। अतः राहु के कारण उत्पन्न कन्या और बुध के लक्षणों को सफलता से विलगाया जा सकता है।

इन्हीं सब कारणों को सूक्ष्मता से जान कर ही कदाचित् प्राचीन ज्योतिर्विदों ने राहु का घर कन्या माना है। आगे चलकर पाठकों को पता लगेगा कि मिथुन लग्न, जो बुध का घर है, और कन्या; लग्न में विशेषता या विभेद यह है कि मिथुन के प्रभाव में चेहरे की आकृति ऊपर से नीचे की ओर लम्बी होती है पर कन्या चारों ओर से बराबर जान पड़ती और मुख को गोलाकार पर प्रशस्त बनाती है। देखने में यह आया है कि मिथुन का राहु इन विशेष लक्षणों को नहीं उत्पन्न करता पर वह कन्या के सभी लक्षण तो प्रकट करता है। कहने का तात्पर्य यह कि राहु की लग्नस्थिति से कभी-कभी कन्या के स्पष्ट लक्षण तो स्पष्ट देख पड़ते हैं पर मिथुन के नहीं। कन्या और मिथुन की आकृतियों में विशेषता यही है कि कन्या के प्रभाव से मुखाकृति गोलाकार तो होती ही है साथ ही जबड़ों की हड्डियाँ चौड़ी और दृढ़ अर्थात् प्रशस्त भी होती हैं। चित्रांक २३। मिथुन के प्रभाव से मुखाकृति लम्बी (ऊपर से नीचे की ओर) होती है चित्रांक ४७। राहु से कन्या के लक्षण पैदा होने पर चेहरे पर एक गम्भीरता की छाप वा उदासीनता आ जाती है जिससे चेहरा हँसमुख नहीं रहने पाता। इसी से अकेला राहु और अकेला कन्या का विभेद लग पाता है। सारांश यह कि लग्नस्थ राहु मनुष्य को लम्बा बनाता है पर उसका शरीर लोहे के तार के ऐसा देखने में पतला पर भीतर-से बहुत ही दृढ़ (मजबूत) बनाता है जिससे मनुष्य बड़ा परिश्रमशील और बड़ी बहादुरी से संकटों का सामना करने में समर्थ होता है। त्वचा उसकी सारे शरीर में ढीली बैठी रहती है और देखने में रक्तहीन पीली वा झाँवें की-सी मैलापन लिये जान पड़ती है। त्वचा में ठीक उसी प्रकार की सिकुड़न दृष्टि में आती है जैसी ढलती अवस्था वाले व्यक्ति के शरीर में पायी जाती है।

मुँह में सूक्ष्म फुन्सियों के बचे दाग की बहुलता होती है जिससे चेहरे पर छाया की-सी श्यामता और त्वचा की सिकुड़न का भान होने लगता है। मुख की बनावट ऐसी होती है कि सामने का भाग थोड़ा भीतर पिचका हुआ जान पड़ता है और सारे मुखमण्डल पर एक साथ ध्यान देने पर उसमें एक खोखला गड्ढा-सा जान पड़ता है। चाहे कुछ भी हो पर मुखड़ा नोकदार और आगे की ओर निकला हुआ (वा बढ़ा हुआ) सूच्याकार नहीं होता। दाँतों की पंक्ति की बनावट विकृत होती और सामने के दो उपरले और दो निचले दाँतों के मध्य में रिक्त स्थान वा खोखला वा खाली जगह होती है। अर्थात् ये दाँत के दोनों जोड़े परस्पर एक दूसरे से सटे हुए न रहकर हटे होते हैं। यही लक्षण राहु की पहचान का एक अव्यर्थ वा अचूक लक्षण है। इतना और विशेष स्मरणीय है कि राहु के कारण दांत आगे को निकले और बढ़े होते हैं। शनि से भी ऐसा हो जाता है। पर इन दोनों में विभेद है कि राहु के कारण दाँतों की मजबूती के

कोई विशेष लक्षण नहीं होते। किन्तु शनि के प्रभाव में दाँत भीतर से बड़े दृढ़ होते हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि शनि के कारण दाँतों की बाढ़ इतनी अच्छी और ये इतने मजबूत, गुँथे हुए और एक दूसरे से ऐसे सटे हुए होते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। शनि से दाँत आगे निकलते हैं पर दृढ़ता उनकी तब भी बनी रहती है। कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि शनि की दन्तपंक्ति के साथ-साथ दाँतों में मैल असीम जमी रहती है विशेषकर दाँतों के निचले जोड़ों में, पर तौभी वे न सड़ते और न असमय हिलते ही हैं। राहु में ऐसा होना कोई अपरिहार्य नहीं। बल्कि यथासम्भव राहु के दाँत साफ होते और अपेक्षाकृत असमय ही झड़ जाते या तुड़वा दिये जाते हैं। एक बात और कि शनि के प्रभाव में दाँतों की तिरछी आगे की ओर की वहिर्मुखी बाढ़ की प्रवृत्ति अवश्य रहती है पर राहु के प्रभाव में यह अनिवार्य नहीं, तो भी बड़ा होना निश्चित-सा है। तो भी कभी-कभी राहु प्रभावित दाँत भी बहिर्मुखी निकले पाये जाते हैं। सारांश सारे शरीर पर एक दृष्टि देते ही विशेषतः मुखमंडल पर सावधानी से दृष्टि डालते ही, ऐसा विदित होने लगता है जैसे यह एक थका हुआ व्यक्ति है।

दूसरे घर और कभी-कभी बारहवें घर में भी बैठ कर राहु प्रायः वे ही उपर्युक्त चिह्न उत्पन्न कर देता है। लग्नवत् चन्द्र लग्न से भी वे ही सभी लक्षण प्रकट पाये जाते हैं और चन्द्र लग्न को भी पर्याप्त प्रधानता प्रदान करना उचित है।

राहु और मंगल की युति से दाँत मजबूत और पर्याप्त बड़े होते हैं। राहु शनि युति से डील लम्बा और अनपेक्षित रूप में इतना दुबला (छरहरा) होता है कि शरीर पर मांस का नितान्त अभाव ही होता है। चित्रांक ६८।

राहु-गुरु युति शरीरयष्टि की ऊँचाई कम करती और व्यक्ति को दोहरे शरीर के होने में कोई बाधा नहीं डालती। चित्रांक १, २०।

राहु-बुध युति राहु के सभी लक्षण उत्पन्न करती और मुखड़ा हँसमुख बनाती है। बुध यदि बलवान हो तो मनुष्य की वाचाशक्ति पर्याप्त अधिक होती है और बातों में वह कुशल होता है।

राहु शुक्र युति मनुष्य को साँवला पर अपनी वेशभूषा का पर्याप्त शौकीन बनाती है। बालों और कपड़ों की सजावट पर वह विशेष ध्यान देता और भाग्यशाली होता है।

राहु-सूर्य-युति दृढ़ शारीरिक गठन के साथ शरीर-यष्टि ऊँची करती है। दाँत राहुवत् मजबूत (दृढ़) और आगे की ओर निकले होते हैं। त्वचा से तो भी प्रकट होता है मानो उससे जीवनीशक्ति चूस ली गई हो। दूसरे घर में पापग्रहों के साथ राहु भयानक दन्तविकृति पैदा करता है।

चतुर्थ भाव में ऐसी युति छाती (वक्ष) को तंग वा शिकस्त कर डालती है अर्थात् सामने की दोनों ओरों से उसे दबा देती है। ऐसा व्यक्ति ठंढ का शिकार और विशेषतः साँजर रोग से पीड़ित होता है।

यह बात विशेष रूप से तब देखी जाती है जब राहु की स्थिति चतुर्थ में हो। सिंहस्थ राहु-शनि-युति चतुर्थ हो तो राजरोग (यक्ष्मा) अवश्य लाता है। यदि चन्द्रमा क्षीण वा दुष्ट हो और गुरु भी राहु-केतु, मंगल वा शनि से भ्रष्ट हो तो।

पंचम राहु सन्तान हानिकारक, कुक्षि विकारक, और नाक से बोलने की झलक का उत्पादक होता है। शुभयोगादि के अभाव में वह मनुष्य को चिन्ताकुल, विक्षिप्त और असंतुलित मस्तिष्क वाला बना डालता है।

षण्ठस्थ राहु पैरों में जख्म का चिह्न, खरड़ और कुष्ठादि के लक्षण विकसित कर डालता है।

सप्तमस्थ राहु स्त्री को प्रदर का रोगी, अनियमित ऋतुस्राव कुक्षि में घाव आदि प्रसवजनित क्रोड़रोग, रक्तस्राव, भूतबाधा, सर्पदंश या हैजे से जातक को परलोक देने वाला होता है। सप्तमस्थ राहु के साथ यदि शनि, मंगल, सूर्य और क्षीण चन्द्र की युति हो और सब मिलाकर ३ पापग्रहों से अधिक का वहाँ जमघट हो तो वह स्त्रीसुख के लिये भयानक होता है। चित्रांक ६२।

इस प्रकार राहु को लग्न स्थिति के अव्यर्थ लक्षणों में उपरोक्त कद की लम्बाई, दन्त विकार (दाँत निकलना आदि), अगले दाँतों के रिक्त स्थान, मुखमण्डल का पिचक कर गड्ढेदार हो जाना, मुखड़ा खोखला, चेहरे की पिचक और त्वचा की ढिलाई और सिकुड़न, जोड़ों का ढीला-सा बैठाव इत्यादि हैं। चित्रांक २।

अन्त में इस शास्त्र की उन्नति चाहने वाले अपने विज्ञ पाठकों से इतना निवेदन है कि उन्हें इस विषय की भविष्यवाणी करने से पहले बड़ा सोच-विचार और मनन करना चाहिए और तब अपने निर्णय पर पहुँचना और उसे व्यक्त करना चाहिए। जल्दबाजी से शास्त्र पर कुठाराघात अपनी प्रतिष्ठा की हानि होगी। आत्मविश्वास जाता रहेगा और प्रगति रुक जायगी।

जब एक अनुमान अनेक भिन्न-भिन्न कारणों से पुष्ट होता हुआ दृष्टिगोचर हो तो वहाँ सफलता की बड़ी आशा होगी। इस बात का अवश्य अभ्यास-सा कर लेना चाहिए। नवसिखुओं को मेरा सुझाव यह होगा कि वे राहु के लक्षणों को ऐसे लोगों में पहचानने का प्रयास करें जिनकी अवस्था ३५ वर्षों से अधिक की हो। ढलती वय वाले सज्जनों में इसके सभी लक्षण विशेष प्रस्फुटित पाये जाते हैं।

अन्त में फलदीपिका के एक श्लोक के उदाहरण पर एक सरसरी दृष्टि डाल कर इस प्रकरण को समाप्त करना ही ठीक होगा।

राहु का स्वरूप वर्णन यहाँ नीचे उद्धृत श्लोक में मिलता है :—

"नीलद्युति दीर्घतनुः कुवर्णः पामी सपाषंडमतः सहिक्कः।
असत्यवादी कपटी च राहुः कुष्ठी परान्निन्दति बुद्धिहीनः।।"

राहु नीली कान्तिवाला, दीर्घशरीर वाला, नीच जाति का, खुजली रोगवाला (या दाद का रोगी), पाखण्डपूर्ण मतवाला, हिचकी का रोगी, झूठा, कपटी, कुष्ठरोगी दूसरों का निन्दक और मूर्ख होता है।

श्लोक के उक्त वर्णन में यह कहीं निर्देश नहीं कि राहु के इन लक्षणों के क्या तात्पर्य हैं और ये लक्षण राहु के सांकेतिक हैं अथवा मनुष्य में पाये जाते हैं अथवा नहीं और हाँ तो कब ? राहु कब और कहाँ बैठकर वा किसके साथ बैठकर इन लक्षणों को प्रकट करता है इसका कोई उल्लेख मूलग्रन्थ में नहीं है। अतः आप इस श्लोक को पढ़कर भी इसके फल की ओर लक्ष्य नहीं रख सकते। साधारण प्रचलित परिपाटी तो यही आ रही है कि प्रश्नादि विचार में चोर इत्यादि की जाति, अवस्था, रंग, स्वभाव इत्यादि जानने और बतलाने में ऐसे स्वरूप वर्णन का उपयोग किया जाता है। वहाँ राहु के लग्न में पड़ने का प्रश्न ही नहीं होता। प्रश्न लग्न में पड़कर राहु आकृति को प्रभावित नहीं कर सकता। प्रश्न विचार में प्रसंग और विषय का सम्बन्ध होता है। जो ग्रह प्रश्न चक्र में बलवान होता है उसी का स्वरूप विचाराधीन विषय से सम्बद्ध व्यक्ति या वस्तु का प्रतीक होता है। जन्मकुण्डली विचार में भी प्रायः जातक के स्वरूप आदि का अनुमान लोग कुण्डली के बली और प्रधान ग्रह के स्वरूप के अनुरूप किया जाता है। अतः इस वर्णन से राहु के ये लक्षण जातक में उसके लग्नस्थ होने से पैदा होंगे यह सहज अनुमित नहीं हो सकता। श्लोक का सम्बन्ध जातक से भी किसी-किसी अवस्था में है इसका कोई उल्लेख उसमें या ग्रन्थ में अन्यत्र भी नहीं है। फलतः आप सही मार्ग पकड़ने में संदिग्ध मानस हो असमर्थ हो जाते हैं और अध्ययन में सही मार्ग पर अग्रसर

नहीं हो सकता। अब हम मान भी लें कि लग्न से ही वर्ण आदि वा आकृति का निर्णय साधारणतः किया जाता है और इसीलिए लग्नस्थ ही राहु का यह वर्णन हो तो भी यह वर्णन पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट नहीं। अब देखना चाहिए कि इसमें कौन-कौन से लक्षण बतलाये गये हैं।

"नीलद्युतिः" का यथार्थ अर्थ क्या होगा ? नीला तो कोई मनुष्य होगा ही नहीं। यदि इसका अर्थ काला रखा जाय जैसा श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने अपने अनुवाद में किया है तो भी ठीक नहीं क्योंकि राहु का जातक काला बहुत कम होता है। राहु और शनि में तो यही विभेद है कि जहाँ राहु का जातक कदाचित् ही किसी अन्य विशेष कारणवश ही काला होता है वहाँ शनि का लगभग प्रत्येक जातक काला या सांवला अवश्य होता है। राहु शुभग्रहों की राशि में पड़े और गुरु, बुध और शुक्र की उसपर पूर्णदृष्टि हो या उनके साथ इसकी युति हो तो गोरा से गोरा रंग व्यक्ति को प्रदान करता है। हाँ यह भी सत्य है कि राहु की गोराई और त्वचा (चर्म) की मुलायमियत के साथ-साथ कभी-कभी साधारण छायात्मक बारीक धुमैलापन की झलक भी रहती है पर इस वर्ण से नीलद्युति का कोई मेल नहीं। साधारण रंग राहु का गेहूँआना है जो हम भारतीयों का साधारण वर्ण है।

'दीर्घतनुः' का भी अर्थ स्पष्ट है और न कोई एकार्थवाचक। दीर्घ का साधारण अर्थ बड़ा होता है लम्बा नहीं। एक मोटे मनुष्य को भी दीर्घाकार कह सकते हैं। लम्बे और मोटे व्यक्ति को तो निश्चय ही दीर्घाकार कह सकते हैं और ऐसा कद राहु का नहीं होता। ऊंचे डील-डौल के दोहरी देह वाले व्यक्ति को देख यदि आपने वहाँ राहु लग्नस्थ बतलाया तो वह शत प्रतिशत गलत सिद्ध होगा। राहु और मुटाई या मेद से राहु की शत्रुता ही समझिये। वैसी दशा में दीर्घ शब्द से लेखक का क्या निश्चित अभिप्राय था कहना कठिन है। हम तो नहीं जानते। कम से कम यह दीर्घ शब्द दुमानिया और बहुमानिया तो अवश्य है जिससे आप किसी लक्षण विशेष पर मत स्थिर नहीं कर सकते। यदि दीर्घ अर्थ केवल लम्बा किया जाय तभी इसका राहु स्वरूप सम्बन्धी कुछ ठीक अर्थ होगा पर ऐसा करना अपना स्वतंत्र अनुभव परिपक्व होने पर ही किया जा सकता है लेखक के मात्र कथनानुसार नहीं। अभी तो हम यह भी नहीं जानते कि लेखक को यह अर्थ अभिप्रेत था भी कि नहीं।

कुवर्णः शब्द का अर्थ शास्त्री जी ने नीच जाति का किया है। श्लोक में ही प्रारम्भ में 'नीलद्युतिः' शब्द के बाद तदर्थवाचक ही रूप में 'कुवर्णः' शब्द को लेना असंगत भी होगा। अब यदि इसका अर्थ शास्त्री जी वाला हो तो कदाचित

ही किसी कुण्डली में वह सत्य पाया जायगा। अनुभव में तो राहु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, राजा, विद्वान् और रंक (अकिंचन) आदि प्रत्येक श्रेणी के लोगों की कुण्डलियों में लग्नस्थ पाया गया है। अतः लग्नस्थ राहु का व्यक्ति नीच जाति का होगा ऐसा अर्थ लेना बेढंगा ही होगा। फिर वही द्वयर्थकरी वा बह्वर्थकरी बात स्पष्टतः सामने आई और मार्ग प्रदर्शित नहीं हो पाया। लेखक का लग्नस्थ राहु के ऐसे प्रभाव का व्यञ्जक अर्थ कभी अभिप्रेत नहीं रहा होगा। इसका दूसरा अर्थ खराब रंग वाला भी है जिसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि मनुष्य की त्वचा का वर्ण कभी सुन्दर न होगा। अनुभव में सभी लग्नस्थ राहु व्यक्ति की त्वचा का कुवर्ण वा कुरूप होना सिद्ध ही नहीं होता। राहु लग्नस्थ कुंडली के कई जातक बड़े ही गौर वर्ण के मिलते हैं। कुवर्णः शब्द सुवर्णः शब्द का विपरीत अर्थवाची है जो अनुभव और वास्तविकता से मेल नहीं खाता।

यथार्थता यह ज्ञात होती है कि मन्त्रेश्वर ने यहाँ कोई अपनी नई खोज का उल्लेख नहीं किया है। बल्कि बिना सांगोपांग विचार का कष्ट उठाये पुराने आचार्यों के इन शब्दों को लेकर दुहरा दिया है। नीलकंठ ने उससे पहले ही अपने ग्रन्थ में इन दोनों शब्दों का अर्थात् दीर्घ और सुनील शब्द का व्यवहार किया है।

यह जानते हुए कि नीलकण्ठी एक ताजिक ग्रन्थ है (जातक ग्रन्थ नहीं) जिसमें केवल वर्ष के भीतर के ही फलों के ज्ञान का विचार किया जाता है। यह कहना कठिन है कि नीलकंठ के इन दोनों शब्दों के व्यवहार का यथार्थ भाव क्या है। वर्ष कुण्डली में लग्नस्थ राहु या अन्य किसी ग्रह के पड़ने पर यह अनुमान करना कि व्यक्ति की आकृति लम्बी और उसका वर्ण नीला होगा एक बेतुकी बात होगी। यथार्थ में जैसा पहले उल्लेख किया गया है इन संकेतों का व्यवहार परिपाटी क्रम से प्रश्न कुंडलियों के विचार में ही किया जाता आया है और इसी अर्थ में नीलकंठ ने उनको यहाँ उल्लेख किया है और मन्त्रेश्वर ने भी उसे ज्यों का त्यों अपने श्लोक में लिख दिया है। नीलकंठ तो राहु को शनिवत् कहकर चुप रह जाते हैं। उन्होंने शनि के ही स्वरूप वर्णन में इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। मन्त्रेश्वर ने अवश्य राहु के स्वरूप का एक स्वतंत्र वर्णन एक स्वतंत्र श्लोक में किया है। असल बात यह है कि पुराने ग्रन्थों में राहु का विस्तृत विचार मिलता भी नहीं। वराहमिहिर ने कदाचित अपने जातक में इसका बहुत महत्त्व दिया ही नहीं। दशाध्याय में राहु का कोई स्थान वृहज्जातक में नहीं है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों राहु के फल सम्बन्धी विचार अनुभव में आते और पुष्ट होते गये। शनैः-शनैः जब इसके प्रभाव का बोध हमारे विद्वानों को होता गया तो इसके स्वरूप के वर्णन का प्रयास भी किया जाने लगा। ज्ञात होता है कि मन्त्रेश्वर के पहले के कोई ऐसे आचार्य

नहीं जिन्होंने अपने ग्रन्थ में राहु के स्वरूप का एक पृथक् और स्वतन्त्र वर्णन किया हो और उत्तर कालामृत कदाचित् पहला ग्रन्थ है जिसमें राहु के दशाफल का कुछ विस्तृत वर्णन किया गया है। यद्यपि राहु विंशोत्तरी दशा में एक प्रधान स्थान सदा रखता चला आया तथापि पहले के आचार्य इसे शनिवत कह कर ही सन्तुष्ट होते आये हैं।

उक्त समालोचना का इतना ही अभिप्राय है कि मन्त्रेश्वर के वर्णन को पढ़-कर पाठक ऐसा न समझ बैठें कि उन्होंने राहु के जो लक्षण ऊपर वर्णन किये हैं उन्हीं की ओर संकेत किया है। वस्तुतः जो लक्षण यहाँ दिये गये हैं वे अनुभवों के बल पर और उस विषय में फलदीपिका से कोई महत्वपूर्ण साहाय्य मिला नहीं है। अनुभव से उन लक्षणों को जान लेने के पश्चात् यह देखकर आश्चर्य अवश्य हुआ कि उन लक्षणों की ओर ग्रह स्वरूप वर्णन में हमारे पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी कदाचित संकेत किया है। पर यह पता उनके वर्णन से नहीं चलता कि उनका यथार्थ तात्पर्य क्या था। नीलकंठ ने राहु को निषाद जाति का लिखा है। कदाचित इसीसे मन्त्रे-श्वर ने किसी विशेष जाति का न लिखकर कुवर्णः नीच जाति का लिखा हो जैसा शास्त्री जी समझते हैं।

पामी और कुष्ठी दोनों शब्दों का प्रयोग मन्त्रेश्वर ने किया है। अतः उनका ध्यान इन दोनों बीमारियों की ओर ही कदाचित् रहा हो। अर्थात् पामी से खुजली वा कंडु रोग की ओर और कुष्ठी से गलित कुष्ठ, चरक रोग वा अन्यान्य प्रकार के कुष्ठ रोग की ओर। उनका ध्यान त्वचा की साधारण अवस्था की ओर स्यात् नहीं था क्योंकि वैसी दशा में केवल दो बीमारियों ही का उल्लेख वे क्यों करते ? पुनः इन दो बीमारियों से त्वचा की साधारणतः पाई जानेवाली अवस्था की ओर ध्यान भी नहीं जाता। यहाँ के वर्णन को पाठक यदि अब समझने का प्रयत्न करें तो उन्हें दोनों वर्णनों में महान् अन्तर स्पष्ट देख पड़ेगा। कदाचित् मन्त्रेश्वर का ध्यान षष्ठस्थ राहु पर ही रहा हो।

असत्यवादी, कपटी, परान्निन्दति, बुद्धिहीन, इत्यादि वर्णन राहु के प्रभाव से होनेवाले सम्बद्ध मनुष्य के स्वाभाविक गुण को बहुत अच्छी तरह व्यक्त करता है जिसे मैंने अपने अनुभव में प्रायः सदैव ही सत्य पाया है। विभेद इतना ही है कि यदि जातक का व्यक्तित्व अन्य कारणों से ऊँची श्रेणी का और सुधरा हुआ तो उसका कपटाचरण शीघ्र समझ में नहीं आता और वह उसका उपयोग बड़े-बड़े कार्यों के साधन में बड़ी चतुरता से करता है। पर यदि जातक का व्यक्तित्व निम्न कोटि का हुआ और किसी कारण से बलहीन और भ्रष्ट हुआ तो उसकी झूठ झट समझ में आ जाती है।

सहिक्कः से क्या तात्पर्य था कहना कठिन है। पर पाया यह गया है और उसका उल्लेख पहले ही हो चुका है कि यदि राहु चतुर्थ पड़े तो अवस्था विशेष में मनुष्य सर्दी के प्रभाव में शीघ्र आ जाने वाला और सांजर की बीमारी का रोगी होता है, किन्तु दोनों के तात्पर्य में कोई साम्य नहीं है। अभीतक राहु के कारण हिचकी रोगवाला जातक देखने में नहीं आया है। राहु का जातक बुद्धिहीन तो कदाचित् ही पाया जाता हो। बल्कि उलटे लेखक के अनुभव में इसके जातक बड़े बुद्धिमान और विद्वान ही अधिक मिले हैं। हाँ केतु और शनि के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। इसलिए बुद्धिहीनः शब्द को राहुजनित एक साधारण लक्षण का द्योतक मानने को तैयार नहीं होना चाहिये। लेखक पुनः यहाँ दुहराना चाहता है कि यह शब्द भी अननुभूत रूप में शनि के विशेषणों में से उठाकर रख दिया गया जान पड़ता है।

मंत्रेश्वर ने दो और विशेषणों का, "सपाषण्डमतः" और "परान्निन्दति" का प्रयोग सार्थक ही किया है। कहना नहीं होगा कि ये दोनों ही बड़े उपयुक्त शब्द राहु सम्बन्धी हैं। अनुभव से सत्यापित हैं।

यदि राहु का जातक, विशेषतः यदि चन्द्रराशिस्थ राहु हो, तो पाखंडी और दूसरों का निन्दक न हुआ तो कुछ न हुआ। जब अन्यान्य कारणवश राहु शुभ और कुंडली में बलवान हुआ तो कोई मनुष्य उसमें फँसकर उसका शिकार हुए बिना बचता नहीं। राहु से प्रभावित जातक अपने मनोगत भावों को अपनी मीठी-मीठी बातों से ऐसा छिपाता है कि देखकर दंग रह जाना पड़ता है। इसका यह भी अर्थ हुआ कि वह दूसरों के भावों को पहले ही ताड़ लेने में सिद्धहस्त होता है और इसीलिए न वह सीधी बातें करता और न सीधी राय देता है। बल्कि दूसरे के मनोभावों का ध्यान रख कर ऐसा वर्ताव करता है कि अपनी मनोरथ सिद्धि में उसे अवश्य सफलता मिले। अर्थात् वह पहले दर्जे का स्वार्थी होता है और अपना सारा व्यवहार अपने स्वार्थ को लक्ष्य करके ही किया करता है। उसकी स्वार्थ साधन की प्रवृत्ति ही है जो उसे अपने विचारों को जाल की तरह वागाडम्बर फैला छिपाने में प्रवृत्त कराती है और वह पाखण्डी-सा लगने लगता है। इसी स्वार्थ साधन में उसे दूसरों की निन्दा का ही दूसरा अर्थ समालोचना है। समालोचना तबतक ठीक नहीं हो सकती जबतक दूसरों के दोषों को भी पूर्णरूप से दिखला न दिया जाय। राहु का जातक इसमें प्रवीण होता है। यह छिद्रान्वेषी इसलिये होता है कि उससे उसकी स्वार्थसिद्धि होती है।

इतना होते हुए भी प्रश्न होता है कि राहु कुण्डली में कहाँ बैठकर यह गुण या लक्षण उत्पन्न करता है। मन्त्रेश्वर का इसपर कोई सुझाव नहीं। लग्न

या चन्द्र लग्न में पड़कर ही इन गुणों को उत्पन्न कर डालता है ऐसी बात नहीं, दूसरे, बारहवें, पाँचवें और दसवें बैठकर भी वह इनमें से अनेक गुणों को पैदा कर देता है। दूसरे और पाँचवें का प्रभाव इस सम्बन्ध में लग्नादि से कम नहीं। इसलिए इन गुणों के बल पर कुण्डली में राहु की स्थिति का पता नहीं पाया जा सकता।

यदि राहु शुभ और योगोत्पादक हुआ तो जातक को बड़े अधिकार के पद पर प्रतिष्ठित कराता है। वैसा जातक किसी बात के निर्णय लेने में दूसरे के विचारों की काट-छाँट बड़ी खूबी से अपने अकाट्य साधक-बाधक प्रमाणों से किया करता है। दुष्ट और बलहीन राहु बुरी तरह समालोचना करने और जली-कटी सुनाने में प्रवीण होता है।

●

चतुर्थ प्रकरण

शनि

शनि की पहचान भी उतनी ही सरल और निश्चित है जितनी राहु की। जिस प्रकार राहु की पहचान के अनेक अचूक (अव्यर्थ) लक्षण हैं और एक बार उनका ज्ञान होते ही जैसे राहु की स्थिति का ज्ञान आकृति से ही कर लेना सुगम है, ठीक वैसे ही शनि की पहचान के भी कई सटीक चिह्न हैं जिन्हें देखकर उसकी स्थिति का ज्ञान सरलता और सुगमता से हो जाता है।

ऊपर राहु के लक्षणों के व्यक्त करने के उपक्रम में स्थान-स्थान पर शनि के लक्षणों का भी प्रसंगवश कुछ उल्लेख होता आया है। उन्हें उसी रूप में स्मरण रखना आवश्यक है। यहाँ भी उनका उल्लेख तो सविस्तर करना होगा पर ये चिह्न मन में ठीक-ठीक तभी बैठते हैं जब समालोचनात्मक दृष्टि से उनकी समानता और असमानता का दिग्दर्शन अन्य ग्रहों के तदाकार लक्षणों से किया जाय।

शनि की लग्नस्थिति का पहला प्रभाव मनुष्य के ढाँचे को लम्बा बनाना है। लग्नस्थ शनि वाला मनुष्य चाहे और कुछ हो वा न हो लम्बा अवश्य होगा अर्थात् यदि कोई मनुष्य पर्याप्त ऊँचे डील-डौल का देख पड़े तो उसके लग्न (वा चन्द्र लग्न) में शनि के पाने की आशा की जा सकती है। उसी का दूसरा पहलू यह होगा कि यदि कोई मध्यम से नाटेकद का हो तो, यदि इसके विपरीत कोई समुचित कारण न हो तो, उसके लग्न आदि में शनि के पाने की भरसक आशा नहीं कर सकते। ऐसा नहीं कि इस नियम का अपवाद होता ही नहीं या वैसा उदाहरण मिलता ही नहीं। पर इन अपवादों के उनके अपने अलग विशिष्ट कारण होते हैं। इनपर आगे सविस्तर विचार किया ही गया है। पर ऐसे विलक्षण व्यक्तियों की कुण्डलियों का अध्ययन करने पर प्रतिकूल फल के यथेष्ट विलग कारण स्पष्ट वर्त्तमान पाये जाते हैं।

शनि यदि लग्नस्थ वा चन्द्रयुत हो तो, जैसा पहले ही राहु के प्रकरण में भी कहा जा चुका है, आकृति लम्बी ही करने वाला होता है। साथ ही शनि और राहु की लम्बाइयों के विलग करने की क्या युक्तियाँ और पहचानें हैं इनका भी वहाँ पर्याप्त उल्लेख हो चुका है। इसलिए यदि किसी व्यक्ति को पर्याप्त लम्बा पावें तो आप को अनुमान करना चाहिए कि उसके लग्न में शनि हो सकता है।

पर इसका निश्चय बिना अन्य लक्षणों के भी पाये नहीं किया जा सकता है क्यों कि आकृति की लम्बाई केवल शनि के ही कारण नहीं बल्कि अन्य कई कारणों से भी उत्पन्न हुआ करती है। मनुष्य लम्बा सूर्य, शनि, राहु और केतु के प्रभाव से और यदा-कदा धनु, मिथुन और तुला राशियों के लग्न या चन्द्रराशि होने पर भी हुआ करता है। इनकी लम्बाइयों की पारस्परिक भिन्नता के साथ-साथ अन्य लक्षण भी स्पष्ट और सहज ही पैदा होते हैं जिनके द्वारा शनि की लम्बाई को पकड़ने या विलगाने में कोई विशेष कठिनाई या कष्ट नहीं होता।

अतः विभेदक लक्षणों का भी भलीभाँति अध्ययन और हृदयंगम कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।

शनि की लम्बाई को सूर्य, राहु एवं केतु की लम्बाई से विलग करनेवाला पहला चिह्न है। लम्बाई के साथ-साथ शरीर का अपेक्षाकृत बहुत दुबला या कृश होना। शनि के प्रभाव के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रह के प्रभाव से उतना दुबला-पतला नहीं होता। शनि की लम्बाई के साथ उसके अपने आन्तरिक स्वभाव के कारण शरीर में कृशता उत्पन्न हो ही जाती है। अन्य ग्रहों के प्रभाव से यदि अन्यत्र कहीं कृशता देखी जाय तो खोजते ही उसके विशद कारण भी वहाँ वर्तमान पाये जाते हैं। यह नहीं कि शनि के लग्नस्थ होने पर ढाँचा कभी दृढ़ और आयताकार होता ही नहीं पर जहाँ ऐसा होता है वहाँ वह नियम के प्रतिकूल नहीं तो कारण विशेषों से ही वैसा होता है और उसका कारण भी वहाँ ही वर्तमान मिलता है।

कहने का सारांश यह है कि जहाँ शनि की लम्बाई के साथ-साथ शरीर को दोहरा, सुदृढ़ वा सुगठित होना नियम की प्रतिकूलता के उदाहरण के तौर पर ही मिलता है वहाँ अन्य ग्रहों की लम्बाई के साथ-साथ शरीर की कृशता भी नियम की प्रतिकूलता के उदाहरण रूप ही होती है। इसलिए जहाँ शरीर में यह लम्बाई न पाई जाय वहाँ सहसा शनि की लग्नस्थिति अनुमान करने से अस्वीकार करना चाहिए।

किन्तु चाहे कुछ भी हो और आप का अनुभव पुराना होकर कितना हू परिपक्व हो गया हो तौ भी केवल लम्बाई के बल पर ही शनि की लग्नस्थिति का ठीक-ठीक और सर्वथा अचूक अनुमान नहीं लगाया जा सकता और अनेक अवसरों पर इसी के भरोसे चलने में धोखा हो जायगा।

इसीलिए जब किसी व्यक्ति को लम्बा देखें तो शनि की लग्नस्थिति की सम्भावना का अनुमान करें विशेषकर जब उस व्यक्ति का शरीर भी कृश वा एकहरा देख पड़े। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना कदाचित अच्छा होगा कि लम्बे ढाँचे से क्या तात्पर्य है। अर्थात् आकृति कब लम्बी और कब साधारण कही जायगी। मनुष्य की साधारण ऊँचाई ५ फीट ५ इंच से ५ फीट ६ इंच तक की होती है। यदि मनुष्य ५ फीट ६ इंच से और अधिक ऊँचा हो तो उसे ऊँचे डीलडौल वाला वा लम्बा कहेंगे। यदि लम्बाई ५ फीट ३ इंच वा उससे कम हो तो उसे नाटा कहेंगे। शनि की लग्नस्थिति से उत्पन्न आकृति का झुकाव बहुत ऊँचे होने की ओर का होता है जो प्राय: सूर्य या राहु के प्रभाव में नहीं हुआ करता। डीलडौल जितना ही ऊँचा जान पड़े उतनी ही उसके शनि प्रभावित होने की सम्भावना अधिक होगी। स्मरण रहे कि व्यक्तिगत अनुभव की परिधि प्राय: इतनी छोटी होती है कि प्रतिकूल डीलडौल वाले व्यक्ति को पाकर आश्चर्यित न होने के लिए हमें सदा प्रस्तुत रहना चाहिए।

शनि के कारण उक्त लम्बाई के विषय में इतना और कहा जा सकता है कि जहाँ शनि अपनी राशि का अकेला होगा, (अर्थात् स्वगेही होगा वा मकरस्थ वा कुम्भस्थ होगा) वा गुरु की राशियों में अकेला होगा (जैसे धनु और मीन का) तो शरीर विशेष दुबला न होगा पर लम्बाई में कमी न होने पायेगी। धनुराशिगत शनि लग्नस्थ हो मनुष्य प्राय: बहुत ऊँचे डीलडौल का और बलिष्ठ शरीर का होता है। चित्रांक ९। अपनी उच्च राशि तुला में भी लग्नस्थ हो शनि मनुष्य की आकृति इकहरी कोटि का ही देता है फिर शेष राशियों में का तो कहना ही क्या है। देखें चित्रांक ४।

वृश्चिक राशि में यदि लग्नस्थ हो तो उसमें एक विशेषता यह देखी जाती है कि मनुष्य का शरीर तो वह दुबला ही देता है पर मुखाकृति बिगड़ने नहीं देता। बल्कि कभी-कभी तो अतिसुन्दर और सानुपात अवयवों वाली आकृति के साथ उसका वर्ण भी अत्यन्त गोरा देता है। शनि वृश्चिकस्थ होने पर वृश्चिक राशि के जो अपने विशेष लक्षण हैं वे सभी और भी अधिक ही स्पष्ट हो आते हैं। इस राशि की विशेषताओं का सविस्तर उल्लेख आगे यथावसर किया गया है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि शनि के इस राशि में लग्नस्थ होने के कारण उन लक्षणों के प्रकट होने में कोई बाधा नहीं पहुँचती। बल्कि उसमें और भी स्पष्टता ही आती है।

जब वृश्चिक का शनि लग्नस्थ होता है तो मुख में चेचक के दाग भी पाये जाते हैं। एक विचित्रता और यह देखने में भी आती है कि मुखाकृति अपने दोनों पार्श्वों में चौड़ी न होकर (जैसा वृश्चिक लग्न का होता है) दोनों ओर से बीच में संकीर्ण और देखने में सुन्दर ज्ञात होती है। देखिए चित्रांक ६।

तो सारांश यह कि यदि आप एक दर्जन अनजाने (अजनबी) लम्बे-लम्बे व्यक्तियों को किसी भीड़ में से चुनकर निकालें और उनकी कुण्डलियों की परीक्षा करें तो देखेंगे कि उनमें से १० से १२ तक में लग्नस्थ शनि है अथवा चन्द्र और शनि साथ हैं अथवा लग्न और चन्द्र दोनों में से किसी-न-किसी के वह दूसरे या १२वें घर में बैठा है। कभी-कभी, पर बहुत कम अवसरों पर लम्बे व्यक्ति की कुण्डली में शनि सप्तमस्थ भी पाया जाता है पर वहाँ उसकी लम्बी आकृति के लिए अन्य कारण भी पाये जाते हैं। चित्रांक ५९। कहना इतना ही है कि लग्नस्थ वा चन्द्र-राशिस्थ शनि की अचूक पहचानों में से एक महत्त्वपूर्ण पहचान मनुष्य की लम्बाई है। जब तक लम्बाई न हो तब तक अन्य कारण यदि बहुत ही बलवान न हों तब तक शनि की लग्नस्थिति का अनुमान सहसा उचित न होगा। शनि की पहचान का यह नियम एक सोने का नियम ही समझें।

किन्तु जैसा राहु और केतु के वर्णनों में कहा जा चुका है केवल लम्बाई शनि की स्थिति का अव्यर्थ निदर्शक नहीं हो सकती। उसके लिए उसके साथ-साथ अन्य लक्षणों का भी वर्तमान पाया जाना नितान्त आवश्यक है। इन सहायक लक्षणों का वर्णन आगे मिलेगा। यहाँ शनि की लम्बाई और राहु, केतु वा सूर्य की लम्बाई में क्या भेद है उसे बतलाकर इस प्रसंग को यहीं छोड़ते हैं। लम्बाई के साथ-साथ जहाँ नसों की उभाड़ प्रत्यक्ष हो वा उस पर ध्यान देते ही झट उभाड़ समझ में आ जाय तो लम्बाई १०० में ९९ शनि की होगी।

नसों की उभाड़ से ठीक क्या तात्पर्य है इसे समझाने की तो कोई विशेष आवश्यकता नहीं, पर भाव को समझने में किसी को कोई भूल न होने पावे इसके लिए नसों की उभाड़ से क्या तात्पर्य है उसे यहाँ स्पष्ट कर डालना युक्तिसंगत जान इसका थोड़ा और संक्षिप्त वर्णन कर ही देना अच्छा है।

जब आप नसों की बनावट की ओर ध्यान देंगे तो पता चलेगा कि मनुष्य के अंग में इनकी बनावट अथवा इनके दृष्टिगत होने के ढंग कई प्रकार के हैं। किसी के शरीर में विशेषकर हाथों और पैरों में जहाँ ये प्रत्यक्ष विशेषरूप से होते हैं ये मांस-पेशियों से इस प्रकार ढँकी रहती हैं कि आपको शीघ्र पता नहीं चलेगा कि शरीर में नसें हैं या नहीं। बड़ी कोमलता के साथ मांस के भीतर ये ऐसी घुसी रहती हैं या बैठी रहती हैं कि प्रयत्न करने पर ही इनकी स्थिति का ज्ञान केवल एक धूमैली रेखा-सी ही होती है। इस प्रकार की नस शनि की लग्नस्थिति से सम्बन्ध नहीं रखती और इसके द्वारा शनि की इस स्थिति का पता नहीं लगता। न इससे अन्यत्र किसी भाव में ही इसके बैठने का पता चलता है। नसों की इस प्रकार की बनावट उभड़ी हुई किसी प्रकार नहीं कही जा सकती। इसके विपरीत किसी-किसी के

शरीर में, विशेषकर हाथों और पैरों में नसें इस प्रकार मांसपेशियों की सतह या बाह्य त्वचा की सतह के ऊपर उभड़ी हुई या उठी हुई दीख पड़ती हैं कि जान पड़ता है जैसे इनके हाथों और पैरों में नसें ही हैं मांस या मांसपेशियाँ नहीं। तलहथी को उलटकर मणिबन्ध से ऊपर ऊँगलियों की ओर इन नसों की उभाड़ का पता अत्यन्त सरलता से लगता है। तौ भी मणिबन्ध से केहुनी के बीचवाले हाथ के भाग में भी ध्यान देने से इनकी उभाड़ का तुरत पता चल पाता है। जाँघ में मांस की अधिकता के कारण नसें त्वचा से ऊपर तो उठी हुई नहीं दृष्टिगत होती पर तौ भी देखने पर अपेक्षाकृत अन्य लोगों से इनमें नसों की बहुतायत पाने में कोई दिक्कत नहीं होती। ठेहुने के नीचे और घुट्ठी के ऊपर पिंडुलियों की चारो ओर की नसें इस प्रकार प्रत्यक्ष मोटी तनी और रुखड़े रूप में लपेटी हुई ज्ञात होती हैं कि आपका ध्यान शरीर के अन्य अंगों से खिच-खिचकर सहसा वहीं आकर जम जाता है और आपके मन में यह भाव बैठते देर नहीं लगती कि यह व्यक्ति एक नस प्रधान व्यक्ति है। चित्रांक ६ पर ध्यान दें। निष्कर्ष यह कि इन नसों की उभाड़ बहुत कुछ शारीरिक बनावट पर निर्भर करती है और शरीर में मांस की कमी के कारण यह उभाड़ प्रधानता प्राप्त कर लेती है। ऊपर कहा ही जा चुका है कि शनि लग्नस्थ हो तो मनुष्य का शरीर कृश और मेदहीन होते हुए लम्बा होता है। अतः इसी दुबलापन के फलस्वरूप नसों की भरमार दिखाई पड़ती है और नसें उभड़ी हुई जान पड़ती हैं। इसीलिए नसों की उभाड़ शनि की लग्न स्थिति की एक बहुत ही अच्छी पहचान है। संदिग्धावस्था में इसका सहारा लेते ही अनेक अवसरों पर लग्न पर शनि की स्थिति का सटीक पता लगाया जा सकता है।

सुपलियों की बनावट पर भी ध्यान देते ही नसों की उभाड़ का पता बेखटके लगता है। जिसकी सुपलियों में मांस की कमी और नसों की भरमार देख पड़े वहाँ मनुष्य के पैरों को शनि के प्रभाव में बना हुआ समझना चाहिए। एक तो साधारणतः पैरों में मांस की कमी देखी जाती है पर मोटे व्यक्तियों के पैरों में काफी मांस होता भी है। जो नसों को ढँके रहता है। शनि के प्रभाव में मांस की बहुत कमी और नसों की पुष्टि विशेष रूप में दृष्टिगत होती है। सुपलियों की सारी आकृति रुखड़ी, रक्तहीन और श्यामता लिए हुए पीली जान पड़ती है। इसी प्रकार की नसों से, मेरा अभिप्राय उभड़ी हुई नसों से है और ऐसी ही नसों की उभाड़ शनि की विशेष पहचानों में से है, इसको थोड़ा अभ्यास करके जान रखना आकृति से ग्रहों की पहचान करने के प्रयत्न करनेवाले सज्जनों को अवश्य चाहिए।

इतना होने पर भी केवल लम्बाई और शरीर की आत्यन्तिक कृशता और इनसे उत्पन्न नसों की उभाड़ से ही शनि की लग्नस्थिति का अचूक अनुमान प्रत्येक अवसर

पर नहीं हो सकता। मनुष्य की आकृति इतने भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है कि किसी व्यक्ति विशेष की आकृति में उसकी लम्बाई और दुर्बलता ही उसके शरीर की बनावट के प्रधान और ऐसे सुस्पष्ट लक्षण हैं जो मनुष्य के ध्यान को अन्य लक्षणों से बलपूर्वक खींचकर अपने में ही केन्द्रीभूत कर दें। उदाहरण रूप कभी-कभी आपको ऐसे व्यक्ति भी मिलेंगे जो लम्बे-दुबले तो हैं पर उनकी आँखें इतनी बड़ी-बड़ी और तेजपूर्ण तथा आकर्षक हैं कि आपका ध्यान उनकी कृशता और ऊँचाई पर रुकता नहीं बल्कि आँखों पर ही जा जमता है और आप उनकी विलक्षणता के ही विचार में लवलीन होकर उन्हें उनके शरीर में विद्यमान उनकी लम्बाई और कृशता के कारण उत्पन्न होनेवाली त्रुटियों को भूल-से जाते हैं और आपका मन उन व्यक्तियों की शारीरिक बनावट को झुझुआवन मानने को सहसा तैयार नहीं होता। कहने का तात्पर्य यह कि मनुष्य की आकृति के अध्ययन करते समय इसके जानने का प्रयत्न करना एक महत्वपूर्ण बात है कि आकृति के कौन-कौन प्रधान और कौन-कौन गौण लक्षण हैं। जो लक्षण अपने प्रभावों से अन्य लक्षणों को दबा देते हुए से जान पड़ें उसे ही प्रधान लक्षण कहेंगे। ग्रहों की पहचान के विवेक में संदिग्ध उदाहरणों (आकृतियों) में ये मुख्य लक्षण आपके बड़े काम आया करेंगे। तो शनि की लम्बाई और कृशता को निश्चित करते समय इस बात का विचार अवश्य करना चाहिये कि यह लम्बाई या कृशता व्यक्तिविशेष की आकृति का प्रधान लक्षण है कि नहीं। यदि नहीं तो क्यों ?

जहाँ आपको शनिवत् लम्बाई और कृशता के साथ आँखें बड़ी-बड़ी तेजपूर्ण (ओजस्विनी) चमकती और अपनी सुन्दरता से मनमोहक और चेहरे की अन्य त्रुटियों को दूर करती हुई जान पड़े वहाँ वह लम्बाई और कृशता कदाचित् ही शनि-जनित हों। लग्नस्थ शनि का यह एक अव्यर्थ लक्षण है कि आँखें तिरछी बैठी हुई-सी जान पड़ती हैं और उनमें चमक (ओज) का पूरा अभाव होता है।

साथ-ही-साथ वे गहरी बैठी हुई, शुष्क, छोटी और अनाकर्षक होती हैं। इन सभी लक्षणों के साथ यदि आँखों को आप नाक की दोनों ओर के कोनों में तिरछी-सी आकर अपने-अपने कोनों में धँसती हुई-सी पावें तो जान लीजिये कि वहाँ शनि का प्रभाव अवश्य है। आँखों के इस प्रकार के तिरछा बैठाव को लग्नस्थ शनि का सबसे बड़ा अव्यर्थ और सुवर्णघटित नियम मानना चाहिये। सच तो यह है कि जहाँ कहीं लेखक की समझ में यह लक्षण स्पष्ट आ गया है वहाँ शनि की स्थिति की पहचान में एक भी भूल नहीं हुई है। इसलिए इस नियम पर विशेष ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

यदि पूर्व वर्णित लम्बाई और शारीरिक कृशता के साथ-साथ आँखों के इस प्रकार का तिरछा बैठाव मिल जाय तो आप बेखटके शनि को लग्न या

दूसरे या बारहवें घर में बैठा हुआ कह दे सकते हैं और इसमें असफलता से भय-भीत होने की आवश्यकता नहीं। ज्योतिष की सच्चाई के प्रमाण में यह एक बड़ा विचित्र चमत्कार है। देखें चित्र ९४।

शनि लग्नस्थ हो वा द्वितीयस्थ हो अथवा कभी-कभी जब वह द्वादशस्थ हो तो मुखाकृति पर अपना पूरा प्रभाव उत्पन्न करता है। ऐसी दशा में सबसे पहले तो उसका प्रभाव दाँतों और दन्तपंक्ति पर पड़ता है।

दाँत लम्बे और आगे की ओर निकले वा निकलने की ओर की प्रवृत्ति रखने वाले होते हैं। अर्थात् ये आगे निकलने का झुकाव रखने वाले होते हैं। कभी-कभी निचले जबड़ों के दाँत और दन्तपंक्ति की दशा भी वही होती है पर सर्वदा नहीं। तथापि दाँतों की बाढ़ पूरी, दाँत बड़े-बड़े और टेढ़े तो अवश्य होते ही हैं।

राहु के प्रकरण में प्रसंगवश बतलाया जा चुका है कि राहु और शनि के प्रभावों में केवल यह विभेद है कि राहु के दाँत बड़े-बड़े तो होते पर उनका दृढ़ (मजबूत) और तिरछा निकले रहना कोई आवश्यक वा अनिवार्य नहीं पर शनि में ये बातें अवश्यंभावी हैं।

शनि के प्रभाव में मुखाकृति आगे को निकली हुई-सी और सर्वतोभाव से शूच्याकार आगे निकलती हुई-सी प्रतीत होती है। अर्थात् शनि के प्रभाव में मुखाकृति भीतर को धँसी हुई-सी विरला ही कभी कठिनता से मिलती है और जहाँ मिलती भी है वहाँ दाँतों पर अपना पूरा प्रभाव प्रकट किये बिना रहती नहीं।

देखें चित्रांक २। इनमें शनि और राहुजनित दोनों प्रकार के प्रभाव स्पष्ट हैं।

ध्यानपूर्वक अवलोकन से पता चलेगा कि आपकी मुखाकृति पिचकी हुई नहीं बल्कि आगे की ओर ही बढ़ने की प्रवृत्ति रखने वाली है। राहु के कारण दाँतों की बाढ़ काफी अच्छी है और शनि के कारण दीर्घ और बलवान। आपका शरीर लम्बा, बड़ा परिश्रमशील और क्षीणशक्ति को पुनः तत्काल प्राप्त कर लेने की क्षमता रखनेवाला है। यदि शुक्र की स्थिति भी लग्न पर नहीं होती तो शरीर भरा और दोहरा नहीं होने पाता। पर क्षीणकाय नहीं होने का एक दूसरा प्रबल कारण कुण्डली में उपस्थित है। यह है चन्द्र पर गुरु की पूर्ण दृष्टि। इसका उल्लेख आगे भी यथावसर होगा ही। और भी देखिये चित्रांक, ६१ उनके दाँतों की दृढ़ता को जिनलोगों ने देखा है उन्हें यह समझते कुछ भी विलम्ब न होगा कि शनि के दाँत कैसे सुदृढ़, सुगठित, बलवान और बड़े-बड़े

आगे की ओर के झुकाव वाले होते हैं। ७०-७२ वर्षों की अवस्था में जब इनका देहावसान हुआ तो एक भी दाँत टूटने नहीं पाये थे। स्मरण रहे कि शनि और मंगल दोनों इनके लग्न में थे।

स्मरण रहे कि ये दोनों उदाहृत आकृतियाँ शनि के अमिश्रित प्रभाव में बनी आकृतियाँ नहीं हैं। कारण विशेषवश इसमें अनेक प्रकार के परिवर्त्तन हो आये हैं। शनि के अमिश्रित प्रभाव में उत्पन्न आकृतियों को हृदयंगम करने के लिए पाठकों का ध्यान चित्रांक ४, ५, ६, ९, ११, ६० और ६७ की और आकर्षित किया जाता है।

सबके सब की मुखाकृति लघु, ठोस, सुन्दर और नुकीली, तीक्ष्ण दृष्टि-सम्पन्न और निकली हुई वा निकलने की प्रवृत्ति रखने वाली दन्त पंक्तियों वाली है। इन सबों के देखने के बाद जो एक सबसे मिलती हुई-सी आकृति आपके मानस पटल पर अंकित होगी वही शनिजनित मुखाकृति की सबसे अधिक मिलती-जुलती प्रतीक-मुखाकृति होगी। इनमें भी चित्रांक ४, और ६० अधिक सटीक व्यञ्जक हैं। सबसे स्पष्ट तो चित्रांक ४, ५, और ६१ हैं जिनकी आकृतियाँ देखकर ही लग्नस्थ शनि और लग्नों का अनुमान कर कुण्डलियों से सत्यापित कर दिया गया था।

अब यदि इन आकृतियों में वर्त्तमान विभिन्नताओं के मूल कारणों को इंगित कर दिया जाय तो कदाचित् तथ्य ग्रहण में पाठकों को अधिक साहाय्य मिले।

चित्रांक ८४ और ४ को पाठक ध्यान से देखें। दोनों ही एक ही सज्जन की आकृतियाँ भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की हैं। एक किशोरावस्था और दूसरा चित्र प्रौढ़ावस्था का है। दोनों को देख कर सहसा आप नहीं कह सकते कि ये एक ही व्यक्ति की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के फोटो हैं। अंक ८४ को पाठक ध्यान से देखें। यह किशोरावस्था का है पर शनि के लक्षणों का ठीक प्रतीक है। चित्रांक ४ में अनेक परिवर्तन आ गये हैं। कारण गुरु की बलवती केन्द्र स्थिति है। अंक ४ का मिलान अंक ८४ से करें। दोनों के मूल साम्य को देखकर आश्चर्य होगा।

चित्रांक ६, और ११ को भी ध्यान से देखें। दोनों ही लग्नस्थ शनि के उदाहरण हैं तथापि दोनों अनेक बातों में साम्य रखनेवाले होकर भी अनेक

विषम लक्षनोपेत हैं। दोनों ही ऊपर शिर और ललाट की ओर प्रशस्त और ठुड्डियों की ओर नुकीले हैं। आकृति ठोस, नुकीली और लघु ही हैं। दोनों ही लम्बी और सुदृढ़ दन्तपंक्तियों वाली हैं। अंक ६ के दाँत कुछ विशेष विरल और सूच्याकार हैं जो हँसते और बोलते समय अधिक स्पष्ट होते हैं।

चित्रांक ११ में अनेक परिवर्तन कई कारणवश हुए हैं तथापि लग्नस्थ शनि की छाप यहाँ भी वर्तमान है। सचमुच ही अंक ६ और ४० दोनों लग्नस्थ के शनि प्रतिनिधि हैं।

अंक ६ के सज्जन से प्रथम मिलाप के साथ ही उनकी कुण्डली में लग्नस्थ शनि बतलाकर उन्हें आश्चर्यान्वित कर दिया गया था। अंक ११ के सज्जन के साथ भी प्रथम साक्षात्कार में ही पहले आकृति से लग्न और ग्रहस्थिति कहकर कुण्डली से उनका मिलान कर तथ्य दिखला दिया गया था। इनमें तो केवल लग्न नहीं बल्कि अधिकसंख्यक ग्रहों की भी स्थिति ठीक-ठीक बतलाकर चकित ही कर दिया गया था। इनके देखने के प्रथम अवसर के लगभग दो वर्षों से अधिक अवधि के पश्चात् व्यक्तिगत सम्पर्क और साक्षात्कार करने और कुण्डली से अनुमानित ग्रह स्थितियों के सत्यापन का सुअवसर प्राप्त हुआ था। (देखें मेरी "ज्योतिष साधना के कुछ संस्मरण" यंत्रस्थ)।

इनकी आकृति में गुरु, राहु, चन्द्र, शुक्र आदि ग्रहों के कारण अनेक आमूल परिवर्तन हुए हैं। इनकी सूक्ष्मता पर्याप्त अनुभव से और आगे के यथा प्रसंग वर्णन से स्पष्ट और मानसपटल पर अंकित हो सकेगी।

अंक ५ और ६८ में शनि केतु ने क्रमशः कुम्भ और मिथुन लग्नस्थ हो इन सज्जनों को लम्बा क्षीणकाय, और शुष्क देहयष्टि वाला बनाया है। आँखें कानों के भीतर धँसी हुई, तिरछी और अतितीक्ष्ण दृष्टि-युक्त हैं।

मेष लग्न का शनि हो तो जातक प्रायः क्षीणकाय और लम्बा होता है। ऐसा जातक उच्चश्रेणी का कदाचित् ही कभी मिले। राहु से युत हो तो परम स्वार्थी और कलहप्रिय होता है। यह लक्षण अनुभूत होते हुए भी अव्यर्थ और सुगमोपलभ्य नहीं।

वृष राशि में शनि वृष राशि के गुण अधिक पैदा करता है। मंगल की युति मनुष्य को बड़ा उत्साही, बलिष्ठ और दोहरे शरीर का सुगठित बनाती है। मनुष्य स्वावलम्बी, प्रेमी, स्त्री कष्टी और उपपत्नी युत होता है। ये लक्षण अनुभूत तो हैं पर अभी परीक्षणीय ही हैं; तथापि चित्रांक ६१ को देखें।

मिथुनस्थ शनि का जातक बहुधा पूरा लम्बा और दोहरे बदन का होता है। आँखें धँसी हुई, तिरछी, और चेहरे की आकृति देखने में खोखली और आँखों की चारों ओर कालिमा-सी बैठी होती हैं। बुध और मिथुन के लक्षण अधिक प्रकट और स्पष्ट रहते हैं।

कर्कस्थ शनि आकृति को लम्बी नहीं होने देता। दाँतों का उभाड़ यथा कथित आगे की ओर और जातक तीक्ष्णबुद्धि वाला, असहिष्णु, अदीर्घदर्शी और अकारण क्रोधी होता है। भारी स्वार्थी होते हुए भी धार्मिक भावना का होता है। यदि चन्द्रमा वहाँ हो तो विशेष अनिष्टप्रद तो नहीं पर अमर्षी और अक्षम्य असहिष्णुता से भरा रहता है। स्वभाव तीक्ष्ण और कड़ा होता है पर मनुष्य शुद्ध हृदय वाला और न्यायी होता है। चेहरा पूरा खोखला नहीं पर दंतपंक्ति के कारण आकृति नुकीली ही हो जाती है।

सिंहस्थ शनि से मुखाकृति ललाट की ओर चौड़ी पर ठुड्ढी की ओर पतली तथा नोकदार होती है। सामने से सारा मुखमंडल आँखों के गहरे कोटरों के कारण खाली और खोखला लगता है। दाँतों पर शनि के स्पष्ट लक्षण व्यक्त होते हैं। (चित्रांक ११।)

कन्या लग्न में शनि हो तो कन्या राशि के ही लक्षण स्पष्ट प्रकट जान पड़ते हैं पर मुखाकृति (चेहरा) कुछ छोटा-सा लगता है। डील-डौल नाटा ही पर शरीर दोहरा होता है।

तुला लग्न में शनि मनुष्य को लम्बा, दुबला-पतला और चिन्तामग्न कर डालता है। ललाट पर बल पड़े होते और मनुष्य सोचता-सोचता अपनी सुधबुध भूल जाता है। व्यक्ति भूला-भूला-सा लगता है। पर स्वयं भाग्यशाली, ज्ञानी, तीव्र बुद्धियुक्त और प्रतिभाशाली होता है। देखें चित्रांक ४ और १०।

वृश्चिक का शनि जातक के मुखमण्डल को वृश्चिक राशि के लक्षणों से युक्त करता एकहरी शरीरयष्टि देता और सामने से चेहरे को सुन्दर नुकीला और पार्श्वों से दबाकर पतला कर देता है। मुख में चेचक के दाग उत्पन्न करता और व्यक्ति की प्रकृति कठोर बना देता है। पर साथ ही मनुष्य को बड़ा परिश्रमी बना देता है। (चित्रांक ६ और ९४)।

मकर लग्नस्थ शनि मनुष्य को लम्बा, तगड़ा, बलिष्ठ, दृढ़ गठन का (या ठोस गठन का) और दोहरी देहवाला बनाता है। पेट निकलने नहीं पाता और सारा शरीर लौहवत् सुगठित होता है।

धनु लग्न का शनि राजयोग सम्पन्न सुगठित बदनवान, अनेक सुगुणोपेत, बलिष्ठ और प्रभावोत्पादक बनाता है। डील-डौल पूरा लम्बा और गुरुदृष्ट हो तो लोहे-सा वजनदार और अजेय व्यक्तित्व देता है। पूर्ण शक्तिशाली, साहसी, पराक्रमी आखेटी और निर्भीक और आत्माभिमानी बनाता है। देखें चित्रांक ९।

कुम्भस्थ शनि हो तो शरीर कृश, लम्बा, आकृति ओजहीन, हल्का-फुल्का पर तीक्ष्ण-बुद्धि और कार्यपटु बनाता है। शुभदृष्ट युत हो तो उसे बुद्धिकौशल में कोई हरा नहीं सकता है। चित्रांक ५।

मीनस्थ शनि लग्न में हो तो वह मनुष्य को राजयोग देनेवाला और भाग्य प्रदाता होकर सुख और अधिकारवान् व्यक्तित्व देता है। शरीर नाटा और भरा होते हुए गुरु और कन्या के लक्षण एक साथ मिश्रित रूप में व्यक्त करता है।

शनि पर गुरु की दृष्टि हो तो शरीर दोहरा और बलिष्ठ होता है। मनुष्य में स्वतः आकर्षण उत्पन्न हो जाता है और संग्राम में वह अजेय-सा होता है।

शनि पर शुक्र की दृष्टि हो तो व्यक्ति प्रायः साँवला और कदाचित ही गोरा होता है। चेहरा कान्तिपूर्ण और शृंगारप्रिय होता है। शुक्र की पूर्ण दृष्टि (इस ग्रंथ में विचाराधीन विषय के कारण सभी ग्रहों की पूर्ण दृष्टि ही (जहाँ कहीं इसका प्रसंग आया है, विवक्षित है) हो तो शनि शुक्र से ७ वें पड़ता है अतः स्त्री-पक्ष से वह व्यक्ति संतोषी नहीं होता। स्त्री प्रायः शिक्षिता और विचारवती मिलती है।

बुध की दृष्टि हो तो मनुष्य हठी और पहलवान होता है। क्रीड़ा और कसरत उसकी विनोद की वस्तुएँ होती हैं।

मंगल की दृष्टि से मनुष्य कड़े स्वभाव का, असंतोषी और स्वार्थी होता है।

सूर्य की दृष्टि से मनुष्य का शरीर सूख जाता और व्यक्ति प्रायः कपटी होता है।

चन्द्र दृष्टि में व्यक्ति प्रतिभाशाली और विलक्षण तीव्र बुद्धि का होता है। आकृति लम्बी और पैनी होती है।

गुरु और शनि की युति चाहे कहीं हो तो मनुष्य असाधारण मोटा होता है। कुंडली में वह योग लग्न में हो या अन्यत्र फल एक ही होने में चूक नहीं होती। क्यों का प्रश्न छोड़ दिया जाय तो यह एक ज्योतिष का चमत्कार ही है। इतना

स्थूलकाय अन्य किसी योग में नहीं होता। कन्या का चन्द्र ही इस नियम का व्यवधान व्यक्ति विशेषों में पाया जाता है। देखें चित्रांक ३६।

राहु गुरु युति में कद लम्बा, शरीर दोहरा और मनुष्य सॉजर (फाइलीरिया) रोग वाला हो जाता है। २ रे, ८ वें, और पहले भावों में मनुष्य बृहद्बीज का रोगी होता है। केतु के साथ वाली युति में भी वही फल होता है पर व्यक्ति कुछ भ्रष्टाचारी पाया जाता है।

शनि शुक्रयुति आकृति अपना कोई लक्षण नहीं उत्पन्न करती तो भी व्यक्ति सांवला और कान्तिमान होता है। आँखें आकर्षक और बड़ी-बड़ी होती हैं। पत्नी कड़े स्वभाव की और कार्यदक्ष मिलती है।

शनि-मंगल की युति से शरीर ठोस और लोहे-सा पर मोटा ही होता है।

सूर्य शनि युति मनुष्य को शुष्क कर देती है, रक्त की कमी करती और व्यक्ति को हृद्रोगी बनाती है। सूर्य शनि युति उतनी बुरी नहीं होती जितनी साधारणतः समझी जाती है।

शनि चन्द्र युति तो मनुष्य को बड़ा ही तीक्ष्णबुद्धि वाला प्रतिभाशाली बनाती और नहीं तो विक्षिप्त कर डालती है। मस्तिष्क बड़ा तेज होता है। अन्य शुभयोगों के रहने पर मनुष्य आविष्कारक होता है पर यदि नहीं तो बड़ा धूर्त आदि हो जाता है। प्रायः व्यक्ति पागलों-सा व्यवहार करता और अन्त में संन्यस्त हो जाता है। देखें चित्रांक २३, ६७

लग्नस्थ शनि से बाल घने, बड़े, मोटे, सघन और बड़े काले होते हैं, व्यक्ति लम्बे बाल रखना पसन्द करता है। मूँछें बड़ी-बड़ी रखता और कभी-कभी दाढ़ी रखने का शौकीन होता है। बालों के ये सभी लक्षण लग्नस्थ शनि के अव्यर्थ लक्षणों में से हैं। इनमें से एक या अनेक को आकृति में पाकर आप बेखटके लग्नस्थ शनि का अव्यर्थ अनुमान लगा सकते हैं। द्वितीयस्थ वा द्वादशस्थ शनि आदमी को मूँछें और दाढ़ियाँ या दोनों में से एक रखने का शौकीन बनाता है। अतः जब कभी आप किसी व्यक्ति को अपने समाज के प्रचलन के प्रतिकूल असाधारण रूप में मूँछे या दाढ़ी रखे हुए पावें तो आप समझें कि इसकी कुंडली में शनि दूसरे या बारहवें बैठा है। और आप शनि के दूसरे या बारहवें बैठने या लग्नस्थ होने के अन्य चिह्नों के सहारे अपना अन्तिम निर्णय दूसरे बारहवें वा लग्नस्थ होने के अनुमान को निश्चित कर कुंडली से उसका सत्यापन कर दे सकते हैं।

लग्नस्थ शनि के अनुमान की ओर ध्यान व्यक्ति के नखों की ओर भी ध्यान देते ही चला जाता है। नख बड़े-बड़े और रुखड़े होते तथा देखने में असाधारण बड़े और अप्रिय लगते हैं।

मस्तिष्क बड़ा तेज होता है और सदा मनुष्य को अग्रसोची बनाता है। नूतन विचार नित्य किया करता है। कार्य-सम्पादन में कोई परिश्रम छोड़ता नहीं।

●

पंचम प्रकरण

केतु

केतु का साधारण अर्थ ध्वजा वा पताका है। हमारे यहाँ धार्मिक पताकायें समारोह में सदा आगे रखी जाती हैं और अपने अनुयायियों या जमातों के सिद्धांतों का प्रतीक होती हैं। समूह के लक्ष्य और तात्कालिक अवसर को वे दर्शन मात्र से स्पष्ट करतीं और सदा ऊँचे-ऊँचे विशाल दण्डों की नोकों पर बाँध कर आकाश में फहराई जाती हैं। पुच्छल तारे छोटे तौर पर आकाश में फहराते पताके की नाईं दृष्टि में आते हैं और इसी से उन्हें भी हम केतु कहने के आदी हैं और इसकी एक परिपाटी-सी हो गई है। इन पुच्छल तारों के समूह की ऐसी आकृति उनकी पूँछ में लगी जान पड़ने वाली तारिकाओं से दीखने वाले ज्योतिष्पुंज के कारण ही दीख पड़ती है। अर्थात् इन पुच्छल तारा समूहों में इनकी पूँछों की प्रधानता और विशेषतायें होती हैं और इन्हीं पूंछों के कारण इन्हें भी केतु कहा जाने लग गया है ऐसा प्रतीत होता है।

राहु के वर्णन में यह भी बतला ही चुके हैं कि केतु किस प्रकार एक वृत्त की पूँछ रूप है। वास्तव में यह भी हमारे चन्द्रमा के दो पातों में से अवरोही (उतरता) पात है। राहु भी पात है पर वह चढ़ता पात (वा आरोही) है। पत् धातु का अर्थ पतित होना या गिरना या गिरकर किसी निम्न स्थान में आ जाना होता है। पात का साधारण अर्थ अतः गिराव वा आकर किसी स्थान के बिन्दु विशेष पर जुटना होता है। वृत्ताकार ग्रह कक्षा और पृथ्वी कक्षा का आकर जहाँ जुटाव होता है उसे ही पात कहते हैं। ग्रह अपनी कक्षा में भ्रमण करता हुआ पृथ्वी कक्षा पर उसी एक विन्दु पर आकर मिलता है। अर्थात् उसकी कक्षा और पृथ्वीय कक्षा वृत्त उसी बिन्दु पर आकर पतित होती वा जुटती हैं। जब एक वृत्त दूसरे पर आकर किसी बिन्दु विशेष पर जुटता है अथवा उसे काटता है तो वह साथ ही उसे एक अन्य दूसरी बिन्दु पर भी काटता ही है। अतः वह बिन्दु भी उनका पात स्थान होना है। इसलिए कक्षा वृत्त पर ग्रह के दो पात स्थान होते हैं। वा यों कहिये कि इन्हीं दो स्थानों पर दोनों ग्रहों के मार्ग वा कक्षावृत्त आकर पतित होते हैं। अतः ये दोनों स्थान उस ग्रह के पात हुए।

एक पात पर वह चढ़ता हुआ पहुँचता जान पड़ता और दूसरे पर उतरता हुआ पहुँचता देखा जाता है। अतः एक को चढ़ाई का पात (आरोही पात) और दूसरे को उतराई का पात (अवरोही) कहने की परिपाटी चल गई है।

राहु चढ़ता हुआ पात और केतु उतरता हुआ पात कहा जाता है। व्यवहार में अन्य ग्रहों के पातों से हमारा सम्पर्क होने का अवसर अत्यन्त कम मिलता है। साधारण जन को तो कभी मौका आता ही नहीं पर वैज्ञानिकों को तो उन्हें जानना और पहचानना ही होता है। हाँ, हमें चन्द्रमा के पात से प्रति वर्ष एक या दो बार अवश्य सम्पर्क में आना पड़ता है।

चन्द्रमा के पातों के सन्निकट अमावस्या और पूर्णिमा के दिन सूर्य के आ जाने पर ग्रहण लगता है चाहे वह सूर्य ग्रहण हो या चन्द्र ग्रहण। उस अवसर पर हमारा ध्यान इसीलिए इन पातों की ओर अवश्य जाता है। इसीलिए चन्द्रमा के पातों को राहु और केतु कहा जाता है जो सूर्य और चन्द्र को निगल जाने वाले माने जाते हैं। वस्तुत: सूर्य और चन्द्र आकर इन पातों में विलीन होते हुए स्पष्ट देखे जाते ही हैं। सूर्य और चन्द्र के खण्डग्रहणों में इन पातों का व्यक्तित्व अन्धकार रूप और कालिमाघटित सूर्य और चन्द्र पर स्पष्ट ही देख पड़ता है। यही कारण है, जैसा पहले भी कहा जा चुका है, कि राहु और केतु को तमोग्रह वा अन्धकार विशिष्ट ग्रह कहा जाता है। स्मरण रहे कि अन्य सभी सातों ग्रह आकाश में चमकते दृष्टिगत होते हैं पर राहु और केतु कभी नहीं चमकते (क्योंकि उनका कोई ठोस अस्तित्व नहीं) बल्कि अन्धकार होकर ही दृष्टिपथ में आ जाते हैं।

चढ़ते हुए चन्द्रपात को राहु और उतरते चन्द्रपात स्थान को केतु कहा जाता है। अंग्रेजी में उन्हें क्रमश: Ascending node और Descending node कहा जाता है।

हाँ, तो चन्द्रमा का उतरता पात केतु कहलाता है। कक्षावृत का उत्तरार्ध और राहु का पिछला भाग उसकी पूँछ की नाईं होने से केतु नाम उसका यथार्थ ही है।

आकृति देखकर कुण्डली में केतु की स्थिति का पता मनुष्य की लम्बाई वा ऊँचाई से होता है। असाधारण लम्बाई पाकर कुण्डली में केतु को लग्नस्थ जानना चाहिए। देखें चित्र ९१ लग्न ही सारे शरीर का द्योतक समझा जाता है। इसीलिए लग्न में पड़ने से केतु मनुष्य की आकृति में सबसे पहले लम्बाई उत्पन्न करता है। लग्नस्थ केतु से जिस प्रकार मनुष्य लम्बा होता है वैसे कई अन्य ग्रहों के कारण से भी होता है और उसका उल्लेख हम राहु और शनि के प्रकरण में कर चुके हैं। वहाँ ही यह भी संकेत किया जा चुका है कि राहु, शनि और केतु तीनों की लम्बाइयों को मनुष्य की आकृति में उत्पन्न किन-किन लक्षणों से विलगा कर पहचाना जा सकता है।

सूर्य के लग्नस्थ होने पर भी मनुष्य लम्बा हुआ करता है। उसकी लम्बाई से भी केतु की लम्बाई विलग की जा सकती है। सूर्य के प्रकरण में इसकी स्पष्टि विशेष रूप से की गई है।

केतु की लम्बाई को अन्य-ग्रहदत्त लम्बाई से पृथक् करने की सबसे पहली पहचान तो यह है कि शरीर लम्बा होने पर भी तगड़ा होता है। देखें चित्र ९१ यह बात शनि और राहु में बिलकुल ही आवश्यक नहीं। सूर्य की लम्बाई में भी शरीर तगड़ा होता है। अतः केतु और सूर्य की लम्बाई में इस बात में समानता है। कहना तो यह चाहिए कि यदि गर्दन से ऊपर का भाग शरीर से हटा दिया जाय तो सूर्य और केतु की लम्बाई के साथ-साथ अन्य शारीरिक बनावट में कोई विशेष अन्तर नहीं मिलेगा। सूर्य और केतु दोनों ही के लग्नस्थ होने पर शरीर की हड्डियाँ (अस्थि पञ्जर) की बनावट एक-सी पूरी विकसित और शरीर चौकोर (चौपहल) वा चौखूंट लगता है। शरीर मजबूत भी समान रूप से होता और दोनों ही की दशा में पेट पर मेद (चर्बी, Fat) के चिह्न का अभाव होता है। केवल इतना विभेद अवश्य है कि केतु से शारीरिक जोड़ें राहु-सी ढीली तो किसी प्रकार नहीं होती पर सूर्य की जोड़ों की सख्ती भी उनमें नहीं होती। शनि-सी नस प्रधान और सख्त (दृढ़) तो होती ही नहीं देखें चित्र ९१।

बृहस्पति के लग्नस्थ होने पर चाहे और कुछ हो या न हो पर गात्र तुन्दिल होता ही है। वैसे ही चाहे और जो या जैसा हो पर केतु लग्नस्थ होने पर गात्र तुन्दिल कभी नहीं होता। सूर्य के भी प्रभाव में यही बात समान रूप में पाई जाती है। संक्षेप में यह कि सूर्य और केतु दोनों ही की हालत में शरीर ऊँचा पूरा, चौकोर, तगड़ा, ठोस, और मेदहीन समान रूप से होता है। हड्डियों की बाढ़ और पुष्टि समान होती है। ये बातें शनि और राहु की दशा में नहीं कही जा सकती।

दोनों में तौ भी भेद है और वह भेद गर्दन से नीचे की आकृति और अवयवों में नहीं पर गर्दन से ऊपर वाले भाग में पाया जाता है।

सूर्यजनित प्रभाव में मुखाकृति ओजपूर्ण, भरी हुई और आकर्षक के साथ-साथ प्रभावशालिनी होती है। चेहरे से चुस्ती, और चटकीलापन के साथ-साथ सौम्य और गम्भीरता टपकती रहती है। इसके ठीक विपरीत केतु हो तो मुखाकृति कान्तिहीन, ओजरहित गहरी वा खोखली, विकृत, भयानक और भद्दा के साथ-साथ रूखड़ापन लिये होती है। आकर्षण के बदले दृष्टि पड़ने पर उससे अपकर्षक का भाव मन में उदित होता है।

सूर्य में चेहरा भव्य, भरा हुआ और प्रभावशाली होता है। उसके विपरीत केतु में चेहरा भद्दा, रुखड़ा, खोखला और प्रभा तथा प्रभाव दोनों से विहीन होता है। आँखों का गहरा कोटर केतु को सूर्य से तुरन्त विलग कर देता है। सूर्य से प्रभावित आँखों में कोटर कभी गहरे और न विशाल ही होते हैं। अतः एक बार जान लेने पर दोनों की पहचान में भूल होने का अवकाश ही नहीं रहता।

ऊपर जो कुछ इस सम्बन्ध में कहा गया है केतु और सूर्यादि अन्य ग्रहों के अमिश्रित फल से समन्वित व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर ही कहा गया है और साधारणतः जहाँ ऐसा मिल जाय वहाँ प्रत्येक के अपने-अपने लक्षणों की पहचान और ज्ञान में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। पर वस्तुतः ऐसा अमिश्रित फल सम्पन्न व्यक्तित्व मिलता कहाँ है। अधिसंख्यक व्यक्तियों में तो अनेक ग्रहजनित मिश्र फल ही व्यक्त मिलते हैं। वैसी दशा में इतने से साधारण वर्णन से काम नहीं चलने का। अधिकतर तो देखने में ऐसा आवेगा कि सूर्य और केतु के प्रभावों से उत्पन्न मनुष्य की लम्बाई और आकृति इस प्रकार मिलती-जुलती है कि जान ही नहीं पड़ता कि यहाँ सूर्य प्रधान है कि केतु और यदि दोनों में से एक प्रधान है तो कौन ?

इसलिए और भी विशेष सूक्ष्म अध्ययन आवश्यक है। केतु जब लग्न में पड़ता है तो उसका प्रभाव चेहरे के (क) ललाट, (ख) आँख, (ग) जबड़ों की हड्डी, (घ) गाल, (ङ) ठुड्ढी, (च) दाँत, (छ) दन्तपंक्ति, (ज) भावभंगी और (झ) सन्धियों वा जोड़ों पर पड़ता है। अतः इनका अलग-अलग अध्ययन आवश्यक और लाभ-प्रद होगा।

ललाट में कोई बहुत सुन्दर सटीक (अचूक) लक्षण तो लग्नस्थ केतु से नहीं पैदा होते मिले पर तौ भी जो देखने में आये हैं वे कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति में तो नहीं लेकिन कभी-कभी यह देखा जाता है कि लग्नस्थ केतु ललाट को प्रशस्त नहीं होने देता। शिर के बाल और भौहों के बीच का स्थान संकीर्ण हो जाता है। अर्थात् शिर के घने बाल काले-काले ललाट के काफी नीचे तक उग आते हैं। दोनों कनपटियों की ओर से भी बाल ललाट की ओर घुस आते हैं जिससे ललाट का वह भाग जो बिना बालों का होता है पतला और मेहराबदार बन जाता है। लगता है जैसे छोटा-सा दूज का चाँद उलटा रखा हुआ है। ठीक धनुष के आकार का छोटा ललाट खाली बचता और चारो ओर बालों से घिर कर ठीक धनुष्कोटि वा प्रत्यञ्चा चढ़े धनुष-सा लगने लगता है (देखें चित्र ९१)।

चित्रांक ९२ वाले सज्जन में ये लक्षण स्पष्ट उगे हैं। ललाट, आँखें, भौंहें और मुँह की हड्डियों का बनावट पर ध्यान देने योग्य हैं। शिर के बाल पूर्ण काले-

काले, घने, कड़े और रुखड़े हैं। बालों ने ललाट के दोनों कोनों को आच्छादित कर रखा है और सामने से ललाट पर उतर आये हैं।

लग्नस्थ केतु का एक बहुत ही ठीक और अचूक चिह्न बहुधा ललाट में पाया जाता है। वह यह कि ललाट के ठीक मध्य से थोड़ा दाहिने बायें हट कर कटने से या चोट से एक तिरछा-सा घाव का चिह्न हो जाता है। जहाँ ऐसा कटा या लकीर-सा चिह्न ललाट पर या भौंहों के सन्निकट देख पड़े वहाँ केतु का अनुमान लग्न में या उसके आसपास अचूक होगा। अतः जहाँ लम्बाई से यह पता लगाना हो कि यह केतु-जनित है या अन्य ग्रह-जनित तो वहाँ यदि ऐसा चिह्न (घाव का या अन्य कारण का) देख पड़े तो वहाँ सरलता से बिना अधिक सोच-विचार के केतु की स्थिति अनुमानी जा सकती है।

जिन व्यक्तियों के ललाटों में ऐसे चिह्न दृष्टिगत हों उनसे उस घाव आदि की उत्पत्ति का इतिहास पूछा जाय तो अधिकांश लोग यही कहते पाये जायेंगे कि यह घाव (व्रण आदि) ऊँचे से गिरने के कारण या ऊपर से किसी पदार्थ के गिरने से चोट के कारण पैदा हुआ है। तलवार, लाठी, पत्थर की चोट से वा इसी प्रकार किसी कठोर वस्तु के ललाट पर आ गिरने या स्वयं अपने ही ऊपर से गिरने के कारण यह चिह्न प्रायः पैदा होता है। अन्य ग्रहादि के प्रभाव से यत्किंचित परिवर्तन की गुंजायश का ध्यान रखकर ही "प्रायः" कहा अन्यथा इसमें कभी फर्क पड़ता नहीं। स्मरण रहे कि लग्नस्थ केतु ऊँचाई से गिराने में बहादुर ही होता है।

ललाट की बनावट और चोट के चिह्न के लिये देखें ऊपर उल्लिखित चित्रांक ५, ८, १७, ६२।

लग्नस्थ केतु आँखों को भीतर धँसा देता है। आँखों के कोटर बड़े और खोखले तथा देखने में भयानक से (या वीभत्स से) लगते हैं। जब मनुष्य देखने की चेष्टा करता हुआ बोलता है तो आँखों के कोए बाहर निकल आते हुए से देख पड़ते हैं और पुतलियों का उपरला या अगल-बगल वाला उजला भाग उलट कर सामने आ जाता है और लगता है जैसे मनुष्य, प्रयत्नपूर्वक विस्फारित नेत्रों से देखते बातें करता है। आँखें कान्तिहीन, सूखी, नीरस, कीच से युक्त, और धँसी हुई होती हैं।

आँखों के कोए (या लोलक) वृत्ताकार वा गोल और लोल होते हैं देखें चित्रांक ५६। शनि के लग्नस्थ होने पर, स्मरण रहे कि, आँखें कभी गोल नहीं होतीं न लोलक ही ऐसे होते हैं। वे लम्बी पर तिरछी बैठी होती हैं। केतु में कभी ऐसा नहीं होता। सूर्य वा राहु के लग्नस्थ होने पर आँखें प्रायः अविकृत और सामान्य रूप में सुन्दर होती हैं। सूर्य की आँखें तो बड़ी जानदार (सजीव) और

सुन्दर होती हैं पर राहु में उतनी सुन्दर और सजीव नहीं होतीं और कभी-कभी तो बहुत छोटी और निस्तेज और असुन्दर भी होती हैं।

यदि लग्नस्थ केतु वाला व्यक्ति किसी को आँखें फाड़कर देखे तो ज्ञात होगा जैसे कोई नर कंकाल सजीव हो देखने की चेष्टा कर रहा है।

जिस मनुष्य की आँखें देखने की चेष्टा में इस प्रकार बाहर निकलने को आती-सी जान पड़ें कि कोओं का उजला भाग दिखलाई पड़ने लगे तो लग्नस्थ केतु का अनुमान करना चाहिए। जहाँ लम्बाई के साथ-साथ ये लक्षण मिलें वहाँ तो केतु की लग्नस्थिति स्पष्ट ही समझिये। यदि देह भी मेदरहित पर दोहरा-सा चौपहल हो वहाँ केतु का अनुमान अव्यर्थ होगा।

जबड़ों की हड्डियाँ जब नाक के मध्य भाग की दोनों ओर सटी हुई और उभड़ी जान पड़ें तो समझना चाहिए कि ये केतुजनित हैं। स्मरण रहे कि दोनों गालों में गढ़े पड़े हुए और चेहरे की हड्डियाँ प्रशस्त और पुष्ट जान पड़ें तो वहाँ केतु के लग्नस्थ होने का अनुमान करना चाहिए।

नाक मध्य भाग की दोनों ओर गालों की हड्डियाँ उभड़ी हुई, चौड़ी और प्रशस्त हों, गालों में गढ़े पड़े हुए हों तथा आँखें धँसी खोढ़रों (कोटरों) से युक्त हों और शरीरयष्टि लम्बी हो तो केतु का लग्नस्थ होना प्रायः अव्यर्थ ही होता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि गाल धँसे हुए और गड्ढेदार होते हैं। फीके और रसकान्तिहीन जान पड़ते हैं और गालों की मांसपेशियों और चमड़े बिलकुल सख्त और ठोस नहीं जान पड़ते।

जहाँ ऐसा नहीं होता कोई दूसरा प्रबल कारण-शुभ ग्रहों की युति दृष्टि आदि—अवश्य होता है।

देखें चित्रांक १७। आप देखेंगे कि वहाँ लम्बाई, हड्डियों की प्रशस्ति; गालों के दबे रहकर गढ़े निर्माण की ओर का झुकाव; शरीर का चौरसपना वा चौखूटा-पहल, इत्यादि सभी लक्षण उपस्थित होने पर भी न तो मांसपेशियों का ढीलापन ही है और न आकृति किसी प्रकार भी देखने में भद्दा या अनाकर्षक या कान्तिहीन होने पायी है क्योंकि लग्नेश केन्द्रस्थ पाप प्रभावविहीन और गुरु से पूर्ण दृष्ट है। तथापि दाँतों पर तो इसका प्रभाव निश्चित रूप से पड़ा ही है। इसके विपरीत देखें चित्रांक ३३। केतु के साथ मंगल के लग्नस्थ होने के कारण शरीर की लम्बाई, दाँतों की प्रत्यक्ष विकृति, शरीर का दुबलापन वा एकहरापन, कपड़ों की

सुन्दरता के बदले उपयोगिता की ओर ध्यान आदि सभी लक्षण वर्तमान हैं। शुक्र और गुरु की शुभ कर्तरी के कारण विद्या, बुद्धि, प्रतिष्ठा कार्यनिपुणता आदि में कोई बट्टा लगने नहीं पाया है।

केतु लग्नस्थ होने पर ठुड्ढी नीचे की ओर चौड़ी होती है।

दाँतों पर केतु का विशेष असर हुए बिना रहता नहीं। सच पूछा जाय तो केतु की स्थिति के प्रत्यक्ष और अव्यर्थ चिह्न दाँतों में ही मिलते हैं।

दाँतें लम्बे, मोटे पर छेहर (वा अलग-अलग बिना सटे हुए) होते हैं। वे अलग-अलग खड़े वा भीतर की ओर मुड़े होते हैं। इसके विपरीत शनि के प्रभाव में दाँत मजबूत और आगे की ओर प्रवर्धमान होते हैं। केतु के प्रभाव वाले दाँत बिलकुल विलग-विलग, मोटे लम्बे पर भीतर झुके हुए होते हैं।

इस गठन को अनेक व्यक्तियों से साक्षात्कार किये बिना दाँतों पर के केतु-जनित लक्षण स्पष्ट पहचान में नहीं आते। स्मरण रहे कि जैसे-जैसे अवस्था ढलती जाती है वैसे-वैसे केतु के चिह्न शरीर पर अधिकाधिक स्पष्ट होते चले जाते हैं। अतः आवश्यक है कि अध्ययनार्थ प्रौढ़ावस्थावाले व्यक्ति ही आरम्भ में चुने जायँ।

किन्तु दन्तपंक्ति की बनावट, जो केतु के लग्नस्थ होने में स्पष्ट और अव्यर्थ रूप से एक विशेष प्रकार की अवश्य मिलती है, केतु के लग्नस्थ होने के सुवर्णघटित लक्षणों में ही एक है। दन्तपंक्ति की यह बनावट काफी बाँकपना लिए हुए अँग्रेजी के U अक्षर की नाई होती है। जहाँ ऐसा ठीक-ठीक मिल जाय वहाँ अनुमान सोलहों आने सत्य अवश्य होगा। यह एक अचूक लक्षण है।

खेद का विषय है कि इस लक्षण का सटीक व्यञ्जक कोई फोटो यहाँ उपस्थित करने के लिए उपलब्ध न हो सका। तथापि चित्रांक ८, ३३, ६२ ध्यानपूर्वक देखकर अपना संतोष किया जा सकता है। कठिन समस्या तो यहाँ यह है कि मुँह खोले और दाँतों की पंक्ति की बनावट को प्रदर्शित करता हुआ कोई चित्र लिया नहीं जा सका।

बातचीत करते समय भी ऐसे जातक की भावभंगी को भी ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। अधिक वाचाल, आँखों के कोओं का बोलते समय सापेक्ष किञ्चित अधिक निकल आना, देखने में मुखाकृति भयानक वा नरकंकाल-सा लगने लगना ईश्वर-भक्ति, मन्त्रपठन, आदि पर विश्वास का बार-बार प्रकट करना, इत्यादि बोलने की भावभंगी, केतु के लग्नस्थ होने से प्रकट होती है।

शरीर में जहाँ-जहाँ जोड़ वा अस्थिसंधियाँ हैं वहाँ-वहाँ उनका जोड़ सुगठित और पुष्ट रूप से जटित नहीं जान पड़ता। प्रत्येक जोड़ (सन्धिस्थल) ढीला-ढाला

सा जान पड़ता है। हड्डियाँ तो काफी मोटी, दलीदार, लम्बी-लम्बी और संवर्द्धित मिलेंगी पर दृढ़ता (मजबूती) से संबद्ध (जुटीं) और सुगठित नहीं होंगी।

इस प्रकार के लक्षण जब शरीर में दृष्टिगत हों तो केतु की लग्नस्थिति का अनुमान अवश्य ठीक उतरेगा। इन लक्षणों में से जितनी ही अधिक संख्या में उपस्थित पाये जायेंगे उतनी ही अधिक निश्चित और ठीक केतु की स्थिति का अनुमान अव्यर्थ वा अचूक निकलेगा।

जो लक्षण ऊपर लग्नस्थ केतु के बतलाये गये हैं वे ही लक्षण उसकी चन्द्रयुति में भी समझना चाहिए। उसी प्रकार लग्नस्थ के बदले उसका द्वितीय भाव वा द्वादशस्थ होने पर भी ये ही लक्षण थोड़ी हेर-फेर के साथ प्रकटित होते हैं। इन हेर-फेरों के साथ यदि लक्षण सारे शरीर की उपरोक्त आकृति के लक्षणों को प्रभावित करते तो स्थिति लग्न में अन्यथा दूसरे या बारहवें होगी। पुनः वर्णित लक्षण यदि मुख, दन्तपंक्ति, आँखें, ललाट, और कनपट्टियों में ही सीमित मिलें और लगे कि सारी शरीरयष्टि प्रभावित नहीं है तो स्थिति लग्नगत नहीं होगी। दाँतों, आँखों ओठों और ललाट में दाहिनी ओर ही ये लक्षण अधिक स्पष्ट हों तो स्थिति दूसरे और कनपटी (बायीं) में, ललाट के कोने में (बायें) या उसके आस-पास अधिक स्पष्ट मिलें तो बारहवें अनुमान की जा सकती है।

उसी प्रकार यदि आँखें या मुँह टेढ़ा, ओठ कटा या मुँह के कोने खिंचे मिलें पर लम्बाई तथा अन्य सहायक लक्षण अनुपस्थित हों तो स्थिति निश्चय दूसरी समझनी चाहिए। स्मरण रहे कि ओठों के काटने, विकृत करने, मुँह टेढ़ा करने आँख को बिगाड़ने में केतु सिद्धहस्त होता है। आँखों का फूट जाना, उनमें फूला और माड़ा पड़ना, आँखों के गोलकों में से एक या दोनों का विकृत हो बड़ा, रक्ताक्त बना रहना या उनका ऐसा विकृत हो जाना कि मुख में उससे खिचाव आदि आ जायँ तो ऊंचे डीलडौल के अभाव में केतु द्वितीयस्थ ही होगा। कंठ और गले की बाह्य शारीरिक विकृति केतु की दूसरे या आठवें की स्थिति की द्योतिका होती है। इन विकार के पैदा करने में केतु ही का अधिकांश हाथ होता है।

शनि से केतु युत मिले तो उक्त सभी लक्षण विशेष प्रस्फुटित मिलते हैं। शनि केतु लग्नगत हों तो चोट के चिह्न और दाँतों की विकृति विशेष रूप में अवश्यम्भाविनी हो जाती है। शरीर विशेष कृश और लम्बा और साथ ही शनिलक्षण प्रधान हो जाता है।

द्वितीयस्थ शनि और केतु कण्ठ विकार उत्पन्न करते और व्यक्ति को विकराल-दन्त बनाते हैं। कंठ विकार में स्वरभञ्ज से लेकर गलगण्ड तक आते और उसी में

डिप्थीरिया; टौंसिल विकार; पैरेलीसिस; कण्ठगतव्रण विस्फोटादि और मुँह को ऐंठना और उससे ऐंचाताना, तुतलाना, हकलाना और ओष्ठ का कट कर टेढ़ा होना इत्यादि आते हैं। तीसरे, चौथे, पाँचवें, सातवें और दशवें घर में बैठा हुआ केतु भाई, माता, सन्तान, भार्या और पिता इत्यादि के सुख से क्रमशः वञ्चित करता है। जो लक्षण लग्नस्थ होकर जातक के अपने शरीर में पाने के वर्णित किये गये हैं उन्हीं लक्षणों को तद्भाव सम्बन्धी (जहाँ केतु हो) अपने कुटुम्बियों में (जैसे भ्राता, माता, पिता, सन्तान और पत्नी आदि) में पाने की उम्मीद करनी अयुक्तिसंगत नहीं। अनुमान और अनुभव करके इसकी पुष्टि का प्रयत्न करना चाहिए।

तीसरे घर में केतु यदि किसी पापग्रह के साथ वा अकेला बैठे तो कर्ण विकार उत्पन्न करता है। बहुधा कान के भीतर दीर्घकालव्यापी घाव (व्रण) इत्यादि पैदा करता है। कान वा कनपटी के आस-पास गिर कर चोट खाने का चिह्न प्रकट करता है। बाँहों में से किसी में क्षत के चिह्न हो जाते हैं। छाती में दर्द के लक्षण का वा वहाँ की हड्डी इत्यादि के टूटने, दबने या अन्य प्रकार विकृत होने का भय भी रहता है।

सबसे विचित्र बात पापग्रह समेत केतु के तीसरे घर में बैठने की यह देखी जाती है कि पत्नी (जातक की) या तो किसी स्त्रीरोग से कुक्षि में पीड़ित होती वा बन्ध्या या अल्पायु होती है। एक से अधिक भार्यायों का योग होता वा दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं होने पाता।

शुभग्रह के साथ बैठा उच्चस्थ केतु यहाँ संसार में मनुष्य को बड़ा ऊपर उठा ले जाता है। उसके पराक्रम का ठिकाना नहीं रहता और कोई प्रतिद्वन्द्वी उसके सामने ठहर नहीं पाता। उन्नति आदि की सीमा राशि (आक्रान्त) और ग्रहयुति पर निर्भर करती है। शुक्र के साथ सबसे अधिक अच्छा सफल, गुरु के साथ उससे कम पर अन्त में हार खानेवाला और बुध के साथ मनुष्य दब्बू स्वभाव के साथ उन्नति करता है। देखें चित्रांक २६।

यदि किसी पापग्रह के साथ या अकेला ही ४ थे केतु पड़े तो माता का अल्प वयस में नाश करता है। छाती को संकीर्ण कर वक्षस्थल को निचले भाग में दबा देता है। छाती में चोट या शल्य चिह्न कर देता है।

पंचम भाव का अशुभ केतु सन्तान को विशेष अनिष्टकर होता है। पर उससे अधिक अनिष्टकर वह अपने पेट में, यकृत में या प्लीहे में विकृति उत्पन्न करने में होता है।

माताओं की कुण्डलियों का चतुर्थ केतु दूध सुखाता और पाँचवें कुक्षिरोग और बाँझपना पैदा करता है। गर्भाधान के बाद शरीर कष्ट और प्रसवकाल में प्राणघातक भी सिद्ध होता है। कमर में कोई-न-कोई विकार ला ही छोड़ता है। शुभग्रह सम्बन्ध से अति सुन्दर, पापों के साथ अति अशुभकर होता है।

६ठा केतु अत्यन्त सुखदाई होता पर शुभों के साथ ग्रहराशि स्वभावजनित रोग और झंझटें उपस्थित करता है।

७वें केतु मनुष्य को दाम्पत्य सुख से वंचित, गुप्तेन्द्रिय रोगी, स्त्रीकष्टी, बनाता और वन्ध्या पत्नी देता है। अनेक कुण्डलियों में यह स्थिति स्त्री को हिस्टीरिया रोग का शिकार बनाती पायी जाती है। साधारण वर्ग की स्त्री को भूतबाधा भी होती-सी देखी जाती है।

अष्टमस्थ केतु मुष्कवृद्धि (अण्डकोश) करता और शल्यचिकित्सा प्रसंग उपस्थित कराकर चीरफाड़ के चिह्न दे डालता है।

१२वाँ केतु आँखों वा पैरों में विकार भी लाता है। अन्य प्रभावों का दिग्दर्शन पहले ही हो चुका हैं। पर, जैसा बराबर स्मरण दिलाया जाता रहा है, यहाँ से भी केतु लग्नस्थवत् लक्षण पैदा करता है (देखें चित्र ९२)।

●

षष्ठ प्रकरण

सूर्य

शरीर में लम्बाई लाने वाले ग्रहों में से केवल सूर्य का वर्णन शेष रह गया। यों तो सूर्य के ग्रहराज होने से इसके कारण अनेकानेक शुभाशुभ फल कुंडली में पैदा होते हैं और उनकी भिन्नता की कोटियों का वर्णन कठिन है तथापि यहाँ तो केवल आकृति में प्राप्त लक्षणों से कुंडली में उसकी स्थिति का पता पा लेना ध्येय होने से उनका उल्लेख मात्र भी अपेक्षित नहीं है। अत: उनकी ओर ध्यान न दे सीधा अपने विषय पर ही पहुँचना ठीक है।

सूर्य यदि लग्न में पड़े तो मनुष्य का डीलडौल लम्बा पर सुगठित और भव्य होता है। राहु, शनि इत्यादि ग्रहों की लम्बाई से इसकी लम्बाई में विभेद है। सबसे पहले हड्डियों की बाढ़ अच्छी और सुदृढ़ (मजबूत) होती और जोड़ें ढीली नहीं होतीं। केतु और सूर्य की बाढ़ों में बहुत कुछ समानता होने पर भी जोड़ों की उस सख्ती से और ढीलेपन के अभाव से दोनों की लम्बाई में भिन्नता आ जाती और एक का विभेद दूसरे से बिना अधिक सोचे किया जा सकता है। राहु की लम्बाई में कृशता, ढीलापन और कान्तिहीनता और शनि की लम्बाई में दाँतों और आँखों की बनावट में भिन्नता होती है। शनि की लम्बाई में पुष्टि होना आवश्यक नहीं पर सूर्य की लम्बाई में यह अनिवार्य और अवश्यंभावी है अत: जहाँ लम्बाई के साथ पुष्टि हो वहाँ वह सूर्यकृत होगी और जहाँ इसका अभाव हो वहाँ वह साधारणत: अन्य ग्रहकृत ही होगी।

पुनः लम्बाई के साथ यदि आँखें तिरछी जड़ी मिलें, उनके देखने के ढंग में तीक्ष्णता और चालाकी टपके वहाँ वह लम्बाई, चाहे और कोई लक्षण विपरीत ज्ञान पड़े तो भी शनिकृत ही होगी। सूर्य की लम्बाई के साथ आँखों की बनावट स्वाभाविक दिव्य, आकर्षक, विस्तीर्ण, प्रशस्त, लाल डोरों से सम्पन्न, भव्य और ओजपूर्ण होती हैं। इन लक्षणों से सूर्य प्रभावित मनुष्य का ऊँचा डील-डौल बिना चूक बिलगाया जा सकता है।

बहुधा सूर्य के आस-पास ही बुध और शुक्र पाये जाते हैं। अत: इनके कारण जान पड़ता है आँखों पर कोई कुप्रभाव पड़ने नहीं पाता। यदि ये बातें मन में बैठ

जाय और विचार काल में इन पर ध्यान रखा जाय तो सूर्य की ऊँचाई को अन्यों की ऊँचाई से विलग करने में विशेष अड़चन नहीं होनी चाहिए ।

सूर्य के प्रभाव में ललाट प्रशस्त उन्नत और सामने ऊपरी भाग में पीछे की ओर दबा होता है । शिर के बाल सूक्ष्म और हल्के काले, मुलायम, तुनुक सूक्ष्म रूप में भूरे ही, ललाट की दोनों कनपटियों के कोने बालों से रहित, भौंहें हल्की और छेहर तथा सारा ललाट ओजपूर्ण, आकर्षक और भव्य गोरे रंग का होता है ।

मुखड़े की आकृति गोल नहीं होती और लम्बापन लिये रहने पर भी भद्दी नहीं हो पाती । चेहरे से सौम्यता, भद्रता, चुस्ती और शिष्टता झलकती रहती वा छलकती फिरती है ।

नाक, गालों, होठों, और ठुड्ढी की बनावट चारुतापूर्ण, सुसम्बद्ध और अत्यन्त सुन्दर होती है । प्रत्येक अंग सानुपात और सुव्यवस्थित होता है ।

रंग गौर और कदाचित् ही गेहुआना होता है । पर श्यामल रंग के मनुष्य भी कई कारणों से सूर्य के लग्न में बैठे रहने पर भी पाये जाते हैं । अतः रंग बहुधा गोरे होने पर भी अव्यर्थ रूप में पाने की आशा नहीं रखनी ही अधिक युक्तिसंगत होगा ।

बाहुओं और हाथों की बाढ़ अच्छी होती, और वे बलिष्ठ होते हैं । देखते ही सामर्थ्य प्रकट होता है । उसी प्रकर जाँघों, ठेहुनों और पैरों के शेष विभागों की बाढ़ को भी समझना चाहिए ।

सबसे पक्की पहचान सूर्य के लग्नस्थ होने की यह है कि दोनों कन्धों की बाहरी छोरों से लेकर कमर की दोनों पार्श्वस्थ जोड़ों के कोनों तक शरीर स्पष्ट चौकोन वा चौपहल होता है । कभी-कभी विशेषकर किशोरावस्था में, छाती अधिक चौड़ी और अपेक्षाकृत कमर छाती इतनी चौड़ी नहीं लगती है । पर अन्तर सूक्ष्म होता है और युवावस्था प्राप्त करते छाती और कमर समान चौड़ी हो जाती है ।

सबसे प्रधान बात यह है कि पेट कहीं से निकलने नहीं पाता । वह मनुष्य बूढ़ा होते-होते भी तोंदैल (तुन्दिल) नहीं हो सकता । पर साथ-ही-साथ इसका यह अर्थ नहीं कि पेट में वा छाती में वा पीठ पर वा मांसपेशियों में पुष्टि का (मेद

का) नितान्त अभाव रहेगा। बिलकुल नहीं। पूरी पुष्टि के लिये उन अवयवों वा अंगों में जितने भी मेद की आवश्यकता होगी उतना वहाँ पाया ही जायगा। इस प्रकार से चुस्त और चौपहल देह वाले व्यक्ति की कुंडली में सूर्य अव्यर्थ रूप में लग्नस्थ पाया जायगा।

इस प्रकार का सुडौल और उन्नत शरीरवाला व्यक्ति लग्नस्थ सूर्य के प्रभाव में ही पैदा होता है।

लग्नस्थ शरीर वाला व्यक्ति बहुधा हँसमुख, प्रसन्नचेता इसलिये कदाचित होता है कि बुध भी साथ-साथ लग्न में नहीं तो व्यय वा धन स्थान (वाकस्थान) में अवश्य रहता ही है। सैकड़े १०, २० कुंडलियों में ही बुध लाभस्थ वा तृतीयस्थ होता है। अतः लग्नस्थ सूर्य वाला व्यक्ति प्रायः प्रसन्नचित्त, हँसमुख, मिष्टभाषी (मधुर वाणी विशिष्ट) और चतुर होता है। मुहर्रमी चेहरे का वह कभी नहीं होता।

इसलिए लम्बाई में जहाँ उदासीपना, चिन्ताच्छन्नता, व्यग्रता वा मुहर्रमीपना वर्त्तमान हो वहाँ सूर्य की लग्नस्थिति पाने का प्रयत्न छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार दूसरे ग्रहों की लम्बाई को सूर्य प्रदत्त लम्बाई से पृथक् किया जा सकता है। उदाहरणार्थ पाठकों को सूर्य प्रदत्त ऊँचाई का (लम्बाई का) ठीक-ठीक ज्ञान करा देने के लिये चित्रांक ३२, ३३, ५०, ६०, ६५ की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया जाता है।

चित्रांक ४७ में सूर्य के सभी लक्षण प्रस्फुटित हैं। इस चित्रगत आकृति को सूर्य कोटि की आकृतियों को खोजते समय कभी विस्मृत नहीं करना चाहिये। सूर्य और बुध दोनों लग्नस्थ है। चेहरा कितना भव्य, हंसमुख प्रसन्न, कर्मण्य और मेदहीन है तथा शरीर का डौल कैसा ऊँचा है। मेदहीनता, लम्बाई, हड्डियों की बाढ़ और गाँठों की सख्ती टपकी पड़ती है।

ललाट की बनावट, आँखों की सजावट, बाल, भौंहें, कनपटियों और गालों की हड्डियों, और दन्तपंक्ति की सजावट और बाढ़ सब सूर्य-बुध के मिश्रित निछूते प्रभावों के द्योतक हैं।

एक बात और जो अभी तक नहीं कही जा सकी है, यह है कि सूर्य के लग्नस्थ होने पर भी आगेवाले उपरले सामने के दाँत बड़े-बड़े और निकले हुए होते हैं।

ऊपरवाले सामने के दाँत लम्बे, मोटे, ताजे आगे की ओर सामने तिरछा निकले होते हैं। इस सम्बन्ध में सूर्य और शनि दोनों पिता-पुत्र के प्रभावों में समान ही फल होता है। कहा नहीं जा सकता कि दोनों के प्रभावों में ठीक-ठीक क्या अन्तर है। पर थोड़े में इतना कहा जा सकता है कि सूर्य के प्रभाव में दन्तपंक्ति बिगड़ने नहीं पाती पर शनि राहु और केतु के प्रभाव में वह अवश्य विद्रूप हो जाती है। शनि, राहु और केतु के लग्न में पड़ने से हँसमुखी चेहरे का अभाव ही दोनों कोटि के ग्रहों के प्रभावों को विलग करने में यथेष्ट सहायक होगा।

चित्रांक ६५ को भी जरा गौर से देखा जाय। जहाँ दो बातें अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रकटित हुई हैं। पहले तो यह कि शरीर डील-डौल वाला है और दूसरी यह कि वह (शरीर) चौपहल है। चतुरस्र शब्द ठीक इसी प्रकार के शरीर के लिये आचार्यों ने प्रयुक्त किया है। आप देखेंगे कि इन सज्जन का शरीर गर्दन से कमर तक पूरा चौपहल, चौकोर और मेदरहित है। अस्थिपंजर की बाढ़, शिर और भौंहों के बाल, तगड़ा और सर्वांग सुगठित शरीर के साथ लम्बाई, सब के सब सूर्य के द्योतक हैं।

इनकी दन्तपंक्ति का पता आप फोटो में नहीं पावेंगे पर बातें करते समय इसके लक्षण स्पष्ट प्रकट दिखलाई पड़ते हैं।

राहु-सूर्य युति दाँतों का उपरोक्त विचित्र फल और भी अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट करती है।

शनि-सूर्य की उपस्थिति में लम्बाई (ऊँचाई) के साथ-साथ पुष्टि भी होती है।

केतु-सूर्य के लग्नस्थ होने पर दाँतों की उपरली पंक्ति विशेष विरल, दाँत बहुत अधिक लम्बे, निकले और अन्तर्मुखी होते हैं।

सूर्य-बुध की युति में चेहरा हँसमुख और दन्तपंक्ति आगे को तिरछी बाहर की ओर निकलनेवाली होती है। मनुष्य हँसकर बातें करता और उसकी बातें चातुर्य भरी होती हैं। शरीरयष्टि सूर्य प्रभावित लम्बी होती और बुध कृत सोने-सी चमकती और सदा स्वस्थ रहती है।

सूर्य-मंगल युति लग्नगत हो तो शरीर सुगठित और मनुष्य आखेटप्रिय होता है।

सूर्य-चन्द्र युति दन्तपंक्ति पर प्रभाव तो डालती है पर अन्य विलक्षणता कोई देखने में नहीं आती।

सूर्य-गुरु एकत्र लग्नस्थ हो तो लम्बाई कम पर शरीर सुगठित, दुहरा और शक्तिशाली होता है। तोन्द निकलने का झुकाव ४० की अवस्था के बाद अधिक स्पष्ट हो जाता है। जातक को हृद्रोगाक्रान्त होने का भय रहता है।

सूर्य-शुक्र युति में शरीरयष्टि की तुंगता के साथ-साथ त्वचा श्यामली हो जाती है। आँखें दोनों बड़ी-बड़ी चमकीली और लोचदार होती हैं। यदि त्वचा साधारणत: गोरी जान पड़े तो उसके होठों के देखते गोरे या श्मामले का पता चल जायगा। होठों में श्यामता बनी रहती है।

जो फल लग्नस्थ सूर्य के कहे गये हैं वे ही ग्रहों की चन्द्रयुति में भी प्राप्त होते हैं। सूर्य मंगल दूसरे, ४थे, ६ठे, ५वें या ७वें बैठे हो तो मनुष्य शिकारी और आखेट-प्रिय होता है। वह अपने इस कार्य में बड़ा दक्ष और अचूक लक्ष्यवेधक होता है। देखें चित्रांक ९। इनके लग्न से ४थे सू० मं० की युति है। वे अपने जमाने के महान् शिकारियों में थे। साहस, शिकारी मामलों की पूरी जानकारी और अचूक गोली मारनेवालों में अग्रगण्य थे। ७२ वर्षों की आयु में आप रोहतास की अगम्य खोहों में बाघ का शिकार करते ससय Cerebral Malaria से आक्रान्त हो दिवंगत हो गये। और भी देखें चित्रांक १२, ये आखेटप्रिय व्यक्ति हैं सफल शिकारी और निशानेबाज।

सूर्य-मंगल युति २रे, ४थे, ५वें, ६ठे या १२वें पड़े तो मनुष्य बाघ के मुख में पड़ता, गोलियों का शिकार होता और प्राय: मोटर दुर्घटनाग्रस्त होता है। देखें चित्रांक ९ ये बाघों के झपट्टे खाये हुए सज्जन हैं और साहसी, अचूक निशानेबाज और अनेकों बाघ मारनेवाले। ये बाघ के झपट्टे का मुकाबिला करते अपने प्रिय बाल साथी को खोकर निकल बचे।

सूर्य-शनि एकत्र हों तो शरीर कृश पर जातक स्वस्थ ही होता है। लग्न के आसपास हो तो दन्तुल और यदि ४थे, ८वें, १२वें पापदृष्टि पड़े तो वह व्यक्ति काल-क्रम में यक्ष्माग्रस्त हो जाता है।

कुंडली में दूसरा और १२वाँ घर लग्न की दोनों ओर सटे हुए होते हैं और भावों की स्पष्टि करने पर अनेक बार इनमें पड़ा ग्रह लग्न में आ जाता है। तात्पर्य कि ये दोनों भाव (२·१२) लग्न से इस प्रकार संलग्न होते हैं कि एक के प्रभावों की छाप दूसरे में झलकने लगती है। कदाचित् इसीलिये २रे और १२वें पड़ा सूर्य और उसके सहचारी ग्रह प्राय: वे ही फल प्रकट करते देखे जाते हैं जो उनके लग्नस्थ होने का विगत पृष्ठों में वर्णित है। कुंडली के अंग विभाजन में भी २रे, १ले और

१२वें भावों के बीच ही शिर के विभिन्न अवयवों की स्थापना की जाती है, जैसे मुख, वाक्शक्ति, आँखें, दंतपंक्ति, जिह्वा, कण्ठ, गाल, नासारन्ध्र, बाल, कान आदि जो सर्व-विदित है। लग्नस्थ ग्रह भी इन्हीं अंगों को प्रभावित करते हैं। दूसरे और १२वें पड़े ग्रहों का तो इन में से उन-उन घरों के प्रभावक्षेत्रों में आनेवाले अंगों का प्रभावित करना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि इन दोनों (२,१२) घरों में पड़े सूर्य और उसके सहचारी ग्रह तथा अन्यान्य सभी ग्रह प्रायः वही फल प्रकट करते हैं जो लग्नस्थ होकर करते। इसलिये सूर्य और उसके सहचारी ग्रह २रे, या १२वें बैठकर भी यदि लग्नस्थवत् प्रभाव पैदा करते देखे जा रहे हैं तो कोई आश्चर्य का विषय नहीं।

जैसा पहले कई बार उल्लेख किया जा चुका है, चन्द्रमा के साथ बैठने पर भी अर्थात् चन्द्र लग्नस्थ होकर भी ग्रह वे ही फल प्रकट करते हैं जो वे लग्नस्थ होकर (बल्कि कभी-कभी लग्न से भी स्पष्टतर) प्रकट करते। सूर्य का भी वही हाल है। लग्नस्थ सूर्य और उसके सहचारियों के जो फल ऊपर वर्णित हैं उन्हें चन्द्र लग्नस्थ सूर्यादि ग्रहों के भी समझने चाहिए।

●

सप्तम प्रकरण

मंगल

आकृति में मंगल की पहचान के अनेक चिह्न पाये जाते हैं और इनमें कुछ अचूक (अव्यर्थ) लक्षण हैं जिनके सहारे मंगल का लग्नस्थ होना बिना किसी चूक के बतलाया जा सकता है। वस्तुतः लेखक का प्रथम अचूक अनुमान लग्नस्थ मंगलवाले सज्जन की कुंडली से प्रारम्भ होता है। सन् १९३५ की जून में सम्बद्ध सज्जन ने ज्यों ही लेखक से आकर अपनी कुंडली पर विचार करने का अनुरोध किया कि त्यों ही, उनकी दृष्टि इनकी मुखाकृति में विराजमान मंगल के लक्षणों की ओर गई जिन्हें देखते ही उन्होंने मंगल का लग्नस्थ होना निश्चित किया और कुंडली खोलने के पहले ही उनसे अपने विचार प्रकट कर दिये। कहना नहीं होगा कि कुंडली खोलते ही दोनों के आश्चर्य का ठिकाना देखते ही न रहा कि सचमुच सिंहस्थ मंगल लग्न में है। इस प्रसंग का पूरा विवरण लेखक के "ज्योतिष साधना के कुछ संस्मरण" नामक पुस्तक में मिलेगा। आकृति, लग्न और ग्रहों की पहचान का लेखक का यह श्री गणेश था। अतः यहाँ कथ्य इतना ही है कि मंगल भी अन्यान्य ग्रहों की नाईं अपने अचूक लक्षण प्रकट करने में किसी अन्य ग्रह से कम नहीं है।

मंगल के लग्नस्थ होने का सर्वप्रथम लक्षण शरीर का ठोस गठन है। देखें चित्रांक ६१, १३, ४१। व्यक्ति की प्रत्येक गाँठ से सख्ती और शक्ति का परिचय मिलता और व्यक्तित्व भीतर से उल्लासपूर्ण और निर्भीक होता है। पर स्वयमेव ये लक्षण इसकी पहचान के अचूक लक्षणों में नहीं हैं।

जिसके लग्न में मंगल होता है वह व्यक्ति कभी वृद्ध या प्रौढ़-सा नहीं लगता। अधिक उम्र के लोगों के भी चेहरों पर पुरुषत्व के चिह्न विराजमान रहते हैं। वह कभी अपने को बूढ़ों में नहीं गिनता चाहे वह ६० वर्षों से भी अधिक अवस्था का क्यों न हो। उसका शरीर बड़ा कर्मठ होता है। किन्तु यह लक्षण भी अकेला लग्नस्थ मंगल के अव्यर्थ लक्षणों में नहीं है। केवल सहचारी लक्षण मात्र है।

लग्नस्थ मंगल मुखाकृति को चारो ओर से (लम्बाई-चौड़ाई में) चौपहल-सा बनाते हुए गोल बनाने का झुकाव पैदा करता है। रंग गेहुआना और किसी-किसी व्यक्ति में अत्यन्न ही गौर देता है। शिर के बाल छरहरे, भूरे रंग, के कोमल

और सूक्ष्म (महीन—बारीक) होते हैं। मोटे, रुखड़े, काले और पुष्ट बालों का अभाव होता है। ऐसे बाल मंगल के नहीं होते और संदिग्ध निर्णयों में निश्चित निर्णय लेने में बड़े सहायक होते हैं। अतः आप जहाँ भौहें घनी और मोटे काले बालों वाले पावें वहाँ मंगल के होने की सम्भावना को मस्तिष्क से तुरत हटा देना चाहिए। आँखें कभी-कभी काली पर अधिकतर भूरी, स्वच्छ, उजले कोये रक्त डोरों से सम्पन्न और दृष्टि कठोर, पैनी और चुभनेवाली होती है। कोई इस आँख को बचा नहीं पाता। नाक न बड़ी न छोटी पर मध्यम आकार की सुडौल और चेहरे पर फबती हुई होती है।

व्यक्ति मितभाषी पर सारगर्भित बचन वाला होता है। चेहरे पर गम्भीरता तो नहीं पर सौम्यता अवश्य विराजमान रहती है। देखें चित्रांक १३, ४१, ६१

दाँतों की बाढ़ सुदृढ़ और सानुपातिक होती है। दन्तपंक्ति बड़ी सुन्दर, बल-शालिनी, कान्तिमयी और द्युतिसम्पन्न और चमकीली होती है। किन्तु स्मरण रहे कि दाँत न बाहर निकलने की प्रवृत्ति रखते और न भीतर को ही झुके होते। पुष्ट और मध्यम आकार के सजीले दाँतों की दृढ़ता सदा झलकती रहती है। राहु और शनि यदि कुछ ग्रहों के साहचर्य में दाँत बेहद बड़े और निकले और झुके हुए भी पाये जाते हैं पर अकेला मंगल के रहने पर ऐसा कभी नहीं होता।

ललाट प्रशस्त, आयताकार, कोने शिर के बालों में भीतर घुसे और बाला विहीन होते हैं। ललाट पर प्रायः त्रिबली रेखा स्पष्ट देख पड़ती है।

पर ये सभी लक्षण पहचान के सहचारी ही लक्षण हैं। इनमें से कोई अकेल अव्यर्थ नहीं। अर्थात् अन्य ग्रहों के प्रभाव में भी ऐसे लक्षण मिल जाते हैं।

लग्नस्थ मंगल के अव्यर्थ लक्षण उसके उपरले जबड़ों की हड्डियों की उभाड़ में पाये जाते हैं। आँखों के बाहरी कोनों के नीचे की हड्डी उभड़ आती है। इसके ठीक नीचे गाल पचक जाते हैं। दोनों जबड़ों के बैठ जाने पर नीचे के जबड़े की हड्डी उसके ऊपर के गाल को उपरली उभड़ी हड्डी और कानों के नीचे बैठे दोनों जबड़ों की हड्डियों से मिलकर बैठा देती है जिससे गाल पिचक जाता है या गालों में गढ़े पड़ जाते हैं। आँखों के कोटरों को बनाने वाली नीचे की हड्डी के कोनों की उभाड़ के साथ गालों का पिचकाव या दबा होना (being depressed) मंगल के लग्नस्थ होने का अचूक लक्षण है। यदि गाल पूओं की नाईं फूले नजर आवें तो लग्न में मंगल पड़ने के अनुमान को सर्वथा त्याग देना चाहिये। इस नियम का व्यवधान सैकड़े एक भी मिलना कठिन है।

लग्नस्थ मंगल चेहरे को भव्य रखते हुए भी मुहासे उपन्न कर उसे दागमय (चित्रांक १३) बना डालता है। जहाँ दाग न भी बचें तो चेहरे की त्वचा उसके कारण धुमैली-सी हो जाती है। कभी-कभी चेचक के दाग आजन्म बने रहते हैं। जहाँ न मुहासे के दाग हों और न चेचक के वहाँ प्रायः देखा जाता है कि शिर में, ललाट पर, कनपटियों में या भौहों के आसपास या उनकी जोड़ों पर ही किसी प्रकार के घाव का चिह्न अवश्य है। यह चिह्न प्रायः कटने से उत्पन्न घाव (क्षत) की निशानीस्वरूप होता है। शिर पर जो चोट लगती है उसका चिह्न भी बहुधा मंगलकृत होता है। स्मरण रहे कि केतु, राहु और शनि के लग्नस्थ प्रभावों में भी ये चिह्न प्रकट होते हैं। सब चिह्नों के बिलगाव के अपने-अपने चिह्न हैं जिन्हें अभ्यास से पहचाना और विलग किया जा सकता है। सब का अलग-अलग सूक्ष्म रूप मन में बैठ जाने पर इसको विलग-विलग कर सफलता-पूर्वक पहचाना जा सकता है।

इतना निश्चित जान लेना चाहिए कि सबके स्वरूप अपने-अपने अवश्य हैं और पहचाने जा सकते हैं यद्यपि देखने में पहले पहल वे सभी एक समान ही जान पड़ते हैं। तो भी मार्ग प्रदर्शन रूप कुछ लक्षण यहाँ व्यक्त किये जाते हैं पर वे स्वतः अव्यर्थ कदाचित ही प्रमाणित हों। वहाँ अन्य लक्षणों के साहचर्य में ये अव्यर्थ हो जाते हैं।

केतु का चिह्न सदा तिरछा होता है। एक तिरछी लकीर-सी पड़ जाती है। सीधा ललाट के मध्य में यह नहीं पाया जाता। ललाट की एक ओर दाहिने या बायें तिरछा यह मिलता है या हड्डियों के सन्धिस्थलों में पड़ता है। ललाट को यदि किसी पड़ी रेखा से ऊपर नीचे सम विभाग कर दें तो यह चिह्न प्रायः उपरले ही भाग में मिलेगा। राहु-जनित दाग भी ठीक वैसा ही तिरछा होता है पर केतु के चिह्न से पतला और रेखा रूप होता है।

केतु में वह पसरा हुआ और गहरा भी हुआ करता है पर आयताकार वह कदाचित् ही मिले। शनि का चिह्न गहरा, तिरछा, आड़ा पड़ा, और आदि, मध्य, सन्धि कहीं भी मिल सकता है। ललाट के बीच या अगल-बगल या ऊपर-नीचे कोनों में कहीं हो सकता है। मंगल के चिह्न सूक्ष्म कदाचित ही मिलते हैं। ये बहुधा रेखा न बनाकर आयत बनाने की ओर की प्रवृत्ति रखते हैं। वे टेढ़े, सीधे, बर्तुलाकार, तिरछे भी मिलते हैं पर अपने भीतर किसी भाग में गहरे घाव के स्पष्ट चिह्न छोड़ते हैं। भोथरे घावों के चिह्न मंगल के चिह्नों को अन्यों से विलग करते हैं। इन सभी ग्रहों के बतलाये अव्यर्थ चिह्नों के साथ इनको मिला कर पहचानने में बड़ी मदद मिलती है। इस प्रकार संदिग्धावस्था में इनका बड़ा महत्व हो जाता है। चेचक के दाग-मुहासों (बरें) के दागों के साथ घाव के चिह्न मिले तो वे मंगल

प्रदत्त होंगे, इत्यादि इत्यादि। मझोले कद के व्यक्ति में मंगल को छोड़ अन्य ग्रह-कृत चिह्न कदाचित् ही मिले। दुबले-पतले लम्बे व्यक्ति के ललाट आदि में ये चिह्न मंगलकृत नहीं ही होते। उसी प्रकार मोटे-ताजे साधारण ऊँचाई के व्यक्ति में ये कदाचित ही शनि, राहु, या केतु कृत हों। शरीर नसों की उभाड़ वाला, आँखों के गहरे कोटरों वाला, छोटी धँसी आँखों वाले शरीर में इन चिह्नों को मंगलकृत पाने की आशा नहीं करनी चाहिए।

जब नाक के ठीक मध्य भाग के पार्श्वों वाली आँखों के बीच की हड्डी उभड़ी मिले, गाल धँसे मिलें, आँखों के कोटर गहरे पर आँखें बड़ी रोबीली और लाल डोरों से समाच्छन्न मिलें और साथ शिर के ललाट आदि में घाव के चिह्न भी मिले तो ये चिह्न मंगलकृत ही होंगे ऐसा निश्चित रूप से कह सकते हैं।

जिनकी उम्र २० से कम हो उनमें ये चिह्न कठिनाई से पहचाने जाते हैं क्यों कि अवस्था की कमी के कारण चिह्न अभी पूरे और ठीक उभड़ नहीं पाते, केवल उनकी झलक मात्र होती है जिन्हें एक सधा या अभ्यस्त व्यक्ति की आँख ही भाँप सकती है। उसी प्रकार जिनकी अवस्था ४० वर्षों से अधिक की होती है उनमें भी ये चिह्न सूक्ष्मता से ही पहचाने जाते हैं क्योंकि तब ये चिह्न गुरु, शनि या चन्द्र के लक्षणों में समाहित से रहते हैं। गुरु के चिह्न ३६ की अवस्था से पूर्ण विकसित मिलते और शनि राहु और केतु के चिह्न ५० से ७२ वर्षों के बाद विकास प्राप्त करना प्रारम्भ करते हैं। अतः मंगल के कुछ प्रभाव गुरु के प्रभावों में और कुछ आगे चलकर शनि, राहु आदि के प्रभावों में विलीन होने लगते हैं। तब यह विलगाना कठिन होने लगता है कि कौन मंगल और कौन गुरु, शनि, राहु या केतु के प्रभाव क्षेत्रीय चिह्न हैं। तौ भी सधी, कुशल और अभ्यस्त दृष्टि उन्हें उन अवस्थाओं में भी विलग कर लेना सम्भव पा ही लेती है।

लग्नस्थ मंगल व्यक्ति को प्रायः जिद्दी बनाने की ओर का झुकाव रखता है। तौ भी उसके निर्णय तर्क पर आधृत और निर्भर करते हैं जिन्हें वह अडिग रखने का प्रयास करता है। अपने मत को वह निर्भीकता और सच्चाई से व्यक्त करता और दूसरों का मत वह तभी ग्रहण करता जब वे तर्क उसे ग्रहण करने को बाध्य कर देते हैं। पर एक बार अपनाने पर फिर उससे उसे कोई डिगा या विचलित नहीं कर सकता।

ऊपर कहा जा चुका हैं कि यदि मनुष्य के ललाट में क्षत के या बर्रे जनित दाग आदि हों तो प्रायः मंगलप्रदत्त ही होते हैं विशेषकर ललाट की एक ओर और भौहों के ऊपर सटे हुए क्षतादि के चिह्न हों तब।

चित्रांक १३ में आपको पता चलेगा कि बर्रे के दाग किस प्रकार मंगल की लग्नस्थिति व्यक्त करते हैं।

मंगल के चिह्न और लक्षण ४० वर्षों की अवस्था के भीतर ही स्पष्ट मिलते हैं। उसके बाद वे अन्य ग्रहों के लक्षणों में विलीन से हो जाते हैं और एक कुशल द्रष्टा ही उन्हें भाँप पाता है।

उक्त फोटो में आप यह भी पावेंगे कि मुखाकृति क्योंकर गोलाकार होने की प्रवृत्ति रखती है।

मंगल के प्रभाव में दाँत सुन्दर और सुदृढ़ होते हैं। दन्तपंक्ति सुसज्जित होती है। पर यदि मंगल और राहु का संयोग हो जाय तो वा मंगल केतु एक साथ लग्न में हों तो दाँतों की बाढ़ अधिक और राहु केतु के सारे प्रभाव दाँतों और दन्त पंक्तियों में विशेष रूप से पैदा होते हैं। देखें चित्रांक ३३। केतु और मंगल के कारण इनके अगले और ऊपर के दाँत बहुत लम्बे भीतर की ओर को टेढ़े और पंक्ति अंग्रेजी के यू (U) के आकार की नाईं है। उसी प्रकार देखें चित्रांक (४९) इन दोनों में मंगल और केतु का लक्षण पूर्ण स्पष्ट नहीं है पर दन्तपंक्ति का बांकपना इनसे भलीभाँति समझकर दूसरों से मिलान किया जा सकता है।

मंगल यदि एक से अधिक अन्य पापग्रहों के साथ दूसरे स्थान में बैठे तो मुखाकृति को बेहद बिगाड़ देता है।

केतु मंगल वा केतु शनि एक साथ द्वितीयस्थ हों तो मुँह टेढ़ा हो जाता है। जन्मजात भी ऐसा होता है पर जन्म के बाद पीछे भी यह विकार कई कारणों से पैदा हो जाता है। आग से जलकर, औपरेशन (चीर-फाड़ से) से, लकवा से तथा अन्यान्य कई कारणों से ऐसा हो जाया करता है।

तृतीयस्थ मंगल अकेला भीतर से मनुष्य को बड़ा साहसी और आत्मनिर्भर बनाता है। राहु केतु के साथ हो तो कानों में विकार, भ्रातृकष्ट और स्त्री को प्रदरादि रोगों से बन्ध्यात्व की ओर ले जाता है। चित्रांक ७३।

चतुर्थ मंगल छाती की हड्डियों में संकोच पैदा करता (देखें चित्रांक ९) और राशि परत्व से सन्निपात, खाँसी वा दम्मा भी उत्पन्न करता है। ऐसे व्यक्ति को लाठी या उसी प्रकार के कुंठित शस्त्र से उस अंग में आघात लगता है।

पापग्रहों के साथ मंगल विशेषकर यदि एक से अधिक अन्य ग्रह पापी हों तो पंचम भाव में वह खतरनाक होता है। यदि दशादि आ जाय तो मनुष्य के लिये सांघातिक है। यकृत, प्लीहा, कुक्षि, और पेट में विदग्धि के लिये चीर-फाड़ कराता

है। पागल कुत्ते इत्यादि पशुओं के काटने का प्रसंग लाता। सन्तान या तो पैदा नहीं होती वा अल्पायु होती है। शनि और मंगल पंचम में बड़ी मोटी बुद्धि प्रदान करते हैं। पर सर्जन के लिए योग सुन्दर होता है।

स्मरण रहे कि मंगल किसी पाप ग्रह के साथ जहाँ कहीं बैठेगा वहाँ के अंग में क्षतादि का चिह्न पैदा कर ही देगा वा किसी अन्य प्रकार से वह उस अंग को विकृत करेगा ही।

साधारणतः हड्डी को तोड़नेवाला यह ग्रह समझा जाता है। यह अंग भंग करने वाला भी समझा जाता है। अनुभव में पाया गया है कि हड्डियों का तोड़ना इसके लिए बहुत आवश्यक नहीं पर वह अंग भंग नहीं तो अंग विकार अवश्य पैदा करता है।

अष्टम स्थान का मंगल पाप ग्रहों के साथ हो और इस योग के केन्द्र में पापग्रह पड़े तो गुप्तेन्द्रिय में विकार पैदा करके चीर-फाड़ अवश्य कराता है। बवासीर, अंडवृद्धि आदि के लिए चीर-फाड़ और गले, आँखों और पैरों में भी चीर-फाड़ कराता है।

यदि कोई मनुष्य कान, गले में क्षतवाला, पैरों का चिर रोगी, पैर व्रणयुक्त मिले वा पैर जिसके कट गये हों वा काटने पड़ गये हों तो बहुधा अनुमान करना चाहिए कि षष्ठ या अष्टम भावों में से किसी में दो या दो से अधिक पापग्रह मंगल के साथ बैठे हैं या मंगल से दृष्ट हैं। (१९६७) के ग्रीष्म काल में लेखक गढ़वा रोड स्टेशन पर एक होटल में चाय पी रहा था कि बाबू यमुना प्रसाद जी, होटल के स्वामी और लेखक के परिचित सज्जन ने बातों-बातों में ही यह शिकायत की कि क्या कहूँ हमारे नवयुवक और होनहार पुत्र का पैर अस्पताल में कटवाना और बम्बई में कृत्रिम पैर लगवाना पड़ा। मैंने कितने ज्योतिषियों से रुग्णावस्था में उसका जन्मपत्र दिखलाया पर किसी ने यह नहीं कहा कि पैर काटना पड़ेगा। लेखक को कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ और उसने कहा कि पैर जब कट गया तो योग कैसे नहीं होगा। आप उनकी कुंडली लाइये तो दिखला दिया जायगा कि लग्न से छठें घर में दो या दो से अधिक पापग्रहों के साथ मंगल अवश्य बैठा होगा। उन्होंने झट घर के भीतर जाकर कुण्डली लाई और सामने रख दिया। कुंडली जो खोली गई तो देखा गया कि छठे घर में मंगल के साथ दो और पापग्रह वर्तमान हैं। यमुना बाबू के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

यदि चंद्रमा के साथ दो या दो से अधिक पापग्रह ९वें घर में पड़ें तो मनुष्य को परले सिरे का धूर्त और बेईमान बनाते हैं। उसकी बुद्धि दूसरों को धोखा देने की प्रवीणता में अपनी सानी नहीं रखती।

स्पष्ट कारणवश फोटो तो नहीं पर ऐसी एक कुण्डली दी जा रही है जो इस प्रकार है—लग्न मिथुन तीसरे घर में, राहु पाँचवें घर में, मंगल नौवें में श० च० के तथा ग्यारहवें घर में बु० वृ० शु० तथा बारहवें घर में सूर्य है। देखें चित्रांक ६५। नवें और ग्यारहवें भावों में क्रमशः ३ पाप और ३ शुभ ग्रहों के योग पर और तारतम्य पर ध्यान दें। यह व्यक्ति जितना बड़ा बुद्धिमान उतना ही बड़ा कार्यदक्ष भी है। तो भी न्यायालय से सख्त कारागार की सजा पा गया।

दशम भाव में मंगल पापग्रहों के साथ भी उतना अनिष्टकारी नहीं होता। अनेक कुण्डलियों में दशमस्थ मंगल उसके जातक का बहुत ही गोरा रंग (वर्ण) बना डालता है। यह फल अभी परीक्ष्यमान ही है पर अनेक संदिग्ध अवसरों पर निर्णायक पाया गया है। पीठ पर कभी-कभी Cancer वा Carbuncle या अन्य प्रकार के फोड़े पैदा कर चीर-फाड़ करा डालता है। पर ये सभी लक्षण सहायक मात्र हैं अचूक नहीं। दशमस्थ मंगल का बाहरी चिह्न वक्षस्थल का दबना है: यह भी अचूक नहीं।

लगनस्थ मंगल मनुष्य को अदम्य साहसी, पराक्रमी और कर्मठ बनाता है। प्रायः सुन्दर फल लाता पर कई पापों के साथ स्त्री को रोगी और अल्पायु बनाता तथा अपने गोपनीय अंगों में विकार लाता और कष्ट देता है। मनुष्य स्वयं असंयमी भी होता है।

मंगल अकेला व्यय में मनुष्य को द्विपत्नीक बनाता है। यदि कई पापों के साथ पड़े तो दाँतों में भयानक विकृति, पैरों से लंगड़ा आदि, शिर में एक ओर चोट के दाग और मुँह में मुहासे उत्पन्न कर उनके दाग छोड़ जाता है। ऐसा व्यक्ति बहुधा षड्यन्त्रों का शिकार हो प्राण गवाता, संकट मोल लेता वा जेल यात्रा करता है। कई पत्नियों की मृत्यु का कष्ट भोगता है। मंगल-गुरु, मंगल-चन्द्र, मंगल-बुध और मंगल-शुक्र की युति प्रायः सुन्दर फल प्रदान करती है।

यदि कद नाटा, तुन्दिल और आवाज भारी पर गले से निकलते समय गले में घिसती-सी, बेजान की कोमल और हल्की लगे साथ ही मनुष्य परिश्रमी, संयमी, विद्वान, प्रतिभाशाली, योग्य और सबके ध्यान का आकर्षक हो तो मंगल-गुरु वा चन्द्र-गुरु युति लग्न में अवश्य होगा। यदि मुखाकृति पूर्ण रूप से ग्रीक हो और कहीं से न खटके तो युति चन्द्र-गुरु की और यदि कहीं से वह जरा भी भोंड़ी वा खटकनेवाली हो तो युति मंगल-गुरु की निःसन्देह है। देखें चित्रांक १५। यहाँ आकृति स्पष्ट थोड़ी भोंड़ी है और मंगल-गुरु की युति लग्नस्थ उसका प्रतीक है।

लग्न में बुध के पड़ने के प्रभावों का पूरा विवरण आगे बुध के प्रकरण में मिलेगा। उसका वहाँ ध्यानपूर्वक अध्ययन कर यहाँ उसकी मंगल से युति होने पर उसमें

विभेद क्या पड़ जाता है उसे हृदयंगम करने का प्रयास अधिक सफल रहेगा। बुध के सारे प्रभावों का यहाँ पूरा वर्णन अनपेक्षित होने से मोटे तौर पर आवश्यक लक्षणों का मात्र संक्षिप्त निदर्शन पर्याप्त होगा।

बुध अकेला लग्न या चन्द्र लग्न में पड़े तो शरीर तगड़ा और कसरती तो देता पर शरीर के भिन्न-भिन्न सभी अवयवों में वर्तुलत्व ला मेंद का सर्वथा अभाव नहीं करता। वर्तुलत्व बुध की विशेषता है। जब कसरती तगड़े शरीर में वर्तुलत्व और मेद का नितान्त अभाव मिले तो लग्नगत मंगल और बुध दोनों हैं ऐसा अनुमान युक्तिसंगत होगा और यदि मुखड़ा लग्नगत मंगल का जान पड़े तो लग्न में मंगल और बुध अवश्य होगा। देखें चित्र १२।

शरीर लम्बा, मेदहीन, पुष्ट, सुडौल और सुन्दर है। मुखाकृति को ध्यान से देखने पर बतलाये हुए कई लक्षणों के चिह्न इनमें मिलेंगे। बोलते समय ये चिह्न विशेष रूप से प्रकट होते हैं।

राहु और केतु की यह प्रकृति है कि वे जहाँ और जिसके साथ रहें उसके तद्रूप हों उसी के ऐसा वे फल देते हैं। इस हिसाब से चित्रांक १७ का अध्ययन उपयुक्त होगा। लग्न में केतु और सप्तमस्थ राहु-बुध युति है। लग्नस्थ केतु के लक्षणों का पूरा वर्णन केतु के प्रकरण में आ चुका है। उससे उसके यहाँ वर्तमान लक्षणों को मिला कर देख लें। पुनरूक्ति उसकी यहाँ अनपेक्षित है। मेषस्थ केतु मंगलवत् फल देगा। अत: एक प्रकार से लग्नस्थ मंगल पर बुध की दृष्टि हुई और फल लग्नस्थ मंगल-बुधवत् होना चाहिए। आपकी शारीरिक शक्ति, व्यायाम साधना और कला आदि के विषय में विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उन्हें तो चित्र ही चित्रित कर रहा है। आप बिहार राज्य के व्यायाम संचालक और प्रधानाध्यापक तो रहे ही हैं, इस विद्या की शिक्षा इन्होंने दो वर्षों तक अमेरिका में भी पाई है। आप मिष्टभाषी, चतुर वक्ता, अपने काम के सदा अग्रणी रहे हैं (बु० + के०)। आपने अमेरिका में अनेक सम्मान पदक आदि तो पाये ही विद्याध्ययन के साथ-साथ प्रचुर धनार्जन भी किया। इसमें इनकी अमोघ वाचाशक्ति प्रधान साधन रही।

कहने का तात्पर्य यह कि मंगल, बुध और केतु शारीरिक विकास में पर्याप्त हाथ रखते हैं और अपनी-अपनी प्रकृति तुल्य उसका विकास करते हैं। बुध खिलाड़ियों

और कुश्तीबाजों में स्फूर्ति और हस्तकला कौशल (दाँव-पेंच) का कारक वा प्रतीक है तो केतु डील-डौल और ढाँचे का तथा मंगल शक्ति और साहस तथा प्रचार (Challenge) का। अतः जहाँ कहीं आप शारीरिक विकास में ऐसी विशेषताएँ उपस्थित पावें वहाँ इन तीनों में से ही किन्हीं का प्रभाव समझें और उनके अलग-अलग लक्षणों से मिला कर इनकी स्थिति का अनुमान करें। पहली भेंट में ही इनकी आकृति से इनके लग्न पर केतु और बुध का प्रभाव स्पष्ट बतला दिया गया था। इसमें और लक्षणों के साथ में इनकी वाचाशक्ति और इनके मूँछें रखने का ढंग और शिर तथा भौहों के बाल निर्णायक थे।

शनि, राहु और केतु तीनों का प्रभाव शिर, भौहें, मूँछ और दाढ़ी के बालों और उनके रखने के ढँग पर बड़ा विचित्र पड़ता है। इसका यथेष्ट वर्णन प्रसंगवश होता आया ही है और आगे भी होगा ही। यहाँ आपका ध्यान चित्रांक १७ की मूँछों और उनके सघन काले शिर और भौहों के बालों की ओर आकर्षित करते हुए कह देना है कि इसका लेस मात्र भी नहीं है। वहाँ मूँछें सफाचट और शिर आदि के बाल बिलकुल साधारण-सा है। अतः वहाँ केतु का संदेह पैदा नहीं हो सकता। यहाँ प्रश्न स्वभावतः यह उठ सकता है कि शनि तो सप्तमस्थ था ही फिर बाल आदि पर उसका प्रभाव क्यों नहीं हुआ? उत्तर में इसी ग्रन्थ के प्रथम प्रकरण में चेतावनी-स्वरूप कही कुछ बातों की ओर पाठकों का ध्यानाकर्षण किया जाता है जिनसे इस भ्रम का तत्काल निराकरण होता है। इस अध्ययन में हमारा ध्येय यह जानना नहीं कि ग्रह कहाँ बैठ कर क्या करता है बल्कि यह कि उसके किये हुए कार्यों को (अर्थात् तद्द्वारा प्रस्फोटित लक्षणों को) पकड़ पा कर उसकी स्थिति जन्मकालीन आकाश में कैसे पकड़ी जा सकती है। लक्षण मिल जाने पर ग्रहस्थिति निश्चय मिलेगी पर ग्रहस्थिति से लक्षण पकड़ना निश्चित नहीं। नियम ठीक पर उसका उल्टा नहीं।

चन्द्र लग्न में भी मंगल को उन्हीं लक्षणों से पकड़ा जा सकता है जिनसे उसकी लग्नस्थिति पकड़ी जाती है। पर कभी-कभी कुछ ऐसे भी लक्षण प्रकाश में आ जाते जो मंगल को चन्द्र लग्न में अचूक प्रकट कर देते हैं। मंगल की लग्नस्थिति के अन्य लक्षणों के साथ यदि चेहरे पर विशेष कान्ति और आकर्षण विराजमान हो, वर्ण गौर हो, मुखड़े पर रक्त त्वचा के भीतर से फूटता पड़ता हो और अवस्था के अनुसार शरीर या मुखड़े में प्रौढ़ता के (बुढ़ापे के) चिह्न न उगे हों तो समझना चाहिए कि मंगल के साथ चन्द्रमा भी है।

यदि लग्न में मंगल के होने के अचूक लक्षण वर्तमान हों और कुछ सहचारी लक्षण भी मिले पर वर्ण में फर्क होकर श्यामल लगे जो मंगल का वर्ण नहीं या गोरे

शरीर के रंग पर ओठ में श्यामता का आभास ऐसा हो कि वह मुखड़े के गोरे रंग में मिल विलीन न होकर अपना अलग रंग रखे तो मंगल के साथ लग्न में शुक्र अवश्य होगा। इसके साथ व्यक्ति में शौकीनी के भी लक्षण हों, वेश-विन्यास की रुचि प्रकट हो, सलोने चेहरे की पेशानी पर एक प्रकार की कान्ति झलकें, हँसते चेहरे से मनुष्य बातें करे, और वह साधारणतः प्रसन्नचेता हो तो लग्न में मंगल के साथ शुक्र अवश्य होगा।

इस योग के अन्य सहचारी लक्षणों में (१) साधारणतः शरीर पञ्जर के एक-हरे काठ का होना (विरला ही इस योग का मनुष्य मोटा हो) (२) लम्बाई का अच्छा ही होना और (३) आँखों का सुन्दर, विशाल और बड़ी आजपूर्ण होना आते हैं। मनुष्य कलाप्रिय, शुद्ध हृदय, प्रेमी, संगीतज्ञ, मिलनसार, और सभाप्रवीण होता है।

यदि आँखें अत्यन्त विशाल और बड़ी सुन्दर तथा आकर्षक पर मदिर हों और उनमें कीमती विलायती शराबों के पीने के लक्षण प्रकट हों तो शुक्र और मंगल दोनों दूसरे घर में प्रायः बैठे पाये जावेंगे।

यदि मनुष्य स्त्री-कष्टी या दाम्पत्य जीवन में असफल हो और उसकी पत्नी प्रायः रुग्ण रहा करती हो तो कुण्डली में मंगल ३रे, ७वें, ११वें या १२वें घर में शुक्र के साथ प्रायः पाया जायगा।

कमर या कुक्षि में, यकृत, प्लीहा, आदि अंगों में विकार हुआ हो, चीर-फाड़ हुई हो, पथरी की बीमारी और उससे चीर-फाड़ आदि होकर यदि कमर में व्रण के चिह्न रह गये हों तो पंचम भाव में मंगल और शुक्र युति पाने की आशा की जा सकती है। यद्यपि अन्य ग्रहों के भी ऐसे ही लक्षणों से मंगल-शुक्र युति के प्रभावों को पृथक कर सकने के निश्चित लक्षण अभी प्राप्त नहीं किये जा सके हैं।

यदि किसी महिला को प्रसब काल में भारी कष्ट होता पाया जाय या चीर-फाड़ की आवश्यकता पड़ जाती हो या पता चले कि जच्चे और बच्चे के जीवन पर संकट उपस्थित हुए या होते हैं तो ऐसे व्यक्ति की कुण्डली में मंगल और शुक्र पंचम भाव में पाये जायेंगे। अनुसंधान अभी पूर्ण नहीं और सुनहले लक्षण अभी अन्वेष्टव्य हैं।

मूत्र कृच्छ्र, प्रमेह, मुष्क वृद्धि, ऊँकवत, आदि रोगों के रोगियों की कुण्डली में मंगल-शुक्र युति छठे घर में अनुमानित की जा सकती हैं पर ये सहचारी लक्षण हैं अचूक नहीं।

छठे शुक्र मंगल के साथ पैर की हड्डी तोड़ने का भी प्रसंग उपस्थित करता है।

यदि व्यक्ति वेशभूषा में बड़ी रुचिवाला और अपने शरीर को बाहर से हर प्रकार सुन्दर प्रकट करने की चेष्टा में लवलीन पाया जाय और वह मुष्क वृद्धि, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, या अन्य शुक्र दोष से पीड़ित पाया जाय तो प्रायः मंगल और शुक्र सप्तम भाव में पाया जायगा। यदि शरीर का रंग साथ ही श्यामल हो तो अनुमान कदाचित ही विचलित हो। सप्तम में मंगल शुक्र मनुष्य को स्त्रीकष्टी बनाता है। यही फल ८वें में इस योग का है। जहाँ कहीं भी यह योग कुण्डली में पड़े तो मनुष्य को शय्यासुख अवश्य देता है। ७वें और ८वें में इस योग का फल संक्षिप्त रूप में कहना हो तो कह सकते हैं कि इन दोनों स्थानों में इस योग वाला व्यक्ति राजभोग मांगता है। साउथ आर्काट जिले के बालवानूर के प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री टी० वेंकटेश्वर अय्यर इस योग को "Princely Pleasure contination" और "बालगोपाल" योग ठीक ही कहा करते थे।

इस योग की आकृति के चिह्नों को आँखों में ही ढूंढ़ने का अवसर सफल पाया जाता है। यदि अन्य कोई कारण विपरीत न हो तो आँखें अवश्य विशाल, सतेज और सजीव, चंचल और आर्द्र मिलती हैं। इनकी और इनकी भौंहों के गठन का ढंग बाँकदार होता है कि मनुष्य उनकी ओर आकर्षित हुए बिना रहता नहीं। इस योग में कंठमाला (Dyptheria), जिह्वा-विकृति, धनुष्टङ्कार (Paralysis विशेषकर मुख में) आदि रोगों का शिकार मनुष्य देखा जाता है। इनके चिह्न इसीलिए कन्धे से ऊपर के अंगों में पाने की आशा करनी चाहिए।

८वें भाव शुभ क्षेत्रगत यह योग उतना अनिष्टकर नहीं सिद्ध होता। पर पाप क्षेत्र में यह पूरा प्रतिफलित पाया जाता है।

पीठ में विदधि, रीढ़ में चीर-फाड़, पेट में चीर-फाड़ इत्यादि के चिह्न मिलें तो बहुधा शुक्र मंगल दशमस्थ पाये जायेंगे।

तीसरे और ग्यारहवें यह योग स्त्रीसुख से वंचित कराने वाला होता है।
१२वें मंगल शुक्र आँखों को विशाल बनाता है।

शनि मंगल युति लग्न में शरीर की लम्बाई को घटाती और साधारण बनाने की ओर का झुकाव रखती है। चेहरा पतला और शुष्क बनाती पर हड्डियों को ठोस और चेहरे पर मांस और मेद का उतना अभाव नहीं होने देती जितना शनि अकेला करता है। अतः जहाँ शनि के अव्यर्थ चिह्नों में से कोई मिल जाय और साथ ही लम्बाई और मुखाकृति उपरोक्तवत हो तो वहाँ शनि के साथ मंगल की युति का अनुमान खरा निकलेगा।

दाँत मजबूत और पूर्ण बाढ़ में पाये जाते पर निकलते नहीं। मुँह में मुहासे और बर्रे के चिह्न और गालों में गढ़े पाये जाते हैं। अतः ये शनि मंगल की युति के लग्नस्थ होने के द्योतक हैं।

कानों में विकार, घाव के चिह्न, आदि हों तो शनि मंगल ३रे पड़ता है। मातृ कष्टकारक और स्त्री को कष्टकारक या उसमें किसी प्रकार की कमी का द्योतक है।

४थे शनि मंगल युति छाती को संकुचित और शरीर को मेदहीन कर देती है। यहाँ इस योग से सदा क्षयरोग, सन्निपात, पञ्जर में चोट, विद्या में विघ्न, स्वभाव हठी और मित्र सुखहीन करता है। सहचारी लक्षणों का काम ये फल बड़े मौके से देते हैं।

सप्तम-अष्टम दोनों घरों में शनि-मंगल युति अनिष्टकारी और स्त्रीकष्टी बनाती हैं। स्त्री की अकाल मृत्यु लाती, एकाधिक पत्नी योग देती और गुप्तांगों में चीर-फाड़ का प्रसंग लाती है। पागल कुत्ते आदि के काटने का सदा भय पैदा करती है।

शनि-मंगलयुति ६ठे, ७वें, ८वें वा १२वें पड़े और गोचर में किसी समय वहाँ से शनि, राहु, केतु आदि अशुभ ग्रह का संचार होने लगे तो अपनी पत्नी का या बच्चों की मृत्यु का पूरा भय उपस्थित होता है।

नवम भाव की इस युति पर पापग्रहों का संचार अपने गुरुजनों का संहार करता है। विशेषकर अपने पिता आदि का जिन्हें वह कभी-कभी पगला भी बना देता है।

दशमस्थ शनि-मंगल की युति पर यदि पापग्रहों का संचार हो और अन्य शुभ योग न प्राप्त हो तो अपना व्यवसाय; पद, नौकरी, प्रतिष्ठा और कार्य भारी संकट में पड़ते और विनष्ट हो जाते हैं। मनुष्य क्रूर कर्म करता और फौजदारी मुकद्मा इत्यादि के फेर में पड़ता और सरकार के कोप का भाजन होता है।

एकादशस्थ इस युति पर पापग्रह का संचार मातृ विरोध आदि लाता है, सन्तान को कष्ट देता और मित्रों से मनमुटाव कराता है।

बारहवें भाव में यही हो तो जेल-यात्रा, कष्टपूर्ण विदेश-यात्रा और धन संकट उपस्थित करता है। आँख की बीमारी और खर्चे का घर भी बना डालता है।

●

अष्टम प्रकरण

वृहस्पति

वृहस्पति का एक दूसरा नाम गुरु है। गुरु का अर्थ होता ही है भारी, बड़ा आचार्य। वह सूर्य को छोड़ शेष सारे ग्रहों से बहुत बड़ा और भारी भी है। देवताओं के आचार्य होने के नाते उसे देवगुरु या संक्षेप में गुरु ही कहते हैं जो उपरोक्त सभी प्रकार सार्थक है।

गुरु से प्रभावित लग्न कुण्डली मनुष्य को प्राकृतिक रूप में बड़ा भारी और आचार्यवत् प्रतिष्ठावान् बनाती है। मनुष्य अपने गुणों से प्रतिष्ठित और मर्यादावान् हो जाता है। वह ज्ञान, प्रज्ञा, और गुणों से सम्पन्न होता है।

शरीर के कई प्रधान अंगों और अवयवों का गुरु कारक होता है। शरीर में मेद को वह विशेषरूप से प्रभावित, नियन्त्रित, और इंगित करता है। वह हृत्कमल और रक्तसंचार यन्त्र का नियंतक और द्योतक है। वक्षस्थल, जाँघ और सुपलियों पर भी उसका पूरा अधिकार है। वह मेधा शक्ति का दाता है और मनुष्य को प्रतिभासम्पन्न बनाता है। बुद्धि बड़ी विलक्षण और उहापोहशक्तिसम्पन्न देता है।

प्रस्तुत विषय फलादेश न होकर आकृति से ग्रहों के संबंध का अध्ययन होने से सीधा अपने प्रस्तुत विषय की ओर ही झुकना उचित हैं।

लग्नस्थ गुरु की सब से मुख्य पहचान है मनुष्य का कद (देखें चित्र ९०)। यदि कोई दूसरा विशिष्ट कारण न हो और मनुष्य मझोले कद का और देखने में नाटा लगे तो समझना चाहिए कि गुरु लग्न या चन्द्र लग्न में है। मझोले कद को ऐसा देखने में बनाना कि यह नाटा लगे यह गुरु का काम है और ऐसा वह लग्न या चन्द्राधिष्ठित राशि के सान्निध्य में बैठ कर करता है। वस्तुतः मनुष्य विशेष नाटा नहीं होता पर शरीर की मुटाई और गठन के कारण वह नाटा देखने में अवश्य लगता है। कहने का तात्पर्य है कि गुरु लग्नस्थ होकर शरीर में मेद का प्राचुर्य्य उत्पन्न कर मनुष्य को स्थूलत्व प्रदान करता है जिससे वह लम्बा तो होता नहीं पर नाटा देखने में अवश्य लगने लगता है। अतः यदि मनुष्य को नाटा और मोटा पावें तो आप बेखटके उसकी कुंडली

में गुरु का केन्द्र या त्रिकोण में अनुमान करें। (लग्न भी केन्द्र और त्रिकोण ही है) अर्थात् उसकी कुंडली में ऐसे स्थान में बैठा होगा जहाँ से वह अपनी स्थिति युति वा दृष्टि से सारे शरीर के द्योतक लग्न को प्रभावित कर सकता होगा।

यदि ऐसे मनुष्य की तोन्द के निकलने की ओर का मात्र झुकाव हो तो प्रायः गुरु लग्न, सप्मम, चतुर्थ या दशम में ही होगा। अधिकतर वह लग्नस्थ, सप्तमस्थ वा चन्द्रयुत होगा।

यदि ऐसी अवस्था के साथ-साथ उस मनुष्य की मुखाकृति भव्य, चेहरा भरा हुआ, सुडौल प्रशस्त और सुन्दर ही नहीं बल्कि आकर्षक हो तो गुरु अवश्य लग्न में होगा। अर्थात् उपरोक्त अन्य लक्षणों के साथ मुखाकृति ग्रीक लोगों की मुखाकृति की काट की (Grecian Cut) हो वहाँ गुरु अवश्य लग्नस्थ वा चन्द्रयुत होगा।

मोटा पर मझोला कद और ग्रीक मुखाकृति लग्नस्थ गुरु की पहचान के अव्यर्थ लक्षणों में हैं और इसे एक स्वर्णघटित नियम मानना चाहिये।

ग्रीक मुखाकृति से तात्पर्य है कि :—

(१) मुखाकृति चारो ओर से भरी और भव्य और सुडौल हो।

(२) ललाट उन्नत और पीछे की ओर को किञ्चित झुका हुआ,

(३) ललाट के उपरले दोनों कोने दूर तक बालों के क्षेत्र में घुसे हुए (धँसे हुए नहीं) या फैले हुए,

(४) पेशानी चमकती हुई,

(५) रंग गोरा (यदा-कदा श्यामल भी),

(६) आँखें बड़ी-बड़ी लाल डोरों से समन्वित और चमकीली,

(७) गाल भरे हुए पर बहुत निकले हुए नहीं और न इस प्रकार बने हुए कि देखने में गालों की आकृति गेंद की नाईं गोला ज्ञात हो,

(८) भौंह हल्की और सूक्ष्म पर सुन्दर,

(९) नाक न छोटी न बड़ी पर हर प्रकार सुडौल और जानदार (सजीव),

(१०) ओष्ठ दोनों पतले और सुन्दर

(११) ठुड्डी न छोटी न बड़ी और न पतली अर्थात् हर प्रकार सानुपात निर्मित,

(१२) दन्तपंक्ति सुन्दर, सजीली, गठीली और चमकीली (कान्तिमयी),

(१३) दांत छोटे, मोटे, सुदृढ़, सुसंगठित, आकर्षक और बड़े भव्य,

(१४) मुखमंडल सब मिलाकर प्रसन्नचित्त और गम्भीर पर दर्शनीय,

(१५) चेहरे के सभी अंग प्रत्यंग सुडौल और सानुपात निर्मित और

(१६) सब मिलाकर मुखमंडल सुन्दर, भव्य, प्रभावशाली और अनायास आकर्षक हो।

शिर मझोले से लेकर छोटा तक पर अधिकतर अपेक्षाकृत छोटा ही होता है।

शिर का गठन पूरा ठोस और कहीं से ढीला या बेतुका नहीं जान पड़ता।

कान प्रायः सदा ही अपेक्षाकृत दोनों बड़े-बड़े ही होते हैं जो किसी भी दूसरी अवस्था में अर्थात् गुरु की किसी अन्यत्र स्थिति में नहीं पाये जाते। लग्नेश जब गुरु के साथ लग्न से अन्यत्र किसी स्थान बैठता है तब यदा-कदा कान अपेक्षाकृत बड़े पाये जाते हैं। पर साथ तब लग्नगत गुरु के अन्य लक्षण भी उग आते हैं।

इन सभी लक्षणों से युत मुखाकृति के साथ-साथ यदि मनुष्य की आवाज गम्भीर हो तो उसकी कुण्डली में गुरु अवश्य लग्नस्थ होगा। ये सभी लक्षण गुरु चन्द्रयुति में भी पूरे स्पष्ट पाये जाते हैं।

इस प्रकार की भव्य आकृति के साथ शरीर दोहरा और मेदपूर्ण हो। तोंद मात्र कुछ-कुछ ही निकलने की ओर का झुकाव रखता हुआ हो और कद नाटा हो तो गुरु अवश्य लग्नस्थ होगा।

देखिये चित्रांक १८, १०, १, १५ और १६। इनमें उपर्युक्त सभी लक्षण उपस्थित हैं। इनमें भी चित्रांक १०, १५, १, १८ बड़े महत्त्वपूर्ण और लक्षणों के ठीक व्यञ्जक हैं।

चित्रांक १५, १०, वाले सज्जनों के लग्नगत गुरु का अनुमान प्रथम साक्षात्कार होते ही कर दिया गया था जिसका सत्यापन पीछे कुण्डलियों से मिला कर किया गया। चित्रांक २०, श्री प्रभू सिंह जू, भूतपूर्व इंस्पेक्टर जेनरल ऑफ रजिस्ट्रेशन, बिहार के पी० ए० (निजी सचिव) और चित्रांक १० श्री महेन्द्र प्रसाद सिंह, भूतपूर्व इन्सपेक्टर जेनरल ऑफ सिविल हौसपिटल, बिहार के पी० ए० (निजी सचिव) तो ज्योतिष के चमत्कार के प्रदर्शन के जाज्वल्यमान मूर्तिमान् और बहुमूल्य नमूने हैं।

दोनों को ही साक्षात्कार के साथ ही उनकी कुण्डलियों की प्राप्ति के सप्ताहों पहले ही केवल आकृति से ही गुरु का लग्नस्थ होना निर्दिष्ट कर दिया गया था। चित्रांक ४ और चित्रांक २० में तो लेखक की परीक्षा ही ली गई थी जिसमें पूरी सफलता और जो अन्य मित्रों के लिये ज्योतिष का चमत्कार ही रहा। (इनका पूरा रोचक विस्तृत विवरण देखिये लेखक के ग्रन्थ "ज्योतिष साधना के कुछ संस्मरण में"—यन्त्रस्थ)।

इनमें चि० १५, २०, और १०, का अध्ययन लक्षणों के ठीक ज्ञान के लिए आवश्यक है।

आप देखेंगे कि चारों का कद मझोला से नाटा है। चारों का वर्ण गौर और मुखमण्डल आकर्षक है। चारों 'ज्योतिषश्याम संग्रह' के शब्दों में तुन्दिल-गात्रयष्टिः हैं अर्थात् चारों के तोन्दों के थोड़ा-बहुत बाहर निकलने की ओर का झुकाव है। चारो दोहरे बदन के और चारों के अंग-प्रत्यंग मांसल और मेद प्रधान हैं। चारों ही 'श्रेष्ठमतिः' और 'सुविद्वान' हैं। चारों के चारों की वाणी मधुर और गले से निकलते समय सूक्ष्म कोमलता का आभास देती हैं। यह अन्तिम लक्षण प्राचीन आचार्यों के स्पष्ट निर्दिष्ट लक्षण (सिंहरवः, सिंहब्जनादः) के कुछ विपरीत है किन्तु अनुभव सिद्ध और अव्यर्थ लक्षणों में है।

कल्याण वर्मा और श्याम लाल दोनों प्राचीनों ने गुरु के स्वरूप वर्णन में उसे 'सिंहाब्जनादः' और 'सिंहरवः' पूर्वाचार्यों की सारणि में बिना सूक्ष्म परीक्षा के ही उल्लेखित कर डाला है। अब गुरु जिसके लग्न में हो उसे तो भाषणों में भी सिंह गर्जन करते नहीं देखा जाता। अतः सिंह के गर्जन-सी आवाज वाला कहना अनुचित और अनुपयुक्त होगा। तो 'सिंहरवः' का अर्थ क्या होगा।

मनुष्यों की आवाज की परीक्षा सूक्ष्मता से करने पर अनेक प्रकार की ज्ञात होगी। उनमें कुछ बड़ी तीखी, कुछ सुरीली, कुछ कर्कश, कुछ जिह्वामूलक, कुछ ओष्ठ-मूलक इत्यादि होती हैं। कितनों की आवाज कलेजे से निकलती जान पड़ती और उससे तीक्ष्णता और शक्तिसम्पन्नता टपकती है। सिंह की आवाज का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उसकी आवाज भीतर से निकलते समय गले में आते ही रुक कर गूँजती है और घड़घड़ाहट पैदा करती है। उसी प्रकार जिस मनुष्य के लग्न या दूसरे भाव में गुरु बैठता है उसकी आवाज बोलते समय गले में आकर बझ जाती है। अतः बोलते समय उसकी आवाज गले में पहुँचते ही रुककर घड़घड़ाती और गंभीर-सी हो जाती है। इसी को प्राचीन आचार्यों ने 'सिंहरवः' वा 'सिंहाब्जनादः' से व्यक्त किया है। पर ये लक्षण सचमुच द्वितीयस्थ गुरु के हैं न कि लग्नस्थ गुरु के।

गम्भीर आवाज भी लग्नस्थ गुरु में होती है पर अपेक्षाकृत कम अनुपात में और कारण विशेषवश ही। लेखक के अनुभव में अधिकांश यह आया है कि लग्नस्थ गुरु की अवस्था में मनुष्य की आवाज गले में आकर रुकती और वह वहाँ शक्तिहीन होकर कोमल हो जाती है और उसकी गति धीमी पड़ जाती है। अतः सुनने में मृदु, प्रिय और अत्यन्त धीमी नहीं तो हल्की हो जाती है। जान पड़ता है जैसे गले

की आवाज को फेफड़े (फुफ्फुस) से बल ही नहीं मिल पा रहा हो। यह लक्षण उन चारों महानुभावों में स्पष्ट वर्तमान है।

चित्रांक १० के सज्जन की आवाज हल्की, धीमी और कोमल है। चि० २० की गम्भीर पर कोमल और अत्यन्त धीमी है। चित्रांक १५ और १ दोनों की ही प्रिय, मृदु, हल्की और धीमी है।

यहाँ इतना स्मरण रखना आवश्यक होगा कि इन चारों उदाहरणों में किसी के लग्न में अकेला गुरु नहीं पड़ा है। अतः इनकी आवाज में कुछ न कुछ भिन्नता सहचारी ग्रहों के कारण स्वाभाविक रूप में मान ली जा सकती है। पर उस भिन्नता का रूप अनिश्चित रह जाने से हम यह भी कहने के योग्य नहीं कि इसने गुरु के प्रभावों पर क्या उलट-फेर किया है या यही कि उन्होंने ऐसा कुछ किया ही है।

शब्द आवाज या रव अकेला लग्नस्थ गुरु की पहचान नहीं करा सकता। इसका उपयोग संदिग्ध अवसरों पर विलग कर मत स्थिर करने में बड़ा सुगम और उपयोगी होता है।

पाठकों का ध्यान चित्रांक १८ की ओर आकर्षित किया जाता है। गुरु अकेला लग्नस्थ है और चित्रांक १५ की नाईं उच्चस्थ भी।

चित्रांक १८ में शरीर में गुरु के अन्य लक्षण उपस्थित न हो पाये हैं पर ध्यानपूर्वक मुखाकृति का अध्ययन करने पर मुखमण्डल में गुरु के सभी लक्षण सूक्ष्मरूप में स्पष्ट हैं। ४५ की अवस्था तक यह व्यक्तित्व मेद प्रधान और तुन्दिल-गात्र यष्टि भी हो जायगा। चित्रांक ३६ की अवस्था के पहले का है। चि० १ में सभी लक्षण स्पष्ट उगे हुए हैं।

लग्नस्थ गुरु की आकृति का साधारण-सा वर्णन ऊपर किया जा चुका। पर कहने के आशय को ठीक-ठीक हृदयंगम कर लेने के लिए मिलते-जुलते अन्य लक्षणों को सामने रखकर मिलान करना आवश्यक है।

ऊपर कहा गया है कि गुरु प्रभाव में मनुष्य मोटा हो जाता अर्थात् वह एक मेद प्रधान व्यक्ति होता है। इसका तात्पर्य ऐसा नहीं कि चेहरे पर भी मेद की काफी प्रधानता होगी। बल्कि उसकी अधिक उपस्थिति मुख पर यह सूचित करेगी कि गुरु चाहे और कहीं बैठकर मुखमंडल को प्रभावित कर रहा हो पर वह लग्न में नहीं है। आप के सामने ऊपर जिन व्यक्ति विशेषों के चित्रपट उप-

स्थित किये गये उनमें से किसी के मुखमण्डल पर मेद की अधिकता नहीं है। यह ठीक है कि उनके चेहरे भरे हुए हैं और वे मेद से खाली नहीं हैं पर केवल साधारण तौर पर मेदयुक्त और मांसल हैं। पर देखें चि० ६१। चेहरा कितना मोटा, बुलन्द, गोलठोल हो गया है और शरीर मेद प्रधान भी है। पर गुरु लग्नस्थ नहीं है। कारण भी स्पष्ट है। चेहरा भरा रहने पर भी इसमें ग्रीक काट का पूरा अभाव हो गया है। देखते ही चेहरा भोंड़ा जान पड़ता है। यह निश्चित है कि यदि कोई अनपेक्षित कारण न हो तो गुरु के लग्नस्थ रहने पर मुखाकृति किसी प्रकार भोंड़ी नहीं जान पड़ेगी। चि० २०, १५, १०, १, १६, और ५१, १८ में से किसी का चेहरा भोंड़ा नहीं है।

पाठकों का ध्यान चि० ६३, ५४, ४० की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया जाता है जिनमें से चित्रांक ५४ में गुरु चन्द्र युति यहाँ उपस्थित हैं। साथ ही चित्रांक ६३ में गुरु की पूरी दृष्टि लग्न पर भी पड़ रही है। फल प्रत्यक्ष है। चेहरे पर काफी मेद (चर्बी) वर्तमान है। पर चेहरा भोंड़ा एकदम नहीं। इसमें ग्रीक काट (Grecian cut) मौजूद है विशेषकर चित्रांक ४० पर लग्न और चन्द्र लग्न दोनों पर गुरु का प्रभाव है, जिससे मेद की कुछ अधिक भरमार शरीर में तो हो गई है जो लग्नस्थ गुरु रहने पर भी नहीं होती पर न भोंड़ापन मुखाकृति में और न ही तोन्द बाहर आवश्यकता से अधिक निकलने पाया है। अवस्था कुछ और हो जाने पर जो ग्रीक काट (Grecian cut) अभी सूक्ष्म रूप से विशेषज्ञ को ही पता चलता है उसे अन्य सभी लोग उस समय प्रत्यक्ष देख सकेंगे।

पुनः पाठकों का ध्यान चि० १६ ठाकुर भोलानाथ सिंह (राय बहादुर) एडवोकेट पालामऊ की ओर दिलाया जाता है। यहाँ आप देखेंगे कि लग्नस्थ गुरु के रहने पर भी दोनों गालों पर काफी गोलाई आ गई है जो गुरु का लक्षण नहीं है पर उनकी आँखों, भौंहों और ललाट को ध्यान से देखते ही स्पष्ट समझ में आता है कि गुरु लग्नस्थ है। गालों का आकार बुध तुल्य इसलिए हो गया है कि बुध का क्षेत्र मिथुन लग्न है जिसकी स्वयं अपनी पहचान वही है। यहाँ जो चित्र आप महोदय का दिया जा सका है वह इनके युवा काल का है। अब ये लक्षण मुखाकृति से बिलकुल गायब होकर लग्नस्थ गुरु के पूर्ण लक्षण उग आये हैं। पुनः देखें चित्रांक ५१ राय बहादुर भैया साहब रूद्र प्रतापदेव, रियासत नगर ऊँटारी आपके लग्न में गुरु और राहु दोनों वृश्चिक राशि में पड़े हैं। गुरु के सभी लक्षण उपस्थित हैं और राहु के एक भी नहीं। भौंह, आँख, नाक और ललाट की बनावट के सामञ्जस्य दर्शनीय है। चेहरा इतना भव्य, प्रभावी और आकर्षक है कि आप उनके मुखमण्डल से अपना ध्यान शीघ्र हटा नहीं सकते।

ललाट प्रशस्त, पीछे की ओर को झुकता हुआ-सा पर थोड़ा ही, आँखों के निकट कनपटियों के ऊपर से ललाट के दोनों उपरले कोनों पर बालों तक एक

तिरछी सीधी रेखा-सी बन कर सारे ललाट भाग को किञ्चित पीछे की ओर झुकाती हुई-सी जान पड़ेगी। ललाट के कोने शिर के बालों में दूर तक प्रशस्त रूप में पाये जाते हैं। बिरले कारणों से ही इस नियम का प्रत्यवाय पाया जाय।

आँखें विशाल, ओजपूर्ण, गम्भीर, स्वच्छ, और लाल डोरों से युक्त होती हैं। इनकी बनावट और उभाड़ देखते ही बनती है।

शिर के बाल हल्के और कुछ-कुछ भूरे रंग के होते हैं पर कड़े नहीं होते।

ऊपर अब तक जो कुछ कहा गया है वह गुरु के अकेला लग्नस्थ रहने को लक्ष्य कर ही कहा गया है। पर अकेला गुरु लग्नस्थ एक प्रतिशत भी पाया जाना कठिन है। अतः अन्यान्य ग्रहों के साथ बैठने वाले लग्नस्थ गुरु की सम्भव ज्ञात पहचान क्या है इसका भी एक संक्षिप्त वर्णन अप्रासंगिक न होगा।

इस वर्णन को पढ़ते समय यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हमारा लक्ष्य यह वर्णन करना नहीं है कि वृहस्पति यदि सूर्य आदि के साथ लग्नस्थ हो तो उसके शरीर में कौन-कौन से लक्षण उत्पन्न होते हैं। यह तो एक वृहत् विषयान्तर होगा। हमारा यहाँ तो यह वर्णन मात्र करना है कि भिन्न-भिन्न ग्रहों के साथ, एक साथ या पृथक्-पृथक्, गुरु के लग्नस्थ होने पर उसे पहचान ले सकने के एक या अनेक स्पष्ट लक्षण जान लिये जा चुके हैं या नहीं। मात्र ऐसे ज्ञात लक्षणों (चिह्नों) का उल्लेख यहाँ अभिप्रेत है जिन्हें व्यक्ति विशेष में यदि हम पा जायँ तो उससे पता लग जाय कि गुरु के साथ अन्य कौन ग्रह सहचारी हो लग्नस्थ है। ऊपर प्रारम्भ ही में स्पष्ट कर डाला गया है कि ज्ञात लक्षणों को किसी व्यक्ति में पा लेने पर तो उन्हें उत्पन्न करने वाले ग्रह के स्थान का पता (उसकी कुण्डली में) तो चल जाता है पर किसी कुण्डली में उसको देख कर सम्बद्ध व्यक्ति के शरीर में उस चिह्न या लक्षण को निश्चित रूप से नहीं पकड़ा जा सकता। इसके कारणों का भी विशद् वर्णन वहीं उसी प्रसंग में कर दिया गया है। ग्रह अनेक फलों का प्रदाता है। उनमें से यदि कोई एक भी उगा पाया जाय तो उसके सहारे उसका उत्पादक और कारणभूत ग्रह तो निश्चित पकड़ा जाता है जैसे गन्तव्य स्थान तक जाने वाले सैकड़ों रास्तों में से किसी एक को भी पकड़ने से कोई भी गन्तव्य स्थान पर निश्चित पहुँचा जा सकता है पर उस गन्तव्य स्थान से निकलने वाले सभी मार्गों को पकड़कर अपने स्थान पर नहीं पहुँचा जा सकता। इसलिये नियम (आकृति से ग्रह की ओर) तो ठीक है पर इसका उल्टा (ग्रह से आकृति की ओर) नहीं।

गुरु के पूर्वोक्त स्पष्ट लक्षणों के साथ यदि ऊँचाई नाटी न जान पड़े और बिना मुखाकृति को बिगाड़े इसकी उपरली दन्तपंक्ति या यों कहें कि उसके उपरले

सामने वाले दोनों दाँत यदि किञ्चिन्मात्र आगे को बढ़े से या बढ़ते हुए से लगें तो लग्न में बहुधा सूर्य गुरु के साथ मिलेगा।

सूर्य के अन्यान्य लक्षणों में से भी कोई न कोई प्रकट मिलना चाहिए जो निश्चायक होगा। इन्हें सम्यक रूप से पहचानने में भूल न हो तो सूर्य-गुरु अवश्य लग्नस्थ होगा। यद्यपि इन में दृष्टि युति और स्थिति भेद से अनेक परिवर्त्तन जान पड़ेंगे तथापि पहचानों को हृदयंगम कर पकड़ लेने की अव्यर्थता पर ही इस पहचान की अव्यर्थता निर्भर करती है। इतना न भूलना चाहिये कि सूर्य का साथ होने पर स्थूलत्व बदन के दुहरापन से आगे न बढ़ने पावेगा। साथ ही हड्डियों की ठोस बाढ़ और दृढ़ता भी अवश्य होगी। इतना होने पर भी ८०% से अधिक सफलता पाने की आशा नहीं होने से इन लक्षणों को अव्यर्थ की कोटि में नहीं रखा जा सकता है।

गुरु के साथ चन्द्रयुति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ चुका है। वर्णित लक्षणों को हृदयंगम करते ही इसकी पहचान हो जाती है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि चन्द्रमा की संगति में गुरु के बतलाये सटीक लक्षण अद्भुत रूप में निखर उठते हैं। ग्रीक आकृति सजीव हो उठती है। रक्त का बाहुल्य स्पष्ट छलकता जान पड़ता, और उसकी कान्ति फूटी पड़ती है। ओठों की लाली मोहक रूप लेती और हाथों में गट्टों से केहुनी तक वर्तुलाकार कोमल रूप ले लेती है। व्यक्तित्व अचानक आकर्षक हो उठता है। ये लक्षण पहचानने वाले के क्षमतानुसार अव्यर्थ ही हैं।

गुरु के साथ बैठा मंगल गुरु से प्राप्त वर्णित आकृति को ठोस और दृढ़ कर देता है और तुन्दिलता में रोक-सा लगा उसे सीमित रखता है। बुढ़ापे में भी यौवन की अनुरूपता होती है और कभी मेदाधिक्य से शरीर बोझिल नहीं हो पाता। गुरु की विशिष्ट और विहित ऊँचाई में मंगल कोई परिवर्तन नहीं लाता और उसकी बाढ़ में भी रोक लगाता हुआ नाटेपन की ही ओर झुकता-सा जान पड़ता है। इस प्रकार के लक्षणों के साथ यदि चेहरे में व्रण (घाव = क्षतज) के चिह्न मिलें और आकृति ग्रीकों के अनुरूप बनकर भी यदि कुछ अनाकर्षक-सा लगे या ऐसा भान हो कि इसमें कुछ-न-कुछ-सी खटक रही है तो निश्चय मंगल गुरु के साथ लग्नस्थ मिलेगा। चित्र १५।

सारांश यह कि मंगल गुरु के साथ लग्नस्थ होकर गुरु के लक्षणों को ठोस कर उन्हें सीमाबद्ध रखता है। और चेहरे को किसी अनिश्चित अभाव में उदास-सा कर डालता है। गुरु और मंगल के लग्नस्थ होने के ये लक्षण अव्यर्थ से हैं पर अन्यान्य

ग्रहों की युति दृष्टि आदि से इनमें महान् अन्तर भी देख पड़ेगा। चित्र १५ में भी सब कुछ होते हुए भी ललाट के कोनों से ऊपर की बनावट में थोड़ा भोंड़ापन आ ही गया है। मंगल की छाप इनकी नुकीली नाक में अधिक स्पष्ट है।

गुरु के साथ जब बुध पड़ता है तो गुरु के और सब लक्षण तो मिलेंगे पर आकृति ग्रीक काट से बिगड़कर (विकृत होकर) गोलठोल और भोंड़ी हो जाती है। दोनों गालों में समान पूपाकृति की गोलाई उत्पन्न हो जाती है और ठुड्डी के बीचोबीच विभाजक गढ़े-सा हो जाता है। सारे शरीर में स्थूलत्व ढीलापन के साथ बढ़ता या बढ़ा हुआ देख पड़ता है। हाथ गोलाकार और मांसल हो नसों की उभाड़ को लुप्त कर देता है। इन लक्षणों के साथ यदि व्यक्ति "वाचाल वा वाग्मी" जान पड़े तो प्रायः सदा निश्चय ही गुरु और बुध लग्नगत होंगे (देखें चित्रांक २७)।

लग्न में गुरु शुक्र युति ग्रीक काट की आकृति तो बिगड़ने नहीं देती पर शरीर बेहद मोटा और बोझिल बना डालता है। लग्नादि भेद से इसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन मिलते हैं। स्मरणीय इतना ही है कि आकृति का ग्रीक काट बिगड़ने नहीं पाता। बल्कि उसमें नुकीलापन और बढ़ जाता और आकृति की सुन्दरता और बढ़ ही जाती है। शरीर का मेद अनपेक्षित मात्रा में बढ़ जाता और सम्बद्ध व्यक्ति खासा बड़ी तोन्द वाला हो जाता है जैसा अकेला गुरु के रहते कभी नहीं होगा। देखें चित्र १० श्री महेन्द्र प्रसाद सिंह जी। कन्या लग्न ने आपको बेहद नाटा कर दिया है जिसमें गुरु ने भी साथ दिया ही है। पर अन्य सभी लक्षण उपरोक्त पूर्व वर्णनानुसार हैं। प्रथम साक्षात्कार के २ मिनटों के भीतर बिना कुंडली के देखे ही कन्या लग्न में गुरु-शुक्र युति निःशंक बतला दी गई थी। (देखें लेखक का "ज्योतिष साधना के कुछ संस्मरण")।

गुरु और शनि की लग्नयुति ग्रीक आकृति को बिल्कुल उड़ा देती है पर शरीर को असाधारण मोटा बना देती। यह गुरु-शनि युति असाधारण मोटाई देने में इतनी अव्यर्थ है कि किसी भी घर में रहकर भी यह फल दे ही देती है। देखें चित्र ३६। ये बचपन में इतने दुबले और पतले थे कि लोग समझते थे कि ये कभी स्वस्थ होंगे कि नहीं। इनके पूर्वज भी कोई मोटे नहीं थे। राशि परत्व से इसमें कोई व्यवधान नहीं होता है और मेद की बाढ़ बनी रहती है। लग्नस्थ गुरु शनि में मनुष्य की ऊँचाई कम नहीं हो पाती बल्कि बढ़ ही जाती है।

आपकी अवस्था अभी बहुत ही कम है पर तौ भी असाधारण स्थूलता के लक्षण प्रकट हो गये हैं। ४० के बाद ये असाधारण मेदप्रधान स्थूल शरीरयष्टि के हो जायेंगे।

गुरु के साथ जब राहु भी लग्नस्थ होता है तो वह मनुष्य की ऊँचाई नहीं बढ़ा पाता जो उसका अपना विशिष्ट गुण है। राहु कदाचित गुरु के प्रभाव में पड़ अपना स्वभाव खो बैठता है। गुरु के लक्षणों के प्रकट होने में उसके कारण बाधा नहीं पहुँचती। तब राहु की पहचान ऐसी स्थिति में उसके अव्यर्थ लक्षणों के दन्तपंक्ति में प्राप्ति से होती है। गुरु के लक्षणों के साथ यदि मनुष्य के अगले दाँत छेहर जड़े हों अर्थात् परस्पर सटे न हों और उनका झुकाव आगे की ओर निकलने का न होकर अन्तर्मुखी हो और साथ ही मुखड़ा खोखलेपन के साथ पिचकालू हो तो गुरु के साथ राहु अवश्य होगा। राहु के लग्नस्थ होने के जो लक्षण राहु के प्रसंग में बतलाये गये हैं उनमें से एक या अनेक के मिलने से राहु लग्नस्थ पाया जायगा क्योंकि गुरु राहु के अन्य प्रभावों के प्रकट होने देने में बाधक नहीं होता। लम्बाई ही केवल गुरु के अपने नाटेपन के विशिष्ट प्रभाव में पड़कर रुक जाती है। स्मरणीय मात्र यही है कि लग्नस्थ राहु में गुरु के साहचर्य बिना मनुष्य की ऊँचाई कभी रुकती नहीं। अतः मझोले कद के व्यक्तियों में जब एक मात्र गुरु के लक्षण स्पष्ट हो तभी राहु के खोजने का उसमें प्रयत्न करना चाहिए अन्यथा नहीं। चित्रांक २० तथा १ में लेखक की कड़ी परीक्षा ली गई थी पर दन्तपंक्ति के बल पर ही राहु की सम्भावना गुरु के स्पष्ट लक्षणों के रहते की गई थी और जो पीछे सत्यापित हुई। (देखें ज्योतिष साधना के मेरे कुछ संस्मरण)। धँसे हुए प्रशस्त चेहरे में यदि ग्रीक काट हो और दाँत अलग-अलग पर अन्तर्मुखी हों वा न हों, पर बहिर्मुखी न हों, या चेहरे की हड्डी में कोई विकृति आ गई हों, (टूटने-फटने आदि की) तो गुरु के साथ राहु अवश्य लग्नस्थ पाया जायगा।

केतु यदि गुरु के साथ लग्नस्थ हो तो उसकी पहचान केतु के प्रसंग में वर्णित लक्षणों के देखे जाने से होगी। उस प्रकरण से इंगित लक्षणों को पाकर गुरु के साथ केतु का सफल अनुभव किया जा सकता है। गुरु केतु की ऊँचाई को आत्मसात् या तिरोहित नहीं कर पाता। अतः जहाँ गुरु के लग्नस्थ होने के चिह्न स्पष्ट वर्तमान हो, पर केतु के भी कुछ चिह्न चेहरे में हों और साथ ही कद की ऊँचाई पूरी हो तो वहाँ गुरु के साथ केतु का लग्नस्थ होना अनिवार्य है। स्मरण रहे कि खूबसूरत से खूबसूरत मुखाकृति में भी केतु के कारण उसमें भोंड़ापन, वीभत्सता, उदासीनता, अंगविकृति या अभाव किसी-न-किसी रूप में या अंश में अवश्य होना चाहिए। गिरने से चोट के व्रण चिह्न को केतु की खोज में कभी विस्मृत नहीं करना चाहिए।

कुछ अन्य विशिष्ट फलों का उल्लेख कर इस प्रसंग को अब समाप्त ही करना समुचित होगा।

नीच वृहस्पति यदि पंचम भाव में पड़े और उस पर मंगल और केतु जैसे पापग्रहों की दृष्टि पड़े तो Appendicitis जैसे रोग उत्पन्न कर चीर-फाड़ कर चिह्न निकल आता है। देखें चित्रांक २२ श्री बाबू गजेन्द्र प्र० सिंह का। मकर का गुरु ५म भाव में शनि से पूर्ण दृष्ट हो चन्द्रमा से ७म भाव में बैठा है और उस स्थान से ४थे मंगल पड़ा है। वृहस्पति की महादशा में जब केतु मकर में और राहु कर्क में संचरित हो रहे थे आपको Appendicitis से बार-बार पीड़ित होकर चीरफाड़ कराकर उसे कटवा देना पड़ा। एक बार औपरेशन सफल न हुआ तो ३ मासों के भीतर दुबारा औपरेशन कराना पड़ा। जब पहली बार पेट चीरा गया तो डाक्टरों को देखकर महान् विस्मय हुआ कि उसके पहले वह Appendix का घाव स्वयं ३ बार फूटकर रह गया था और अनेकानेक Liasion पैदा कर चुका था। जिसके घाव सब अभी भरे भी नहीं थे और अन्त्रालों कई स्थानों पर संयोजन (जोड़) हो चुका था। उन्हें विस्मय इस बात का हुआ कि Appendix जब स्वयं पेट में फट जाता है तो किसी की जान जल्दी बचती नहीं पर यहाँ तीन बार ऐसा हो चुकने पर भी जातक स्वस्थ होता चला गया था। (देखें संस्मरण विस्तृत और ज्योतिषीय रोचक वर्णन के लिये)।

प्रस्तुत प्रसंग में इस उदाहरण का महत्त्व इतना ही है कि ऐसे सुन्दर स्वस्थ शरीर में भी इस स्थिति ने चीर-फाड़ के दो लम्बे-लम्बे व्रण चिह्न नाभि स्थान के पास कटि प्रदेश के ऊपर अंकित कर ही दिये। (देखें ४थे और दशम स्थिति) ऐसे चिह्नों पर भी शास्त्र के अध्ययनेच्छुओं का ध्यान रखना चाहिए।

अप्रासंगिक जान कर उक्त उदाहरण का विस्तृत विवरण यहाँ अनुचित जान कर छोड़ दिया गया नहीं तो वह एक आँखों के समक्ष घटा हुआ प्रसंग और फल ऐसा है कि ग्रहों की चाल से और घटनाक्रम से तारीखवार प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखलाया जा सकता है।

गुरु अकेला भी कभी अज्ञात कारणवश पूरा फल देता नहीं देख पड़ता। कारण पता नहीं पर उदाहरण अनेक मिले हैं और मिलते हैं।

चि० ६२ वाले सज्जन श्री पं० रामचन्द्र मिश्र की कुण्डली में गुरु चतुर्थ में उच्चस्थ है। पर न तो आप की बुद्धि की प्रतिभा ही देखने को मिली और न ही वे प्रवेशिका से आगे विद्याध्ययन ही कर सके। चतुर्थ गुरु को देखकर इनके दोहरे बदन का अनुमान सहज करने की प्रवृत्ति होती है पर चित्र से स्पष्ट ही गलत सिद्ध

होता। अर्थात् आकृति से ग्रह तो पकड़ता है पर ग्रह से आकृति सदा नहीं पकड़ाती और पकड़ाती भी है तो पाशा के दाँव पड़ने जैसा।

उसी प्रकार देखें चि० ४। गुरु उच्च का दशमस्थ है। ये अपनी प्रदेशीय सरकार में अपने विभाग के सबसे ऊँचे पद पर आसीन समय पर न हो सके जिसकी पूरी योग्यता और क्षमता आप में वर्तमान है। (अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् इन्हें भी अपेक्षित पद की प्रतिष्ठा तो सरकार की ओर से मिली ही पर अन्यत्र वे उससे भी अधिक ऊँचे पदों को प्राप्त कर सम्मानित हुए और साथ ही अधिक अर्जन भी किया।)

सम्भवतः इसका कारण उच्चस्थ शनि (योगकारक) का लग्नवर्ती और गुरु का उच्चस्थ दशमवर्ती होकर एक दूसरे के कंटकस्थ होना ही (विलम्ब, रुकावट, अड़चन, प्रतिस्पर्धा) है।

चित्रांक २ के भी चतुर्थ गुरु पूर्ण सुन्दर फलप्रदान करने में असमर्थ ही देख पड़ा। इसके कंटकस्थ शनि-राहु युति कदाचित् इसका कारण हो।

पुनः चि० १८ की ओर जहाँ उच्च गुरु लग्नस्थ हैं ध्यान दें। इन्हें अपने अनुरूप पूर्णफल प्राप्त करने में (I. A. S. होने में) पर्याप्त अड़चन तथा विलम्ब हुआ।

एक से अधिक ग्रहों के साथ एकत्र बैठने पर गुरु के अपने स्वाभाविक और प्राकृतिक चिह्न अविकृत रूप में नहीं पाये जाते। ऐसी स्थिति के पहचान लेने में अपना पूर्ण अनुभव बल लगाना पड़ता है। विना सूक्ष्म परिवर्तनों पर ध्यान रखे यह असम्भव हो जाता है।

●

नवम प्रकरण

शुक्र

शुक्र को कला, काव्य, सौंदर्य, ऐश्वर्य, सुन्दर परिधान, वेशभूषा, आभूषण, रत्न, कोष आदि का कारक कहा गया है। चारुता उसका अपना एक प्रधान अंग है। रत्नों में वह हीरा है और उसका अपना निजी रंग हीरे का ही रंग है। माधुर्य, सौन्दर्य और आकर्षण सब उसमें एक साथ विराजमान रहते हैं जहाँ वह संगीत और नाट्यकला का प्रतीक है वहीं वह पुलिस के सर्वोच्च पदाधिकारी का भी द्योतक है। वह दैत्य गुरु भी है।

कहने का तात्पर्य यह कि आकृति से शुक्र की स्थिति का अनुमान करते समय उसके उक्त स्वाभावादि को सदा स्मरण रखना चाहिए।

लग्नस्थ शुक्र की सबसे बड़ी और कदाचित अव्यर्थ पहचान है त्वचा का वर्ण। यदि शुक्र लग्न में हो तो मनुष्य को साँवलेपन की ओर ले जाता है। वह काला वा गहरे श्याम वर्ण का नहीं होता पर उसके शरीर का वर्ण गोरा होने के साथ छायादार (वा मालिन्यमय) होता है। देखने में तो मनुष्य साधारणतः गोरा लगेगा। किन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पावेंगे कि वह पूर्ण गौर वर्ण का नहीं बल्कि उसकी गोराई में श्यामता का एक अल्प पुट समग्र मौजूद है। उसकी गोराई में दीप्ति के बदले धुमैलापन होता है और उसकी वर्णाकृति बीमारी से उठे मनुष्य की त्वचा के वर्ण-सी देखने में लगती है।

वर्ण के उस धुमैलेपन के साथ ही उसके मुखमण्डल में पाई जाती है एक प्रकार की हल्की-सी चमक। उसके मुखमंडल में एक कान्ति होती है। यह कान्ति चमक तो होती है पर वह उसके वर्ण या त्वचा की आभा नहीं होती। यह कृत्रिम प्रशाधनोत्पन्न होती है। जहाँ ये दोनों लक्षण एकत्र देख पड़ें तो वहाँ शुक्र की लग्न-स्थिति की पहचान में भूल होने का १०% भी अवसर नहीं होगा।

स्मरण रहे कि शुक्र मानव शरीर एकहरा और ऊँचा ही बनाने की प्रवृत्ति रखता है। अतः उक्त दोनों लक्षणों के साथ शरीर एकहरा वा छरहरा पाया जाय तो वहाँ लग्न में शुक्र स्थिति का अनुमान शतप्रतिशत सत्य निकलेगा।

इस अनुमान को और भी पुष्ट कर लेने के लिए उस व्यक्ति के बालों और आँखों की सुधार और बनावट पर भी क्रमशः ध्यान देना आवश्यक है।

जिस व्यक्ति के लग्न में चन्द्र लग्न में शुक्र पड़ता है वह अपने केशों को कलापूर्ण रीति से सजा कर रखने की रुचि रखनेवाला होता है। उसके केशों का सुधार और सजावट देखते ही उसके मानसपटल पर अंकित कलाप्रियता और सुरुचिपूर्णता झलक कर फूट पड़ती है। बालों को अधिक बढ़ाकर रखना, घुँघराले लहरों से उन्हें युक्त कर सुगन्धित तैलादि का व्यवहार इत्यादि उसमें अनेक बातें ऐसी मिलेंगी जो दर्शन मात्र से उसकी सरस रुचि को व्यक्त करती होंगी।

उसके ललाट पर श्रम कण सदा विद्यमान (विराजमान) से रहते और नहीं तो उसके उन्नत ललाट क्षेत्र में से एक प्रकार की आर्द्र आभा निकलती रहती है। यह आभा उसकी नाक, गालों के ऊपरी भाग और ओष्ठों में भी पाई जाती है। देखने में कभी-कभी भ्रम होता है कि यह आभा या चमक व्यवहृत तैलादि प्रसाधन बाहुल्य के कारण कदाचित् देख पड़ती है। कभी-कभी यह सच निकलता है पर अधिकांश में वह उसकी त्वचा की अपनी प्रकृतिदत्त कान्तिमत्ता ही होती है।

कभी-कभी वर्ण में बड़ा धोखा होता है। आकृति देखने में पूर्ण गौर वर्ण और सुनहले रंग की ज्ञात होगी और आप धोखे में पड़ कर समझ बैठेंगे कि यह गुरु चन्द्र वा बुधचन्द्र वा केवल चन्द्रजनित वर्ण है पर कुण्डली देखते ही लग्न में शुक्र मिलेगा, बुध, गुरु, चन्द्र आदि में से कोई नहीं। ऐसे अवसर पर आपको धैर्यपूर्वक अपने अनुमान के आधारों पर पुनः दृष्टि निक्षेप करनी पड़ेगी। ऐसा करते समय आपको व्यक्ति के होठों पर सूक्ष्म ध्यान देना पड़ेगा। यदि होठों का रंग उतना गोरा और दीप्तिमय न हो जितना उसके शरीर का वर्ण तो समझ लें कि वह गोराई शुक्रजनित है, गुरु वा चन्द्रजनित नहीं। तात्पर्य यह कि बाहरी गोराई रक्त के मूलवर्ण (असल गोराई) का पता कभी-कभी नहीं देती। इसलिये जब तक उस व्यक्ति के बाहरी वर्ण का मिलना उसके होठों की अमिश्रित पूर्ण ललाई से न कर लें तब तक आप किसी की गोराई को सच्ची गोराई न मानें। यदि उस गोराई में शुक्र का कुछ भी हाथ होगा तो होठों की लालिमा में कालिमा का कुछ-न-कुछ पुट अवश्य होगा। जहाँ ऐसा मिले वहाँ गुरु और चन्द्र का अनिश्चित प्रभाव कभी स्वीकार न करें। शुक्र के अमिश्रित वा मिश्रित प्रभाव में ही ऐसा होता है।

इतना कर लेने के पश्चात् आँखों पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए। शुक्र लग्नस्थ होगा तो आँखें बड़ी-बड़ी और सुन्दर तथा आकर्षक होंगी। ये आँखें इतनी पानीदार और सहज आकर्षक होती हैं कि एक बार उन्हें पहचान लेने पर आप उन्हें कभी भूल नहीं सकते। आँखों की पुतलियाँ गाढ़े काले रंग की और उनके कौओं के श्वेत भाग में लाल डोरों की अति सुन्दर सजावट होती है कि देखते बनता है। आँखें यदि किसी प्रकार थोड़ी भी छोटी, कान्तिहीन, तिरछी वा गहरी बैठी हुई-सी

लगें तो वहाँ कभी उन्हें शुक्र लग्न में नहीं मिलेगा। प्रायः शुक्र लग्न में चन्द्रमा के साथ एकत्र पाया जायगा।

शुक्र के प्रभावों में उत्पन्न ऊँगलियाँ लम्बी, कोमल, सूच्याकार और सुन्दर नखों से युक्त पाई जाती हैं। यह बात महिलाओं में विशेष देख पड़ेगी। हाथ की हथेली रक्ताग्र और स्पर्श में उष्ण प्रतीत होगी। कर्कश स्पर्श वा रक्त का सामान्य परिमाण से कम जान पड़ना शुक्रेतर ग्रहों का प्रभाव समझना चाहिए।

ऊपर बतलाये सभी लक्षणों में से जितने ही अधिक आपके मानसपटल पर अङ्कित मिलेंगे उतना ही अधिक लग्नस्थ शुक्र का अनुमान आपका ठीक बैठेगा। इस बात का अभ्यास प्रारम्भ से ही करके अपनी दृष्टि शक्ति को शिक्षित और अभ्यस्त कर लेना चाहिये तब कहीं आप अपने काम में सफलता प्राप्त कर सकेंगे। एक-दो लक्षणों को पाकर अनुमान करने से बहुधा शुक्र को पहचानने में सफलता कम मिलेगी।

शुक्र और बुध दो ऐसे ग्रह हमारे सौरमंडल में हैं जो अकेला लग्नादि भावों में बहुत कम पाये जाते हैं। सूर्य सन्निकट में रहने के कारण अनेक अवसरों पर ये या तो दोनों स्वयं साथ बैठते और नहीं तो सूर्य के साथ एकत्र पाये जाते हैं। इसलिये इनके अपने-अपने पृथक् स्पष्ट लक्षणों से व्यापक आदर्श कुंडलियों और चित्रों का संकलन असम्भव-सा है। यही कारण है कि हम अत्यन्त खेदपूर्वक ऐसे किसी प्रतीकात्मक फोटो और कुंडली के उपस्थित नहीं कर सकने की असमर्थता को प्रकट करके सन्तोष करने पर बाध्य हुए हैं।

सचमुच पूछा जाय तो शुक्र और बुध के निजी लक्षणों को चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जाना भी असम्भव-सा है। इनकी पहचान के चिह्न इनके वर्ण, कान्ति, त्वचा की कोमलता और कड़ापन इत्यादि में पाये जाने के कारण चित्रण के विषय ही नहीं हो सकते। अतः सम्बद्ध व्यक्तियों के साक्षात्कार और उनसे सम्भाषण के अवसरों पर ही निर्भर कर अपने अनुभवों की पुष्टि की आशा रखनी होगी।

पाठकों का ध्यान चित्र १० और २ की ओर आकृष्ट कर देना उचित होगा। चित्र १० में शुक्र लग्न में नीचस्थ और गुरु युत है। अपना अमिश्रित फल इसलिए प्रकट करने में असमर्थ रहा है तथापि पाठकों का ध्यान इनकी आँखों की ओर आकृष्ट किया जाता है जो विशाल, ओजपूर्ण और बड़ी ही अजीब हैं। ये अनायास ही आकर्षक हैं। आँखों के उजले कोओं में लाल डोरे और गाढ़ी काली पुतलियाँ कितनी पानीदार हैं। चित्र २ में वर्ण पर शुक्र का प्रभाव स्पष्ट है यद्यपि शुक्र अकेला वहाँ नहीं है। बुध ने अपना प्रभाव अन्यों के साथ तद्वत् हो खो दिया है। शेष दोनों ग्रहों का वर्ण उनकी अपनी विशिष्ट पहचान नहीं और न इनका प्रभाव वर्ण का कोई निश्चित रंग ही सूचित करता है। इनके अपने विशिष्ट चिह्न दाँतों और दन्तपंक्तियों पर स्पष्ट और सर्वविदित हैं। इनकी गोराई शुक्र से प्रभा-

वित है। शुक्र ने शनि-राहु के दन्त और दन्तपंक्ति के प्रभाव को जरा भी परिवर्तित नहीं किया है और न शनि राहु ने ही शुक्र के वर्ण के विशिष्ट लक्षण को ही स्पर्श किया है।

बुध और शुक्र दोनों अकेले एकत्र लग्नस्थ हों तो त्वचा की श्यामता का कभी-कभी नितान्त अभाव होकर वर्ण पूर्ण गौर हो जाता है। दोनों में से बुध ही के विशेष लक्षण स्पष्ट प्रकट देखे जाते हैं। पर यदि कारण विशेषवश शुक्र बलवान हुआ तो उसके भी लक्षण काफी स्पष्ट और प्रधानता प्राप्त करते हैं।

चन्द्र और शुक्र की युति स्वयं अकेला उजली दीप्ति ही प्रायः प्रदान करती है। आँखों पर शुक्र के प्राणों को विशेष रूप में स्फुट करती और स्वभाव में कोमलता प्रदान करती हुई वार्त्तालाप में व्यक्ति को बड़ा विनम्र बनाती है। बुद्धि को प्रखरता और प्रतिभा दोनों प्रदान करती है। यही फल चन्द्र पर की शुक्र की पूर्ण दृष्टि भी होता है। चित्र १३ और ५७। यदि चन्द्रमा निर्बल हुआ तो ऐसे योग में मनुष्य कभी-कभी मद्यपी और दुर्व्यसनी भी पाया जाता है।

कुम्भ-शुक्र युति पर मंगल के प्रकरण में पर्याप्त प्रकाश पाया जायगा। यह युति बाल गोपाल युति के नाम से प्रसिद्ध है। विलासिता, संगीतकला, काव्यकला और मद्यपान आदि की प्रदर्शिका है। यह योग यदि ६ठे, ८वें या १२वें घर में पड़े तो मनुष्य को वृहद्वीज, मूत्र कृच्छ्र, प्रमेह, प्रमेहपीडिका व्रण विद्रद्ध आदि भयंकर रोगों से त्रस्त करता है। ऐसे लक्षणों को व्यक्तिविशेषों में सन्देहास्पद विवेचन में निश्चित निर्णय लिया जा सकता है। युति का अनुमान भी किया जा सकता है।

शनि-शुक्र युति दाम्पत्य जीवन कष्टकर बनाती और पत्नी के स्वभाव में तीक्ष्णता (तीखापन) और उग्रता (या प्रचण्डता) उत्पन्न कर डालती है। दम्पति के स्वभाव की उग्रता उसके वार्त्तालाप और उसकी गतिविधि में स्पष्टता प्राप्त करती है मनुष्य स्वयं शुक्र-दोष से पीड़ित होता है। दूसरे और १२वें घर में यह योग आँखों में फूला आदि विकार देने और पैरों की हड्डी तोड़ने में बहादुर पाया गया है। यद्यपि अकेला शुक्र १२वें भाव में शुभ फलदाता होता है और यही एक ऐसा ग्रह है जो औरों के विपरीत १२वें घर में अशुभ फल नहीं देता और शुभ ही फल देता है तथापि पापाक्रान्त और पापदृष्ट हो वह पैरों में महाव्याधि उत्पन्न कर पैर बेकार कर डालता है। देखें चित्रांक २०। इनकी कुंडली में शुक्र १२वें सूर्य के साथ और शनि से दृष्ट है। २रे और ७वें घर का स्वामी शुक्र मारक तो है ही शनि और सूर्य से आक्रान्त १२वें बैठा है। ७वें घर में केतु गुरु दृष्ट है। आपको गुप्तांगों में दो बार शल्य चिकित्सा कराना पड़ा और अन्त में मेरुदण्ड के भीतर से पीठ में ठीक कमर के ऊपर चीर कर वर्धित अनावश्यक मांस-

पिण्ड निकालना पड़ा और जो अपने देश का एक अनूठा ऑपरेशन ठहराया गया। इससे शरीर का सतत पीड़क दर्द तो दूर हुआ पर पैरों में लकवा मार गया और अन्त में घातक ही होकर दम लिया। शुक्र का सूर्य सान्निध्य और शनि कंटकत्व ध्यान देने योग्य है।

शुक्र शरीर में अंकुर उत्पादक और व्यर्थ मांस-पिण्ड और पिटिका जनक है। मांस, गिल्टी, छठी उँगली, गले की सूजन इत्यादि सभी निर्बल और दुष्ट शुक्रजनित शरीर विकार हैं। शुक्र मारकेश, गुह्यांग का स्वामी, सूर्य कटि प्रदेश (५म) का स्वामी और मेरुदण्ड कारक है। १२वाँ भाव बंधन, जेल, कालकोठरी, अस्पताल, शय्याबंधन इत्यादि का प्रदर्शक है। सूर्य और शुक्र दोनों एकत्र द्वादशस्थ हैं। पंचम भाव का मारकेश षष्ठस्थ और शुक्र-सूर्य की १२वीं युति से कण्टकस्थ है। फलतः आपके मेरुदण्ड के भीतर मज्जा (५म भाव और सूर्य + शुक्र + मीन) कमर से जोड़ों के ऊपर (कन्या + शनि) व्यर्थ माँसपिंड की रुकावट पैदा हुई। शल्य चिकित्सा (सू० + शु० + मीन tube) से मेरुदण्ड के ऊपर पीठ चीर कर अण्डे के बराबर का वर्तुलाकार मांस प्रारोह निकाल डालना पड़ा तो कमर के नीचे का सारा भाग और दोनों पैर सुन्न हो गये (कन्या शनि) और वर्षों के कष्टमय खटपरू जीवन (द्वादशस्थ ग्रह युति दृष्टि) के पश्चात् अन्त में सांघातिक सिद्ध हुआ।

पुनः देखें चि० ६१, । यह द्वितीयस्थ शुक्र का उदाहरण है। इस सज्जन की आँखें विशाल, सतेज, आकर्षक और सुन्दर हैं। अतः यहाँ उसके सभी लक्षण विशेष स्फुट हैं। आँखें विशेष तीक्ष्ण और दूसरों के मनोगत भावों और विचारों तक अनायास प्रविष्ट हो जाने की विशेष क्षमता रखती हैं।

सप्तमस्थ शुक्र लगभग वही फल देता है जो लग्नस्थ होकर देता है। स्त्री सर्वगुणोपेत और भाग्यशालिनी मिलती है। वह अपने पति का भाग्य बनानेवाली होती है। यदि शुक्र पापाक्रांत हुआ तो स्त्री की मृत्यु होती है।

निष्कर्ष में इतना कहकर इस प्रसंग को समाप्त किया जाता है कि शुक्र की पहचान के सुनहले नियम अल्पसंख्यक तो हैं ही, साथ ही उनमें सुधार की पर्याप्त जगह है। सुधार करना भी चाहिए।

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है शुक्र के अव्यर्थ लक्षण त्वचा, मुख, आँखों की बनावट तथा उनके वर्णादि में ही पाये जाते हैं। सतत अभ्यास, मनन और आकृतियों के साथ कुंडलियों का अध्ययन ही अध्यवसायियों को इस मार्ग में सफल बना सकते हैं।

●

दशम प्रकरण

बुध

गत पृष्ठों में प्रसंगवश अन्य ग्रहों के प्रकरण में बुध के लक्षणों का उल्लेख होता आया है। उन्हें भूलना नहीं चाहिए।

बुध सभी ग्रहों से आकार-प्रकार में सबसे छोटा और सूर्य का पार्श्ववर्ती ग्रह है। यह बुद्धि, मस्तिष्क, और वाचाशक्ति का कारक माना जाता है। इसको अंग्रेजी में Mercury कहते हैं जिसका अर्थ पारा या पारद (धातु) होता है। पारद एक ऐसी धातु है जो अपनी तरलता, घनत्व, तीव्रगति, और स्वरूप परिवर्तनशीलता के लिये प्रसिद्ध है। बुध भी पारद के तुल्य ही ग्रहों के सम्पर्क में आने में उनकी युति, दृष्टि और स्थिति आदि के अनुकूल अपने को तत्काल तद्रूप बना लेता है। दूसरे ग्रहों से इसका संपर्क प्रभावोत्पादक नहीं होने पाता क्योंकि जिसके साथ यह बैठ जाता है या अन्य सम्बन्ध स्थापित करता है उसी के ऐसा तत्काल हो जाता है। यह लक्षण बालकों में विशेष पाया जाता है। पापों के साथ वह पाप और शुभों के साथ वह परम्परा से ही शुभग्रह गिना जाता है। ग्रह की इस प्रकृति के कारण इसकी भावगत स्थिति का पता आकृति से कैसे चलता है यह आगे चलकर विदित होगा।

बुध के प्रभाव से उत्पन्न मनुष्याकृति में पाये जाने वाले लक्षणों के अध्ययन के लिये निम्नोक्त अंगों और विषयों पर ध्यान देना युक्तिसंगत होगा :—

(क) मुख,

(ख) ललाट,

(ग) बाल,

(घ) भौंह,

(ङ) आँख,

(च) गाल,

(छ) नासिका,

(ज) दन्तपंक्ति,

(झ) ओष्ठ,

(ञ) त्वचा,

(ट) बातें करने का ढंग,

(ठ) रक्त,

(ड) वर्ण,

(ढ) कद,

(ण) स्वभाव और

(त) शरीर की सर्वांगीण साधारण बनावट ।

अन्य ग्रहों की युति, दृष्टि और स्थिति से उत्पन्न विशेष लक्षणों का वर्णन उक्त अंगादि के वर्णन में ही प्रसंगवश किया गया है ।

(क) **मुख**—गोलाकार मुख बुध प्रभावजनित होता है । ध्यानपूर्वक देखने पर ऊपर से ठुड्ढी तक की लम्बाई और दोनों कनपटियों के अग्रभागों के बीच की चौड़ाई लगभग समान लगें, गाल दोनों ओर पूए की नाईं फूले हुए लगें (मानों दोनों ओर छोटे-छोटे ढाल रखे हों वा गेंद के टुकड़े रखे हों) और त्वचा गोरी और कोमल हो तो समझें कि बुध लग्न में वा चन्द्र लग्न में है । कदाचित् ही वह लग्न या चन्द्र लग्न से सटे हुए अगल-बगल मिले । ऐसी स्थिति में सम्बद्ध प्राप्त मूल कुण्डली के गणित की पुनः सूक्ष्म जाँच करनी चाहिए । कई बार आप देखेंगे कि लग्न शुद्ध-शुद्ध वही है जहाँ बुध बैठा है और आप स्वयं अपने अनुमान और ग्रहजनित प्रभाव की अव्यर्थता पर चकित हो जायेंगे ।

स्मरण रहे कि उक्त प्रकार की मुख की गोलाई के साथ सारी मुखाकृति पर चिकनाहट वा स्निग्धता के पूर्ण चिह्न उपस्थित पाये जाते हैं । आकृति कहीं से रुखड़ी नहीं पाई जाती बल्कि चिकनी और फुन्सियों से रहित पाई जाती है । सारा मुखमंडल भरा हुआ लगता है । यदि इन सब लक्षणों के होते हुए भी गाल पचके मिलें तो बुध की लग्नस्थिति को कभी स्वीकार (अनुमानते समय) नहीं करनी चाहिए । आवश्यक हो तो मूल गणित को जाँच के पश्चात् ही उसमें अपना मत स्थिर करें ।

चेहरे को देखते ही उसकी बालसरलता और आभ्यन्तरिक प्रसन्नता टपकती पड़ती है । रक्त स्वच्छ और कभी-कभी चमड़े से (त्वचा के आवरण) फूट-फूट

कर छिटकने को तैयार-सा प्रतीत होता है। बुध की लग्न स्थिति के इस पहचान को मुखाकृति के अध्ययन क्षण में कभी विस्मरण नहीं करना चाहिए।

(ख) **ललाट**—बुध के प्रभाव का सूचक ललाट ठीक अर्धचन्द्राकार वा धनुषाकार वाला वर्तुलत्व का होता है। वह आयताकार साधारण ललाट-सा कभी नहीं होता। तात्पर्य यह कि बुध के प्रभाव से बना ललाट ऊपर के दोनों कोनों में विस्तृत रूप से दूर तक बालों के भीतर प्रविष्ट नहीं रहता बल्कि बाल दोनों ही कोनों को उगकर पूर्ण आच्छादित करते हुए उन्हें (कोनों को) समाप्त ही कर डालते हैं। कोने मानों हो ही नहीं ऐसे विलुप्त हो जाते हैं और ललाट को वहाँ भोंड़ा कर डालते हैं जिससे सामने से वह धनुषाकार लगने लगता है। ऊपर के दोनों कोने, ललाट के, लोमरहित शिर के बालों के भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं तो ललाटाकृति आयताकार हो जाती है जो बुध का लक्षण नहीं है। यह नहीं कि एक भी ललाट बुध के लग्नस्थ होने पर आयताकार वा कोनीला वा कोरदार न पाया जावे पर ऐसा लगभग नहीं ही होता और विशिष्ट कारणवश मिलता भी है तो वह नियम के प्रतिवादस्वरूप ही। बुध प्रभावित धनुषाकार ललाट प्रायः कोणीला वा कोरदार न होकर भोंड़ा होता है। इसका स्पष्ट मायने यह भी हुआ कि ललाट मध्य में ऊपर बाल ललाट को पार कर नीचे तक उगे से लगते हैं।

(ग) **बाल**—बुध के प्रभाव में बाल घने, काले और कोमल पाये जाते हैं। यही बात शनि के लग्नस्थ रहने पर भी पाई जाती है पर दोनों में विभेद यही है कि बुध के प्रभाव में बाल चिकने, पतले और कोमल होते हैं। शनि के प्रभाव में वे रुखड़े, मोटे और कड़े होते हैं। एक में बारीकी (सूक्ष्मता) और दूसरे में मोटापन पाया जाता है। एक में नवीनता और सजीवता तो दूसरे में प्रौढ़ता और निर्जीवता के लक्षण दृष्टिगत होते हैं।

इस विभेद को ध्यान में रखने से किस ग्रह के प्रभाव में उत्पन्न बाल हैं इसकी पहचान में कोई विशेष अड़चन नहीं होती।

(घ) **भौंह**—बुध के प्रभाव में भौंहों के बाल और उनकी बनावट पर भी प्रभाव पड़ते देखा जाता है।

बनावट को लें तो भौंहों की बनावट बाँकदार होती है। अर्थात् भौंहों का आकार स्पष्ट पर्याप्त गोलाई लिये बनी होती है। साथ ही वे पर्याप्त सघन होती हैं (घनी)। शनि के प्रभाव वाली भौंहों का घनत्व तो बुध-सा ही होता है। (बल्कि कुछ अधिक ही होता है।) पर उनका बुध-सा बाँकदार होना अनिवार्य नहीं। वे

बाँकी न हो सीधी-सी और काफी घने बालों से युक्त हो सकती हैं। बालों में रूखड़ा-पन, मुटाई, और कड़ापन तो शनि के प्रभाव में होगा पर बुध से प्रभावित बाल यथोपरोक्त कोमल, चिकने और सूक्ष्म (महीन) होंगे। भौंहों को पहचानते समय अचूक होने के लिए आँखों को नहीं भूलना चाहिए। बुध की आँखों की पहचान में भूल होना तो स्वाभाविक है पर शनि की आँखों को कभी कोई विस्मृत नहीं कर सकता।

(ङ) **आँख** — बुध के प्रभाव से आँखों में सजीवता पैदा होती है। भीतर से मानों आँखों से हँसी फूटी पड़ती है। शुक्र के प्रभाव में आँखें कजरारी और कटारी होती हैं, गुरु के प्रभाव में आँखें गम्भीर, प्रभावशालिनी, विशाल और सौम्य होती हैं और बुध के प्रभाव में वे सजीव होती हैं। तीनों ही ग्रहों के प्रभाव में आँखें विशाल और कान्तिपूर्ण होती हैं पर जैसा ऊपर कहा गया है शुक्र के प्रभाव में आँखें कजरारी और बाँकदार होती हैं। उन्हें देखने से मोह और उनपर आसक्ति पैदा होती है। उसी प्रकार गुरु के प्रभाव में आँखों में विचारलीनता और प्रगाढ़ता होती है जिन्हें देख मनुष्य का अपना भाव गम्भीरता और श्रद्धा से भर जाता है। किन्तु बुध के प्रभाव में उन्हीं आँखों के देखने से उनमें न आसक्ति उत्पन्न होती न मनुष्य का भाव गम्भीर ही होता है पर आँखों की सजीवता ही उसे प्रभावित करती है। बालकों को देखने पर जैसे पहला भान उनकी सजीवता और सरलता का होता है, उसी प्रकार सयाने लोगों की आँखों में बुध का प्रभाव हो तो वे सजीव और सरल प्रतीत होंगी।

बुध की आँखें विशाल अवश्य होतीं पर उनमें बनावट की कोई खास अपनी विशेषता देख पड़े ऐसी बात नहीं। हाँ, उनके रोएँ श्वेत रंग के पर लाल धारीदार डोरों से भरे होते हैं। पुतली गाढ़ी, काली और कान्तिमान ही होती हैं।

संक्षेप में यह कि बुधजनित आँखों को निःसंदिग्ध यह जान लेने के लिए काफी अभ्यास की आवश्यकता है। जब तक अनेक उदाहरणों से देखते-देखते पहचान आँखों में जम न जाय तब तक अपने अनुमान पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता। इतना तोभी नहीं भूलना चाहिए कि जहाँ उक्त तीनों शुभ ग्रहों के प्रभाव-जनित लक्षणोपेत आँखें न जान पड़े बल्कि उनमें इनसे भिन्न स्पष्ट चिह्न देख पड़े वहाँ अवश्य समझा जा सकता है कि आँखें अन्यान्य ग्रह प्रभावित हैं और वहाँ अधिक विश्वासपूर्वक अन्य ग्रहों की युति, स्थिति और दृष्टि, दूसरे भाव में वा प्रथम भाव में अनुमित की जा सकती है। जिसके लक्षण अधिसंख्यक और अधिक स्पष्ट देख पड़ें उसकी ही स्थिति इत्यादि लग्न, द्वितीय वा द्वादश भाव में निर्भीकता से आदिष्ट की जा सकती है।

पुनरावृत्ति दोष होने पर भी यह उल्लेख कर देना यहाँ आवश्यक जान पड़ता है कि—८वें, ७वें और कभी-कभी किन्तु बहुत ही कम संख्या में छठे भाव में बैठे हुए ग्रहों की छाप भी पूरे तौर पर आँखों पर पड़ती है विशेषकर जब बुध और शुक्र एक साथ वा अलग-अलग ८वें भाव में अवस्थित हों।

(च) गाल—ऊपर इस सम्बन्ध में कई बार प्रसंगवश यह उल्लिखित हो चुका है कि बुध के कारण दोनों गाल अर्द्धवृत्ताकार रूप में मुख की दोनों ओर गेन्द के टुकड़ों की नाईं सटे पाये जाते हैं। जहाँ ऐसा स्पष्ट दृष्टिगत न होवे वहाँ बिना अन्य विशिष्ट कारण के बुध की लग्नस्थिति के अनुमान का प्रयास या ध्यान छोड़ देना चाहिए। गालों का यह वर्तुलत्व, एक बार पहचान लेने पर, बुध की पहचान के अव्यर्थ लक्षणों में से एक हैं। पुए की नाईं दोनों ओर फूले हुए गाल देखने से चेहरे को गोलठोल और चिकना तो बनाते ही हैं त्वचा को भी कोमलता प्रदान करते हैं पर चेहरे को सब मिलाकर देखने में कुछ भोंड़ा बना डालते हैं।

बुध के चेहरे की काट और गुरु के चेहरे की काट में यही तो विभेद है। जहाँ भरे चेहरे में नुकीलापन और ग्रीक काट मिले वहाँ वह बुध से प्रभावित नहीं होगा। गालों के दोनों ओर उठे हुए होने के कारण, ललाट के ऊपरी दोनों कोने दबे प्रतीत होते हैं और बाल और भौहों के बीच का ललाटस्थल चौथ चन्दे की नाईं अर्धवृत्ताकार (चापीय रूप में) प्रतीत पड़ता है। बालों में दोनों ओर ललाट के कोनों के घुसे हुए होने से भी ललाट ऊपर से कोनों पर संकुचित-सा होकर छोटा (या पतला) लगने लगता है। बाल प्रायः घने उगे होते और कोमल होते हुए भी मोटे ही होते हैं। गालों पर मेद का भारीपन और आधिक्य (प्रचुरता) और रक्त का प्राधान्य होता है। त्वचा स्निग्ध, चिकनी और ओजस्विनी होती हैं।

(छ) नासिका—बुध के प्रभाव में नासिका मझोले ही कद की और थोथरी ही होती है। नासिका नुकीली, पतली, और लम्बी तो होती ही नहीं। ऐसी नासिका भी बुध की नहीं होती जो सुग्गे के ठोर की नाईं उठी और झुकी या टेढ़ी हो। नाक नाटी-सी मोटी, नासाग्र में भद्दी और मोटी-सी और उसके छिद्र वर्तुलाकार सामने से पूरे दिखलाई पड़ने वाले कि आपकी दृष्टि छिद्र के भीतर भी चली जाय। सब मिलाकर नाक पसरी हुई-सी लगती और साधारण कद की ही जान पड़ती है। ऐसा हो कर वर्तुलत्व में इसके कारण बाधा तो पड़ती ही नहीं बल्कि उसमें उसका सहयोग ही मिलता है। बुध से स्पष्ट प्रभावित नासिका के अव्यर्थ चिह्न अभी अवगत नहीं हो पाये हैं।

(ज) दंत पंक्ति—अकेला बुध दन्तपंक्ति को मध्यम आकार के दाँतों से सुसज्जित सघन और दीप्तिमयी बना देता है। ऊपर और नीचे वाली दोनों ही

पंक्तियाँ गठीली, उजली, चमकीली और सीधी बैठी होती हैं। बुध के साथ सूर्य के रहने पर उपरले सामने वाले बिचले दोनों दाँत आगे की ओर को निकलते से देख पड़ते हैं। उसी प्रकार अन्यान्य ग्रहों की युति से थोड़ा-बहुत परिवर्तन देख पड़ेगा। पर उनकी ठीक पहचान अभी हो नहीं पायी है। मंगल और बुध जब लग्नस्थ होते हैं तो दन्तपंक्ति और दाँतों के आकार के मझोले कद में तो विभेद नहीं पड़ता पर दाँत पुष्ट देख पड़ते हैं और उनकी दृढ़ता स्पष्ट टपकती रहती है। राहु-बुध युति या एकत्र स्थिति में राहु के प्रभाव निखर आते हैं और चेहरा पचकीला हो जाता है। शुक्र-बुध युति दन्तपंक्ति को सुन्दर आकर्षक बनाती हुई वाक्य-चातुर्य्य से भर देती है। बुध-चन्द्र में भी दन्तपंक्ति में बुध ही का प्रभाव निखर आता है। बुध-गुरु युति में दाँत गुरु से ही प्रभावित होते हैं। बुध-शनि युति में दाँत शनि से ही अधिक प्रभावित देख पड़ते हैं। केतु-बुध संगति में दाँत या तो केतु से अकेला या बुध से ही अकेला प्रभावित मिलते हैं। मिश्रित फल देखने को नहीं मिलता।

(झ) ओष्ठ—बुध लग्नस्थ हो तो ओठ पतले, सुबुक और रक्ताधिक्य बतलाने वाले लाल होते हैं। ओठों के बैठे रहने पर दोनों किनारे के बीच कुछ भी स्थान नहीं बचता। उभड़े हुए तो वे कभी देख ही नहीं पड़ते। मुँह छोटा और ओठ एक दूसरे से पूर्ण चिपके हुए रहते हैं।

(ञ) त्वचा—बुध के प्रभाव में त्वचा अत्यन्त मुलायम सजीव देख पड़ती है। कहीं उसमें रुखड़ापन प्रकट नहीं हो पाता। लग्नस्थ बुध होने पर त्वचा को यह दशा सारे शरीर में एक-सी पायी जाती है। त्वचा देखने में हल्की और पतली लगती है। भीतर से रक्त फूट पड़ता-सा भी देख पड़ता है विशेषकर यदि बुध चन्द्र लग्नस्थ हो अर्थात् चन्द्र बुध की युति हो। त्वचा का रंग सुवर्णवत् और चमकदार होता है। त्वचा की स्निग्धता और चारुता ही बुध के प्रभाव की द्योतिकायें होती हैं।

इस सम्बन्ध में उपरोक्त बातों के अतिरिक्त देश, काल और पात्र पर भी ध्यान रखना नितांत आवश्यक है। एक अंग्रेज, एक हब्शी, एक अरब, एक जापानी और एक चीनी सज्जनों की गोराई को तौलते समय अपने को पर्याप्त सतर्क रखना पड़ेगा। इसी प्रकार देश, काल आदि का ध्यान रख अपने विषयानुकूल विभेद करना नितान्त आवश्यक होगा।

त्वचा में स्थित लोम भी जो आगे चलकर बालों में विकसित हो जाते हैं। बुध की पहचान में पर्याप्त सहायक होंगे। बुधजनित लोम छरहरे जमते और कोमल होते हैं। रंग प्रायः भूरा होता है जो प्रौढ़ावस्था में भी पूर्ण काला नहीं हो

पाता। गुरु और शुक्र का कोई अपना विशेष प्रभाव लोमों पर पड़ते दृष्टिगत नहीं हुआ पर शनि राहु आदि का प्रभाव तो स्पष्ट देख पड़ा है। शनि के समान ही राहु केतु का भी प्रभाव पड़ा करता है।

शनि के कारण शरीर में रोमों वा लोमों की बहुतायत होती है। जहाँ लोम होंगे वहाँ वे पूरे सघन रूप में पैदा होंगे बल्कि कुछ रोम तो वहाँ भी पैदा हो जायेंगे जहाँ साधारणावस्था में उनके होने की कोई आशा नहीं की जाती।

सघनता के साथ शनि प्रभावजनित रोमों में काठिन्य और रुखड़ापन होता है। सबसे बड़ी बात यह है कि लोम आवश्यकता से अधिक काले होते हैं। उक्त कारणों के विभेद से बुध के रोम भलीभाँति बिलगाये जा सकते हैं।

ऊपर कहा ही जा चुका है कि त्वचा का वर्ण दीप्त गौर और सोने के वर्ण-सा चमकता दिखलाई पड़ता है। यह एक स्वस्थ और पुष्ट त्वचा का लक्षण है। नारायण भट्ट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ चमत्कार चिंतामणि में जना दिव्यचामीकरीभूतदेहाः लिखकर बुधजनित त्वचा के वर्ण और उसकी पुष्टि और स्वास्थ्य की ओर संकेत किया हैं।

तात्पर्य यह कि लग्नस्थित बुधजनित त्वचा, कोमल, पुष्ट, स्वस्थ, स्पर्श में अतिकोमल वर्ण में सोने-सा दीप्त और कोमल-कोमल भूरे रंग के छरहरेदार लोमों से युक्त होती है।

(ट) **वार्तालाप**—बुध लग्नस्थ हो तो मनुष्य की बोलचाल के ढंग में एक प्रकार का लजीलापन होता है और वह हँसकर बातें करने की प्रवृत्ति रखता है। हँसना मानों उसकी प्रकृतिप्रदत्त निधि है जिसे वह सर्वदा अपने मुखमंडल पर लिये फिरता हो। यह बात केवल बुध के अकेले लग्न में पड़ने पर ही अप्रयास ज्ञातव्य रूप में उपस्थित होती है।

सूर्य, शनि, राहु और मंगल के साथ बुध के होने पर इस लक्षण में अनेक महान् अन्तर सहयोगी ग्रहों की प्रकृति के अनुकूल होते देखे जाते हैं। देखें चित्रांक ६०।

अवस्था ज्यों-ज्यों प्रौढ़ और बढ़ती जाती है त्यों-त्यों व्यावहारिक अनुभवों की कटुता से मनुष्य की गम्भीरता सहज बढ़ती जाती है। अतः लग्नस्थ बुध की दशा में भी यद्यपि हँसमुखी स्वभाव में सम्यक् अन्तर अवश्य आ जाता है तो भी प्रकृतिप्रदत्त हार्दिक प्रसन्नता उसके बातचीत करने के ढंग में सदा झलकती रहती है। विभेद इतना ही है कि अवस्था ३६ के हो जाने पर यह बात कभी-कभी ध्यान

देने पर ही समझ में आती है। पर उससे कम अवस्था वाले व्यक्तियों में ऐसा नहीं करना पड़ता और उसकी प्रकृतिप्रदत्त हार्दिक प्रसन्नता, बात मुँह से निकलने के पहले ही फूटती पड़ती मिलती है। प्रयास के बिना ही आपके मानस पटल पर अनायास अंकित हो जाती है।

ऐसे मनुष्य का एक स्वभाव-सा हो जाता है कि बात निकलने के पूर्व वह मुस्कुरा अवश्य देता है। अधिकतर तो ऐसा होता कि न हँसने योग्य साधारण प्रसंग पर भी वह ठहाका लगा जाता है।

यह तो हुआ मुखमण्डल को व्याप्त रखनेवाला उसका प्रकृतिप्रदत्त हँसमुख स्वभाव। किंतु इसके साथ-साथ वह बातूनी भी हुआ करता है। बोलता वह बहुत है। यदि व्यक्तित्व अन्य प्रकार प्रतिभाशाली हुआ तब तो वह बात बिल्कुल असंगत-सा नहीं करता और अपनी लच्छेदार लम्बी बातों की शृंखला में वह सदा उपयुक्त विचार ही सामने रखना जानता है। देखें चित्रांक १२। पर यदि व्यक्तित्व साधारण या उससे भी निम्नकोटि का हुआ तो उसकी बातें अनेकांश में निरर्थक, अप्रासंगिक और अनुपयुक्त हुआ करती हैं। तौ भी उसका पेट बोलने से भरता नहीं है। निम्न कोटि के व्यक्तित्व में वह सौ में साठ झूठी (गलत) बातें बकता है पर तौ भी यह भान उसे नहीं होता कि श्रोता उसकी बातों पर विश्वास नहीं कर रहे हैं। न उस ओर घ्यान देना चाहते हैं। पापाक्रान्त बुध के साथ यदि एक से अधिक पापग्रह लग्नस्थ अथवा द्वितीयस्थ नहीं हो तो उसकी झूठ की कोई सीमा नहीं होती। और वह धूर्त और ठग होता है। बातों में फँसाने में सिद्धहस्त और अपने काम में निःसंकोची होता है। अकेला बुध नीचस्थ होने पर ही कदाचित् ऐसा व्यक्ति कभी-कभी दृष्टिगत हो।

दो प्रकार के व्यक्ति लग्नस्थ बुध में बातों का ढंग भिन्न-भिन्न रखते हुए पाये जाते हैं। एक तो ऐसे जो पूरी शक्ति के साथ ठहाका मारते जाते और वह भी आवश्यकता से अधिक। दूसरे ऐसे कि मुस्कुराहट और हँसी तो प्राकृतिक उनके मुख और ओठों पर होती ही है पर वे बड़ी धीमी-धीमी आवाज में बातें करते और अपनी ओर से इतनी कोमलता और दैन्य का पुट अपनी बातें करने के ढंग में भरते जाते कि देखते ही बनता है।

लम्बी बातों की शृंखला दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों में पाई जाती है। पर दूसरी कोटि के व्यक्ति भयावह होते हैं। अपना मनोरथ सिद्ध करने के अभिप्राय से इस कोटि का व्यक्ति कोई भी अघट काम कर सकता है। ऐसे व्यक्ति का बुध अकेला कभी नहीं पाया जाता। वह सदा किसी-न-किसी पाप ग्रह के साथ बैठा पाया जाता है। जिस

ग्रह के साथ वह रहता उसके स्वभाव आदि के अनुकूल व्यवहार करके वह अपनी मनोरथ सिद्धि का अत्यन्त इच्छुक होता है और थोड़ा ध्यान देते ही उसकी इस प्रकृति का पता भी झट चल जाता है।

आवश्यकता पड़ने पर, और अकाट्य रूप से, किसी समय बातें करने का ढंग ही बुध की स्थिति का निःसंदिग्ध प्रदर्शक मानना चाहिए। लग्नस्थ बुध वाला जातक जब बातें करने लगता है तो उसके हृदय से प्रसन्नता फूटी पड़ती है जो उसके मुख पर हँसी होकर निकल बहती है। बिना मधुर स्मृति के ऐसा जातक कोई बात मुँह से निकाल ही नहीं सकता। बात निकलने के पहले उसके दाँत हँसी से झलक जाते और वह हँस कर बात निकालता या प्रत्येक शब्द के निकलने के पहले उसकी स्मिति ही निकलती है। जहाँ इस प्रकार का हँसमुख चेहरा न हो वहाँ लग्न या चन्द्र लग्न के साथ बुध की स्थिति का अनुमान बिना किसी विशेष कारण के नहीं करना चाहिए।

स्मितिपूर्वक बात करने के साथ ही ऐसा जातक वाचाल होता है। बोलना मानों उसका स्वभाव हो और चुप रहना उसकी बनावटी साधना। जहाँ किसी व्यक्ति में यह उसका स्वभाव-सा दिख पड़े कि यदि उसे रोका और टोका न जाय तो वह अपनी बात समाप्त करने की ओर सावधान नहीं होता तो वहाँ प्रायः निश्चित रूप से बुध का लग्नस्थ होना या चन्द्रयुत होना अनुमान किया जा सकता है। बुध के बलानुमान से जातक सारगर्भित या निःसार बातें करता पाया जायगा। बुध यदि दूषित हुआ जैसे राहु, केतु या शनि से युत होकर तो वह अनर्गल प्रलापी भी हो सकता है। कभी-कभी झूठ का पुट भी उसमें विशेष होगा और वह दूसरों को अपनी बात कह देने का समय ही नहीं देना चाहता और अपनी बातों का लच्छा बनाये ही रखना चाहता है। यदि बुध बलवान् हुआ तो वह वाग्मी होता है और अपनी कथन के लिये आवश्यक शब्द उसे अनायास फूटे पड़ते हैं। अतः हँसमुख चेहरा हो बात करने से पहले हँसी-सी फूटी पड़े और बिना स्मिति के किसी समय अपनी बात नहीं कहने की ओर का झुकाव हो और मनुष्य बातूनी, वाचाल, आवश्यकता से अधिक बोलनेवाला, वाग्मी, वाक्य चातुर्ययुक्त मधुरभाषी, वक्ता और वाक्पटु देख पड़े तो बुध लग्न या चन्द्र लग्न में अवश्य पाया जायगा।

उसकी स्मिता, हँसी या हँसमुखपना अनेक रूप ले सकता है। साधारण हँसी से लेकर ठहाके तक इसी में आते हैं। दिल्लगी की बातों से लेकर ठगी की बातों तक का समावेश उसी में होता है। सभी बातों में उसका ढंग अपनापन लिये होता है। वाग्जाल से ही अपना कार्य सिद्ध कर सकने में वह पटु होता है। बुध की बातों के ढंग को एक बार पकड़ पाने पर उसके सहारे बुध का लग्नस्थ होना अचूक अनुमान किया जा सकता है।

पापाक्रान्त लग्नस्थ बुध वाला व्यक्ति अपने सहयोगी ग्रहों की प्रकृति के अनुकूल अपने मनोरथ की सिद्धि के लिये कार्य के महत्त्व पर दृष्टि रख कर व्यक्ति अवसर आते ही आज जिससे वह घुल-घुल कर लम्बी बातें करता है उसी के विरुद्ध कपट व्यवहार कर उसे नष्ट कर डालने में संकोचहीन होने की प्रकृति रखनेवाला होता है। हिंसा, चोरी, असत्य, पापाचार, व्यभिचार; ठगी इत्यादि कोई व्यवहार आवश्यक होने पर उसके लिये असम्भव और अग्रहणीय नहीं है।

इसके विपरीत शुद्ध बुध अकेला लग्नस्थ या द्वितीयस्थ हो तो उसके अनुकूल वह व्यक्ति कम वा बेसी काल तक यथा अवसर झूठ-सच बातों की श्रृंखला चलाये रखने की प्रवृत्ति रख सकता है पर घात कर्म करने पर कदाचित् ही वह उतारू हो। अधिकांश अवस्था में तो वह सज्जन ही पाया जाता और सद्व्यवहार कुशल ही होता है।

नीचस्थ बुध लग्न में हो तो मनुष्य बहुत अनर्गल प्रलाप करने वाला होता है। उसकी बक-बक से छुटकारा पाना सरल नहीं होता।

पापग्रहों के साथ बुध कुटिल कर्मों की प्रवृत्ति डालता पर नीचस्थ या निर्बल अकेला बुध लग्न में मनुष्य को अनर्गल प्रलापी ही बनाता है।

जिसकी कुण्डली में मिथुन का बुध द्वितीयस्थ हो वा एकादशस्थ हो तो वह मनुष्य अपनी वक्तृत्व शक्ति में अद्वितीय होता है।

जिसकी कुण्डली में बुध बली होकर चौथे घर में बैठा होता है वह व्यक्ति प्रसिद्ध लेखक वा प्रसिद्ध बाजीगर (Magician) होता है। पहलवान हो तो कुश्ती और मल्लयुद्ध के दाव-पेंच में बड़ा ही सिद्धहस्त होता है।

(ठ) **रक्त**—चन्द्र लग्न और लग्न दोनों में से उसका प्रभाव मनुष्य के रक्त पर स्पष्ट दृष्टिगत होता है। स्मरण रहे कि यह प्रभाव यदि बुध अकेला रहे तभी विशिष्ट होता है अन्यथा उसका प्रभाव तिरोहित-सा रहता है। तात्पर्य यह कि यदि बुध के साथ अन्य ग्रह बैठें तो, जैसे राहु, केतु, शनि, मंगल, गुरु और शुक्र आदि बैठ जाय तो रक्त पर बुध का प्रभाव इतना सूक्ष्म होता है कि उसको पूर्ण शिक्षित और अभ्यस्त दृष्टि ही सफल पहचान कर सकती है।

तो बुध लग्न वा चन्द्र के साथ हो तो मनुष्य का रंग और त्वचा इतनी कोमल और अंगों की बनावट इतनी गोल-गोल और सुडौल होती है कि मानों रक्त इनमें से फूट-फूट कर बाहर टपकने जा रहा हो। यह बात चन्द्र के साथ बुध के होने से विशेष प्रतिफलित देखी गई है।

इतना अवश्य है कि बुध के प्रभाव में शरीर में रक्त की बाढ़ होती है जिसके ही कारण उसकी त्वचा कोमल और ओजपूर्ण होती है। बुध यदि पापाक्रान्त हो जैसे राहु-केतु के साथ तो वह मनुष्य में चर्मरोग उत्पन्न करता है। तब त्वचा रुखड़ी भी मिल सकती है पर यह दूषित प्रभाव शनि ग्रह का ही होगा जिससे शनि ग्रह की पहचान और अभ्यस्त होने पर वहाँ बुध की पहचान भी हो सकती है। कम-से-कम इसी दूषित चर्म के सहारे दोनों को एकत्र स्थिति का अनुमान अवश्य हो सकता है। बुध के प्रभाव में रक्त का अनुमान अवश्य हो सकता है। बुध के प्रभाव में रक्त का रंग लाल या गौर लाल होता है अन्य ग्रह के प्रभाव में भी रक्त के इस रंगत में विभेद होता है।

(ङ) **वर्ण**—बुध का अपना वर्ण शास्त्रों में वर्णित अपना हरा है पर अकेला बुध लग्न में या चन्द्र लग्न में पड़ने पर वह मनुष्य को स्वच्छ गौर वर्ण प्रदान करता है। बुध के प्रभाव के वर्ण को स्वच्छ गोरा स्वर्णिम कह सकते हैं। गेहुआं गोराई अमिश्रित बुध की नहीं होती। बुध को त्वचा का कारक कहते हैं। कोई अन्य ग्रह इसके साथ बैठकर इसके रंग में इसीलिए विभेद तो उत्पन्न कर सकता है पर उस लक्षण से बुध का अचूक अनुमान नहीं किया जा सकता है जहाँ मनुष्य की गोराई स्वच्छ और सुनहला हो वहाँ उसे बुध का अपना समझना चाहिए जिससे उसकी स्थिति का पता लग जाता है। गुरु के साथ बुध हो तो वह मनुष्य को वृहत्काय तो करता पर उतना गौर नहीं बनाता। राहु और केतु और शनि के साथ रंग गेहुंआना वा श्याम कर डालता है। मंगल के साथ वर्ण गौर ही रहता है।

(ढ) **बाल**—लग्नस्थ बुध हो तो बाल सूक्ष्म, छेहरा, और हलके-काले रंग वा भूरे रंग के होते हैं। शनि के प्रभाव में बाल जहाँ काले और सघन पर कड़े होते हैं वहाँ बुध के प्रभाव में वे विरले काले तो होते पर सघन नहीं जमते विशेषकर भौंहों में। हर हालत में वे कोमल और सूक्ष्म जरूर होते हैं। बुध के प्रभाव वाला काला रंग हल्का होता है। रोमावली सारे शरीर में होती है पर पेट में विशेष होती है।

(ण) **कद**—कद पर बुध का कुछ वैसा प्रभाव देखने में नहीं आया पर वह नाटा कदाचित ही होने देता है जैसा ग्रह के साथ रहा वैसा फल देता है। राहु, केतु और सूर्य के साथ वह मनुष्य को लम्बा ही बनाता है। वृहस्पति के साथ हो तो बदन काफी फुलकार, विशाल और कद मझोला देता है।

मंगल बुध युति हो तो शरीर छरहरा, लम्बा और फुर्तीला करता है। शरीर में मेद की अधिकता होने नहीं पाती जिससे यह भी स्पष्ट है कि तोंद कभी निकलने नहीं पाता। (चित्रांक ४७, ३३ और २४)।

सारांश यह कि बुध स्वतः अकेला कद लम्बा और तगड़ा ही देता है। शरीर नीरोग और चमकदार बनाता है। दूसरे ग्रहों के साथ बैठकर वह कद को स्वयं प्रभावित करता नहीं जान पड़ता और वह अपना प्रभाव खो-सा देता है। जैसे ग्रह के साथ पड़ता वैसा कद बनने देता है। अतः कद से बुध का निश्चित अनुमान नहीं होता।

(त) स्वभाव—बलवान् बुध यदि लग्नस्थ अथवा चन्द्र लग्नस्थ हो तो वह मनुष्य को बालवत सरल स्वभाव का बनाता है। मनुष्य कामकाजी, चुस्त और अध्यवसायी होता है। हँसी और प्रसन्नता उसकी प्रत्येक गतिविधि में टपकती रहती है। बुध वाला व्यक्ति स्वभाव का मृदु होता है। नम्र, विनीत पर वह चतुर होते है। साथ ही वह आत्मविश्वासी और उत्तर प्रत्युत्तर देने में कुशल होता है। बलवान बुध वाले व्यक्ति कभी शीघ्र क्रोधित नहीं होते पर स्वभावतः वे अपना दाव देखने और उसपर चलने में प्रवीण होते हैं। यों साधारण मिलनसारी उनकी बालवत होती है और वे सदा प्रसन्न वदन और विनीत रूप में मिलते हैं। मुख पर कोमलशीलता का भाव रखने और शीलवान बने रहने की इच्छा के कारण उनके मुख पर लजालुपने की झलक होती है।

पर यदि अन्य पापग्रह साथ हों वा उनकी पूर्ण दृष्टि पड़ती हो तो स्वभाव सरल न होकर वह चातुर्यपूर्ण और कुटिल हो जाता है। शुभग्रहों की युति में फल मिश्रित तो होता पर स्वभाव की सुन्दरता नष्ट नहीं होने पाती। वृहस्पति का साथ हो तो मनुष्य विद्या व्यसनी और शुक्र का साथ हो तो विनोदी और कलायुक्त होता है। मनुष्य व्यवहारं विनम्र और विलासी-विश्रामप्रिय हो जाता है। शुक्र-बुध युति द्वितीयस्थ हो वा बुध चन्द्रयुति वहाँ हो तो मद्यपान आदि भी स्वभावगत हो जाता है।

(थ) साधारण बनावट—ऊपर शरीर की साधारण बनावट की अनेक बातों पर प्रसंगानुसार ही प्रकाश डाला जा चुका है। अतः साधारण बात की कोई विशेष बात कठिनता से कहने को अवशेष रह गई है।

बुध के प्रभाव में शरीर स्थूल नहीं होने पाता। कद लम्बा और देखने में चौरस जान पड़ता और बाहुओं में स्फूर्ति तथा पराक्रम वर्त्तमान होता है। पापाक्रान्त न हो तो बुध सचमुच स्वास्थ्य से शरीर को सोने के समान चमकाये रहता है।

चाल स्फूर्तिमयी और व्यवहार सादा पर गम्भीर और दूरदर्शी ही होता है।

हाथ-पैर सूखे कभी दृष्टिगत नहीं होते पर मेद-प्रधान कदापि नहीं हो पाते। हाथ और पैरों की बनावट वर्तुलाकार होने की ओर का झुकाव रखती और साधारण पुष्टि और तुष्टि अंग-प्रत्यंग में वर्तमान् रहती है।

ऊपर जो अंग-प्रत्यंग को लक्ष्य कर बुध की पहचान के लक्षणों का कुछ विस्तृत वर्णन देने का प्रयत्न किया गया है इसके दो प्रधान कारण हैं। पहला तो यह कि बुध की पहचान के अव्यर्थ सुनहले लक्षण अधिक संख्या में निश्चित नहीं किये जा सके हैं। अतः जो भी साधारण लक्षण अंग-प्रत्यंग में अबतक देखने में आ चुके हैं उनका उल्लेख इसलिये कर देना आवश्यक हुआ कि उनपर ध्यान आकर्षित कर विज्ञ पाठकों के हाथों में अधिक-से-अधिक वर्णित लक्षण रहें कि उन सब का नहीं तो उनमें से बहुसंख्यक लक्षणों का भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में और व्यक्तियों में प्रयोग कर बुध की स्थिति को अनुमित करने में पाठकों को आधारभूत संकेतों के उल्लेख के अभाव का अनुभव न होने पावे। अर्थात् पाठकों के समक्ष अधिक-से-अधिक संख्या में अनुभूत वा अननुभूत लक्षणों का वर्णन उपलब्ध रहे कि वे यथावसर उनमें से किसी न किसी का उपयोग कर वस्तुस्थिति का अनुभव प्राप्त करते हुए बुध के अव्यर्थ लक्षणों की कोटि की सूची में स्थायी परिवर्तन कर सकें।

दूसरा कारण यह है कि किसी भी व्यक्ति में सब लक्षण एक साथ वर्तमान नहीं होते। किसी में कोई तो किसी में कोई लक्षण वर्तमान पाये जाते हैं। इसका कारण भी स्पष्ट है कि भिन्न-भिन्न ग्रह भी कुण्डली में प्राप्त अपने स्थान से तत्सम्बन्धी शारीरिक अवयवों को अपने गुणानुरूप प्रभावित करते हुए बुध या अन्य किसी भी ग्रह के लक्षणों को दबाकर अन्तर्निहित कर देते हैं। अतः यहाँ अन्य ग्रहों का अपना प्रभाव बलिष्ठ और अधिकतर प्रत्यक्षता और प्रधानता प्राप्त किये होता है वहाँ बुध या अन्य ऐसे किसी दूसरे ग्रह का प्रभाव तिरोहित-सा हो जाता है तथा अनुभूत सूक्ष्म दर्शन से ही उन्हें पकड़ा जा सकता है। अतः पाठकों को ज्ञात सभी लक्षणों का सदा पता रहना अत्यन्त आवश्यक था कि वे उनमें से किसी लक्षण को कहीं स्पष्टतर पाकर उसका उपयोग वे कर सकें। इसी में प्रस्तुत शास्त्र की भावी उन्नति की जड़ आरो-पित है।

स्मरण रहे कि बुध की लग्नस्थिति का सुवर्ण घटित अनुभूत और अव्यर्थ पहला लक्षण है मानव की मुखाकृति पर सदा विराजमान चेहरे की प्रसन्नता और उसकी मुस्कुराहट। बिना मुस्कुराये या खुलकर हँसते हुए अपनी सारी दंतपंक्ति की दुधिया युति को दर्शाये लग्नस्थ बुध वाला व्यक्ति रह नहीं सकता। ध्यान रहे कि अन्य ग्रहों की दृष्टि और युति के कारण इसमें भी न्यूनाधिकता उपलब्ध ही रहती है और इसपर ध्यान रखना हमें अपने स्वभाव का अंग ही बना लेना चाहिये।

रंग गोरा और दुधिया होना उसकी दूसरी पहचान है पर अव्यर्थ नहीं। अतः रंग और कद लम्बा मिले तो बुध के प्रभाव की अपेक्षा करनी चाहिये।

उक्त अवस्था में शरीर के अवयवों की कोमलता और उनका वर्तुलाकार गठन हो तो लग्नस्थ वा चन्द्र लग्नस्थ बुध के होने का अनुमान अत्यन्त निश्चय रूप से दृढ़ता प्राप्त करता है।

लग्नस्थ बुध के कारण मनुष्य हँस और मुस्कुरा कर बातें तो करता ही है पर, साथ ही, जैसा ऊपर कहा जा चुका है बातूनी भी वह अवश्य होता है। जहाँ मनुष्य को अधिक बातें करने का अभ्यस्त-सा पावें वहाँ यदि प्रसन्नतापूर्वक हँस वा मुस्कुराकर बातें करने की ओर की उसकी प्रवृत्ति हो तो निसंदिग्ध रूप से बुध की लग्नस्थिति अनुमान करें।

इन कई अव्यर्थ लक्षणों के साथ यदि पूर्व निर्दिष्ट अनेक लक्षणों में एक वा अनेक और भी उपस्थित पाये जायँ तो बुध की पहचान स्पष्ट और निश्चित है। (देखें चित्रांक २७, ४१, ४८, ४९, ५०, ५२, ७५, ८१, और ८२)

●

एकादश प्रकरण

लग्न

अब तक जो लक्षण आकृतियों के वर्णन किये गये हैं वे सब ग्रहों की स्थिति की पहचान के थे। अर्थात् आकृतिगत लक्षण से चक्रगत ग्रहों की पहचान पर ही अब तक ध्यान दिया गया है। किन्तु ग्रहों के अपने-अपने विशेष लक्षण तो हैं ही पर भिन्न-भिन्न राशि सम्पर्कजनित भी इसके कुछ लक्षण इससे विलग हैं। इन दोनों प्रकार के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए उनका दिग्दर्शन करने का प्रयत्नगत पृष्ठों में भी प्रसंगवश किया गया है।

पर बिना ग्रहों के सम्पर्क के भी भिन्न-भिन्न राशियाँ मानव की आकृति में अपने-अपने लक्षण उत्पन्न करती हैं विशेषकर जब वे लग्न वा चन्द्र लग्न में पड़ें। इन लक्षणों का ज्ञान लग्नगत वा चन्द्राक्रान्त राशि के ज्ञान में अत्यन्त सहायक होगा अर्थात् बिना ग्रह की जो राशि लग्न में वा चन्द्रमा के साथ हो उसका अनुमान किया जा सकेगा।

अतः भिन्न-भिन्न राशियाँ लग्नगत हो क्या क्या लक्षण मनुष्याकृति में उत्पन्न करने की क्षमता रखती हैं उनका अध्ययन करना आवश्यक है।

लग्न वा चन्द्रलग्न इनमें से कौन इन चिह्नों को प्रकट करने में अधिक समर्थ है इस पर प्रचुर मतभेद है और साधारणतः मान लिया जाता है कि दोनों में जो अधिक बलवान् होगा उसी के अनुरूप मुखाकृति में चिह्न पैदा होंगे। एक उदाहरण से कहने का तात्पर्य अधिक स्पष्ट हो जायगा। जैसे यदि कुण्डली में देख पड़े कि लग्न तो तुला है पर चन्द्र लग्न सिंह है तो अत्र मुखाकृति में किस राशि के लक्षण स्पष्ट मिलेंगे यही देखना है। साधारण विचार से कहा जाता है कि इनमें जो बलवत्तर होगा अर्थात् तुला और सिंह राशियों में से जो अधिक बलवती होगी उसी के लक्षण आकृतिगत अधिक देख पड़ेंगे। नियम तो देखने में बड़ा सुन्दर और सलिल-सा प्रतीत होता है पर वस्तुतः ऐसी बात नहीं। पहले तो यही पता नहीं कि दो राशियों के बल तारतम्य के मापने के कोई निश्चित नियम हैं कि नहीं। कोई किसी बात पर तो कोई किसी बात पर अधिक निर्भर कर अपने मतानुकूल बलतारतम्य ठीक करता और एक ही व्यक्ति समय-समय पर कभी इस बात पर तो कभी दूसरी बात पर स्वयं अधिक निर्भर करता है। ऐसी दशा और मतैक्य के अभाव में ऐसे

नियम पर क्योंकर और कितना निर्भर किया जा सकता है इसे विज्ञ पाठक स्वयं विचार देखें।

प्रारम्भावस्था में जब लेखक ने इस अध्ययन की ओर अपना ध्यान दिया तो मुझे कई वर्षों तक ऐसा भान होता रहा कि इस विषय में चन्द्र लग्न को लोगों ने अकारण ही उतना महत्त्व दे रखा है जितना उसे नहीं मिलना चाहिये।

किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों लेखक के विचार इस पर परिवर्तित होते चले गये। तब पता चला कि मेरी पूर्ववर्ती धारणा में व्यापक और दीर्घ-कालीन अनुभव में पुट का नितान्त अभाव था। अब तो ऐसा जान पड़ता है कि अपने सभी पूर्वाचार्य, जिन्होंने चन्द्रलग्न को अधिक महत्त्व इस विषय में दिया था कहीं अधिक वस्तुस्थिति को समझते थे और उन्होंने चन्द्र लग्न को लग्न से अधिक महत्त्व दिया था।

अनुभव में तो अब यह आया कि अधिक संख्या में चन्द्र राशि का प्रभाव आकृति पर, विशेषकर मनुष्य की मुखाकृति की बनावट पर, लग्न की अपेक्षा विशेष पड़ता है। साथ ही यह बात भी ठीक नहीं कि लग्न राशि का प्रभाव मुखाकृति पर पड़ता ही न हो। अपना तो अनुभव है कि लग्न का भी प्रभाव मुखाकृति पर किसी प्रकार कम नहीं पड़ता। अर्थात् इस विषय में लग्न राशि और चन्द्र राशि दोनों को समान श्रेय प्राप्त है। किस अवस्था में लग्न प्रतिँफलित होगा और किस दशा में चन्द्र राशि प्रस्फुटित होगी इसके ज्ञान की ठीक रीति अभी तक अव्यर्थ रूप में निश्चित नहीं हो सकी है। इसलिये आकृति देखने पर यदि किसी मानव की आकृति में किसी राशि विशेष के चिह्न देख पड़े तो, उस राशि में लग्न वा चन्द्र का होना दोनों ही की सम्भावना मानना उचित होगा।

एक बात देखने में यह आई है कि जब लग्न में या उसके सन्निकट मुख्य ग्रहों की अवस्थिति होती है और चन्द्र राशि या उसके सन्निकट पार्श्व में अन्य किसी ग्रह का अवस्थान नहीं होता तो फल लग्नवत् होता है।

पर यदि लग्न रिक्त हो तो चन्द्र राशि में कम-से-कम एक ग्रह चन्द्रमा तो होता ही है अतः वह चन्द्रराशि आकृति प्रदान करने में सहायक होता है।

किन्तु जहाँ चन्द्र राशि और लग्न दोनों में ग्रह वर्तमान होते हैं विशेषकर समान-समान संख्याओं में, वहाँ आकृति से ठीक-ठीक कहना बड़ा कठिन है कि जिस राशि के लक्षण आकृति में उग आये हैं वह लग्न राशि होगी कि चन्द्र राशि। अतः वहाँ पर दोनों में से एक का निश्चयात्मक संकेत नहीं करना ही श्रेयस्कर होता है।

पर ऐसी स्थिति में जहाँ राहु-केतु वर्त्तमान रहते हैं वे अन्य ग्रहों को दबा कर अपना प्रभाव बिना नागा प्रकट कर ही देते हैं। वही बात शनि पर भी लागू होती है।

इतना और भी ध्यान में रखने लायक है कि कभी-कभी मुखाकृति में न तो लग्न के न चन्द्र राशि के ही लक्षण मिलते हैं न उनमें बैठे ग्रहों के। बल्कि जहाँ लग्नेश व राशीश आसनासीन होता है उसी राशि के लक्षण मुखाकृति पर प्रकट हो जाते हैं। अत: कोई एक निश्चित मत प्रकट करने के पूर्व इन सब सूक्ष्म नियम व्यवधानों को ध्यान में रखना ही अपने लक्ष्य की सिद्धि और वाक् सिद्धि के लिए नितान्त आवश्यक होगा। देखें चित्रांक ७७।

एक बात और कहकर विषय की ओर सीधा बढ़ना ही उचित है। राशियाँ केवल लग्न भाव से ही नहीं पर अन्य भावों में भी पड़ती हैं। वैसी दशा में प्रत्यक्ष है कि जो भाव शरीर के जिस-जिस अंग का द्योतक है उस-उस अंग में भी उस-उस राशि का लक्षण प्रकट होना चाहिए। ऐसी आशा वास्तव में यथार्थ और स्वाभाविक है। राश्यानुकूल फल तज्जनित अंग में प्रस्फुटित होता भी है। पर मुझे स्वीकार करने में संकोच नहीं कि इने-गिने अव्यर्थ स्फुटित होने वाले लक्षणों को छोड़कर अन्य लक्षणों के अध्ययन के पर्याप्त अवसर के अभाव में लेखक को उन-उन लक्षणों को सर्वाङ्गीन रूप में, अवलोकन, मनन, और विश्लेषण का सुअवसर प्राप्त नहीं हो सका है। इस पर अध्ययन अवश्य चल रहा है और यथा-वसर उसके फल आपके हाथों में शीघ्र रखने का विचार भी है पर अभी तो पाठकों को इस सम्बन्ध में लेखक की ओर से निराश ही होना पड़ेगा। इसका एक दूसरा कारण भी है लग्न साधारणत: सारे शरीर का द्योतक है अत: लग्नस्थ ग्रह राशियों के अध्ययन से शरीर का एक सर्वाङ्गीन अध्ययन हो जाया करता है और वहीं से शरीर के अनेक भिन्न-भिन्न अंगों में उत्पन्न लक्षणों का भी अध्ययन हो जाता है। ऐसे अध्ययन से प्राप्त अनुभवों की व्याख्या समय-समय पर प्रसंगानुसार होती भी आई है। एक उदहरण दे दिया जाय तो कदाचित् अभिप्राय अधिक स्पष्ट हो जाय।

लग्न में राहु के पड़ने से शरीर लम्बा होना आगे निर्दिष्ट हो चुका है। यह विचार केवल लग्नाश्रित ग्रह राशि के अध्ययनों का ही निष्कर्ष है, यह भी प्रत्यक्ष ही है। पर शरीर लम्बा होगा तब उसके अन्य सभी अंग भी अनुपात से लम्बे होंगे ही। अत: उन-उन अंगों में लम्बाई नाम का एक लक्षण आप से आप पैदा होगा ही। अंगों की लम्बाई वहाँ की हड्डियों की लम्बाई पर निर्भर होने से हड्डियों में प्रकृतिरूप से लम्बाई पाया जाना भी स्वत: सिद्ध ही है। तो केवल लग्नस्थ राहु या शनि के अध्ययन से तृतीय भाव (बाहु) षष्ठ और अष्टम भाव (पैर) इत्यादि का

अध्ययन आप से आप हो जाता है। पर स्मरण रहे कि यह बात शरीर के वैसे ही अंगों के विषय में अधिकाधिक सत्य प्रतीत होगी जो सारे शरीर में व्यापमान हों जैसे त्वचा, हड्डियाँ, वर्ण, बाल और रोम, शरीर का सारा ढाँचा आदि। एक स्वाभाविक बात की ओर कदाचित अभीतक ध्यान नहीं आर्कषित किया जा सका हैं कि साधारणत: किसी सभ्य समाज में मनुष्य अपने सारे शरीर को अनेक प्रकार के परिधानों से आच्छादित कर अलंकृत किया रहता है। केवल गर्दन से ऊपर के अंग (गला, मुँह, नाक, आँख, कान, गाल, भौंह, ललाट, बाल, जबड़े, दाँत, जीभ, मूँछ, दाढ़ी, ठुड्ढी, कण्ठ, लोलक इत्यादि) आवरण रहित रहने के कारण साक्षात्कार से अध्ययन के विषय स्वभावत: हो जाते हैं। शेष अंगों की एक साधारण बनावट की झलक ही प्रत्यक्ष देखने को मिलती है।

यह भी इसका एक कारण है कि आकृति से लग्न और ग्रहों के अनुमान का अध्ययन स्वभावत: इन्हीं खुले अंगों पर क्यों केन्द्रित हो जाता है। स्पष्ट है कि ये सभी अंग लग्न वा लग्न पार्श्व में पाये जाते हैं। इस कारण भी अन्य भावों के वर्त्तमान रहते हुए भी लग्न ही सांगोपाङ्ग अध्ययन विशिष्ट रूप में करना अनिवार्य हो जाता है।

यद्यपि यह कहना बहुत युक्तिसंगत नहीं होगा कि लग्न निर्दिष्ट अंगों का ही अध्ययन के प्रभाव की पूर्ण पूर्ति कर देगा पर यह भी स्मरणीय है कि अपनी गर्दन से ऊपर के जितने अंग मनुष्य को मिले हैं वे ऐसे हैं कि अपनी दशाओं को प्रद्योतित करने के अतिरिक्त शरीरगत अन्य अंगों के भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप और स्वभाव का उनके गुण के अच्छे प्रतिनिधि द्योतक हैं।

उदाहरणार्थ, आँख केवल अपनी ही हालत दिग्दर्शित नहीं करती बल्कि अपने हृदय की परिवर्त्तनशील दशा और अवस्था का भी स्पष्ट प्रदर्शन करती रहती है। हृदय मानों आपका अपनी आँखों में छलकता रहता है। आपके अंत:करण का ही आदर्श नहीं बल्कि आपके मनोविकार की झलक भी निरन्तर और तत्क्षण आँखों को मिलती रहती है। उसी प्रकार मुखाकृति के भाव, नासिका, कर्ण, त्वचा, इत्यादि ऐसे अंग हैं जो आपके भिन्न-भिन्न अन्य अंगों के भी प्रतीक हैं। वस्तुत: बात तो यह है कि गर्दन के ऊपर और नीचे ही शरीर के दो ऐसे भाग किये जा सकते हैं जो अन्योन्याश्रय के बिना ठहर नहीं सकते। आश्चर्य का विषय तो यह है कि इन दोनों भागों में कुछ ऐसे भिन्न अंग भी हैं जिनका दूसरा प्रतिनिधि रूप शरीर के दूसरे भाग में वर्तमान है और जिनमें से एक पर प्रभाव पड़ने पर दूसरे पर उसका प्रभाव अनिवार्य तत्काल पड़ जाता है। अत: एक में दृष्ट प्रभावों के ज्ञान के आधार पर दूसरे के लक्षणों का ज्ञान अनायास हो जाता है। इस कारण भी लग्नस्थ वा लग्नपार्श्वस्थ

ग्रह राशियों का अध्ययन शेष अंगों की आन्तरिक दशा और अवस्था का पता दे दिया करते हैं। उदाहरणार्थ, यदि दूसरे भाव में पापग्रह बैठकर जैसे ही कण्ठ पर अपना कुप्रभाव डाल देते हैं वैसे ही वे आठवें भाव में भी अपना प्रभाव प्रकट किये बिना छोड़ते नहीं। अतः जब किशोरावस्था में बच्चों में कण्ठ भारी और आवाज रूखड़ी होने लगती है (दूसरा भाव प्रभावित होने लगता है) तो साथ ही उनके जननेन्द्रियों में भी विकास और क्रियाशीलता पैदा होने लगती है। वस्तुतः बात ऐसी है कि जननेन्द्रियों के विकास के साथ-साथ जब उनमें अपनी क्रिया जारी होती है तभी कण्ठों में भी तत्काल विकार आकर उनकी आवाज भारी, कर्कश और फटी हुई-सी हो जाती हैं। अतः एक में दृष्ट इन लक्षणों से न केवल दूसरे में उत्पन्न लक्षणों का ज्ञान अनुमित हो जाता है बल्कि इन लक्षणों से ग्रहों का सम्बन्ध स्थापित कर उनकी स्थिति का भी उन-उन भावों में अनुमान किया जा सकता है। अतः गर्दन से ऊपर के लक्षणों से गर्दन से नीचे के अवयवों को प्रभावित करने वाले ग्रहों की अवस्थिति का अनुमान सम्भव होता है। इस कारण से भी लग्नादि भावों का अध्ययन बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

जैसे सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु ९ ग्रह हैं वैसे ही मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन राशियाँ भी १२ हैं। इन राशियों का आधिपत्य वर्ण, जाति, धातु, स्वभाव, वृत्ति, इत्यादि भिन्न-भिन्न वस्तुओं में विलग-विलग है। इनका विस्तृत विवरण यहाँ अपेक्षित नहीं इसलिए यह मान लिया गया है कि इनका पूरा ज्ञान पाठकों को है वा यदि नहीं तो किसी प्रामाणिक ज्योतिष के ग्रन्थ का अवलोकन कर पाठक अब जान लेंगे। यह कार्य विशेष कठिन नहीं। अतः यहाँ तो केवल उन्हीं विशेष लक्षणों पर ध्यान दिया जायगा जो आकृति में प्रस्फुटित हो राशिविशेषों के लग्नस्थ, चन्द्रग्रहस्थ होने के परिचायक हैं। यथासम्भव ग्रहों का सम्बन्ध इन राशियों से विलग रखकर ही उनके इन लक्षणों को ग्रहण किया जायगा।

बारहो राशियों में से प्रत्येक के अपने-अपने अलग विशेष लक्षण को लेकर ही उन्हें उन-उन राशियों के निश्चायक बनाने के प्रयत्न का प्रयास ही यहाँ किया जायगा, जिससे इस पथ पर अग्रसर होने वाले समस्त पथिकों को यथोचित सहारा मिल सके और इसके अध्ययन की कोटि और विस्तार में उन्नति हो सके।

बारहो राशियों का इतना अधिक गहरा अध्ययन अभी तक नहीं किया जा सका है कि प्रत्येक के अव्यर्थ लक्षण निश्चयपूर्वक तालिकागत कर दिये जायें।

तथापि आगामी पृष्ठों में प्रत्येक राशि के लग्न होने पर आकृति में कुछ लक्षण पहचान लिये गये हैं। उनका एक संक्षित विवरण देने का प्रयत्न किया गया है। अच्छा तो यह होता कि मेष, वृष इत्यादि गृहीत क्रम में बारहों लग्नों का क्रमिक वर्णन कर दिया जाता तो कई प्रकार से सुविधाजनक भी होता। पर उससे पाठकों के अध्ययन में उतनी सरलता न होती और कई लग्नों के अव्यर्थ लक्षण ध्यान से हट जाने का भय होता। अतः वह क्रम न रखकर ग्रहों के वर्णन में भी जैसे ग्रह और लक्षणों की प्रधानता के क्रम से उनका वर्णन रखा गया है उसी प्रकार लग्नों में भी उनके वर्णन का क्रम उनकी अपनी प्रधानता और उनके लक्षणों की पहचान की प्रधानता के ही अनुसार रखा गया है।

इस दृष्टिकोण से वर्णन का क्रम मेष, सिंह, तुला, वृश्चिक, कन्या, मिथुन मीन, बुध, कुम्भ, धनु, वृष, मकर और कर्क रखना पड़ा है। आशा है इससे पाठकों को कोई असुविधा का सामना करना नहीं पड़ेगा।

मेष

जब राशिचक्र की आदि राशि मेष लग्नस्थ होती है तो मनुष्य की आकृति में सबसे पहला लक्षण उसकी आँखों में पैदा होता है। वह यह कि दोनों आँखें वर्तुलाकार होती हैं। जिस प्रकार पत्थर की खेलनेवाली गोली (अण्टा) होती है ठीक उसी प्रकार की गोलाई मनुष्य की आँखों में आ जाती है। संक्षेप में यह कि मेष लग्नवाले व्यक्ति की आँखें अपेक्षाकृत वृत्त के ऐसी गोल होती हैं और यदि निकली हुई बिल्कुल नहीं तो धँसी हुई भी बिल्कुल नहीं होती। जहाँ इस गोलाई के साथ आँखों में रक्तिम का पुट हो वहाँ मेष लग्न प्रदत्त आँखें है। ऐसा कहने में भूल होने का अवकाश नहीं। कभी-कभी ऐसे व्यक्ति भी मिलते हैं जिनकी आँखें निकली होतीं और बातें करते समय उनका गोलक और भी बाहर निकल जाता है जिससे आँखें और भी गोलाकार रूप धारण कर लेती हैं। ऐसी आँखें आपको धोखे में डालकर अनुमान में भ्रम पैदा कर देंगी यदि आप इन्हें पहले से पहचान कर सचेष्ट न रहेंगे। ऐसी आँखें केतु के प्रभाव में पैदा होती हैं। अतः इनका मेष की आँखों से विभेद जान रखना नितान्त आवश्यक है।

स्मरण रहे कि मेष की आँखें बोलते समय बाहर नहीं निकलतीं किन्तु केतु-जनित आँखें अवश्य बाहर निकलने की ओर की प्रवृत्ति रखती हैं। दूसरी बात यह कि केतु की आँखों में ध्यान देकर देखने पर चमक का पूरा अभाव होता है। देखने में गन्दी नहीं तो भद्दी और कान्तिहीन और निस्तेज लगती हैं। पर मेष में ये सभी

बातें नहीं होती। एक बात और कि मेष की आँखों के बाहर निकलने की या गहरे बैठने का अधिक झुकाव नहीं होता अर्थात् गोलक बाहर जड़े हुए से नहीं होते। इस विभेद को एक बार हृदयंगम कर लेने पर भूल करने की आशंका जाती रहेगी। लेखक इस लक्षण को मेष लग्न की पहचान का एक सुवर्ण घटित या स्वर्णिम नियम मानता है।

मेष लग्न की दूसरी पहचान यह है कि शिर ललाट की ओर छोटा और गोला होता है। यह लक्षण अव्यर्थ तो नहीं पर बहुसंख्यक व्यक्तियों में सत्य पाया जाता है।

इसकी तीसरी और सबसे बड़ी पहचान यह है कि सामने से व्यक्ति का मुख ललाट शिखर से ठुड्ढी तक देखने में लम्बा और पार्श्वों से पतला लगता है। यह लक्षण वृश्चिक लग्न वालों में भी पैदा होता है। इसपर दोनों के विभेद वा अन्तर अभ्यासानन्तर हृदयंगम हो जाते और तब भूल होने की आशंका जाती रहती है। जहाँ ऐसी लम्बी पर पतली मुखाकृति सामने आवे तो उसमें देखें कि आँखें वर्तुला-कार और रक्तिम हैं कि नहीं। यदि हाँ तो आपका अनुमान ठीक मार्ग अवलम्बन किये हुए है। तब यह देखें कि नाक की दोनों ओर कनपट्टी के नीचे गाल धँसे हुए हैं कि नहीं। गालों के धँसने से तात्पर्य यह है कि नाक की मध्य की दोनों ओर गाल की हड्डी उभड़ी हुई हो और निचले जबड़े से मिलकर दोनों के बीच में गाल को दाँतों की ओर सटाकर स्थान को छोटे से उथले गड्ढे की नाईं बना दे और आँखों की दोनों ओर भौहों से सटी हुई कनपटी को धँसा दे।

उक्त लक्षणों के साथ यदि मुखमंडल की त्वचा कुछ रुखड़ी, कड़ी वा फोड़े-फुन्सियों, बरें, मुहासों आदि के कारण चिह्नमयी हो वा ललाट में कटने से घाव का दाग हो तो समझना चाहिए कि मेष राशि जन्मकाल में पूर्व क्षितिज पर उग रही थी। ललाट कुछ संकीर्ण होता पर यह कोई बहुत आवश्यक नहीं। बहुधा यह पाया गया है कि शिर के बाल ललाट के ऊपरी भाग और कोनों में उग आते हैं जिससे ललाट पतला और बड़ा संकीर्ण लगता है।

तो यदि मुखाकृति ऊपर से नीचे लम्बी, पार्श्वों से पतली, गाल धँसे हुए, कनपटी पर की हड्डी आँखों के नीचे उभड़ी हुई, ठुड्ढी कुछ चौड़ी और मोटी, भौहें घने, ललाट संकीर्ण, शिर के बाल ललाट के ऊपरी भाग और कोनों को आच्छादित किये हुए और सबसे बड़ी बात आँखें रक्तिम और वर्तुलाकार पाई जायँ तो समझना चाहिए कि लग्न में मेष का उदय हुआ है।

दाँतों और दन्त पंक्तियों में कोई अव्यर्थ लक्षण विशेष देखने में नहीं आया। प्रायः दांत छोटे-छोटे परस्पर एक दूसरे से सटे हुए अविश्रृंङ्खल, धारीदार, चिकने और बाहर निकले हुए नहीं होते हैं।

स्वभाव हठीला पर बुद्धि प्रखर नहीं होती। अनेक नाटे तो मिलते पर लम्बे कद के व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं बल्कि कहना चाहिए कि नहीं मिलते। यदि कोई कारण विशेष हो, जैसे ग्रहों की युति दृष्टि इत्यादि, तभी ऐसा हो सकता है नहीं तो लम्बे व्यक्ति प्रायः मेष लग्न में नहीं पैदा होते। बदन गठीला और बलिष्ठ होता है पर परिश्रमी नहीं।

ब्लौक नं० ६२ तथा २०, १७ को ध्यानपूर्वक देखने से ऊपर कही हुई अनेक बातें स्पष्ट होंगी। आँखें सबों की ही गोल हैं। नं० २० गुरु के कारण स्थूलकाय हो गये हैं पर इनके शिर का ऊपरी भाग और आँखों का वर्तुलाकार होना इनके मेष लग्न का पता देते हैं।

नं० १७ केतु के कारण कुछ लम्बा और बुध की दृष्टि के कारण शरीर पुष्ट और व्यायामशील है। पर स्मरण रहे कि इनकी लम्बाई भी मध्यम आकार से अधिक नहीं है। लम्बे से ये कुछ इसलिये लगते हैं कि शरीर में इनके मेद की प्रचुरता नहीं और व्यायामशील शरीर होने से सुगठित और हल्का-सा लगता है। ठीक इसके विपरीत नं० २० में वृहस्पति के कारण शरीर स्थूल, तुन्दिल और मेदयुक्त होते हुए मध्यम आकार से कम ऊँचाई वाला है। दोनों व्यक्तियों के कारणविशेषवश शरीर की बनावट ग्रह प्रवृत्ति के अनुसार बनावट और ऊँचाई में विभेद हुआ है तथापि शरीर दोनों मझोले कद के आसपास से ऊपर उठ नहीं सके हैं।

पुनः देखें नं० ६२ श्री रामचन्द्र मिश्र का। मेष लग्न के सभी वर्णित लक्षण वर्तमान हैं। आँखें गोल, रक्तिम, ललाट संकुचित और आकार ठीक मझोले से भी कम है। लग्न में ग्रहों की स्थिति के कारण मुखमण्डल पर चेचक के दाग स्पष्ट उग आये हैं और शरीर में मेद का पूर्ण अभाव है।

सिंह

लग्न यदि सिंह हो तो सिर का आकार ही उसका साधारण पता देता है। सामने से देखें तो मुखाकृति सब मिलाकर गोलाकार लगती है। विशेषता यह है कि शिर का ऊपरी भाग ललाट के एक कोने से दूसरे कोने तक अधिक चौड़ा और आँखों के नीचे से ही ठुड्ढी तक पहुँचते नितान्त पतला हो जाता है। सामने से देखने में मुखमण्डल मेष की नाईं ही पतला पर गोल न धँसी हुई न उभड़ी हुई पर साधारण रूप में नगण्य सी भी लगती है। ललाट प्रशस्त और उसका ऊपरी बालहीन भाग पीछे की ओर दबा हुआ होता है। किसी-किसी में यह लक्षण काफी प्रधानता प्राप्त किये रहता है जिसमें आपका ध्यान बलात् उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। कई व्यक्तियों में तो यह प्रधानता कुरूपता उत्पन्न कर देती है। पर ९० प्रतिशत नहीं हो पाता। तो सबसे पहले आपको सिंह लग्न की पहचान के लिए सम्बद्ध व्यक्ति के ललाट की ओर ध्यान देना होगा। यदि मुखाकृति उसके आकार के अनुपात से अधिक लम्बी और चौड़ी विशेषकर लम्बी पावें और ललाट के दोनों कोने बालों के भीतर शीर्ष में प्रविष्ट से देख पड़े तो सिंह राशि के लग्न होने के अनुमान का सूत्रपात करना चाहिए। इस प्रशस्त ललाट के नीचे ठुड्ढी तक दृष्टिक्षेप करने पर यदि यह देख पड़े कि ठुड्ढी अनुपात से एकाएक ठुठनी-सी हो गयी है और पतली होकर निचले ओष्ठ से एक मिलित चिपकी हुई-सी है तो सिंह राशि के लग्नस्थ उगने का अनुमान कुछ और प्रबल होगा। ठुड्ढी के ठुठनी-सी होने से तात्पर्य है कि वह ओठ के नीचे पहुँचते ही मुँह के कोनों से लेकर नीचे का एकाएक अनुपात से पूरे आकार में न जाकर एकाएक नीचे से छोटी होकर चिपकती हुई-सी मुँह के एक कोने से दूसरे कोने तक ओठ के नीचे फैली हुई हो। स्मरण रहे कि सिंह की ठुड्ढी कभी मोटी नहीं होती बल्कि हल्की और काफी पतली होकर होठों से मेल खाती हुई उनके साथ विलीन हो जाती है। ऐसा होने से प्रशस्त ललाट से ठुड्ढी तक एक बार दृष्टि निक्षेप करने पर पता लगेगा कि मुखाकृति एक खासे त्रिकोण-सी बनी हुई है वा उसी के ढाँचे में ढली हुई है।

ठुड्ढी के दो आकार प्रायः मिलते हैं। एक तो कि ठुड्ढी नुकीली न होकर पतली-सी बहुत कम चौड़ी मुँह के एक कोने से दूसरे कोने तक फैली होती है। इसमें ठुड्ढी निःसंदिग्ध ठुठनी और चिपकी हुई-सी लगती है। दूसरे ठुड्ढी का झुकाव नुकीला होने की ओर का होता है जिसमें ठुड्ढी कुछ नीचे लटकने-सी लगने लगती है पर उसका निचला भाग काफी नोकदार और दोनों ओर से पतला-सा हो जाता है। इस प्रकार की ठुड्ढी वाली मुखाकृति काफी तिकोनी लगती है। परन्तु चाहे दोनों ओठों में से किसी की आकृति वाली ठुड्ढी हो हर दशा में दोनों ओठ सूक्ष्म

और पतले ही होते हैं। यहाँ तक कि दोनों ओठों के सट जाने पर वे इस प्रकार एक दूसरे पर ठीक बैठती है कि दोनों ओष्ठों की पहचान मात्र एक रेखा की नाईं होती है मानो उनके बीच से एक लाल-सी रेखा खींची हुई हो। जहाँ ओठों की ऐसी बनावट और पतलापन के साथ उपरोक्त प्रकार की ठुड्ढी हो वहाँ सिंह लग्न का अनुमान प्रायः अव्यर्थ पाया जायगा।

अनेक उदाहरणों का अध्ययन कर उक्त प्रकार के लक्षणों को पहचान कर हृदयंगम कर लेना चाहिए क्योंकि केवल वर्णन से सिंह लग्न अव्यर्थ रूप में नहीं पहचाना जा सकता।

सिंह लग्न वाले व्यक्ति अपने बालों को घना, लम्बा और शिर पर पीछे की ओर सीधा फेंक कर रखने के भी पक्षपाती होते हैं। ऐसा करने से शिर का ऊपरी भाग और भी विस्तृत लगने लगता है जिससे मुख की त्रिकोणाकृति ऊपर में काफी चौड़ी और नीचे सूच्याकार नुकीली पतली लगने लगती है।

आँखों से तेज और गम्भीरता टपकती है और मुद्रा में कठोरता और दृढ़ निश्चय का परिचय मिलता रहता है। सिंह लग्न का व्यक्ति बातों में हँसकर भी पुनः अपनी स्वाभाविक गम्भीर मुद्रा में झट लौट कर आ जाता है। भीतर से बड़ा निर्भीक और दृढ़ होता है। स्वभाव उसका सात्विक और वचन पालन में दृढ़ प्रतिज्ञ होता है।

आँखें प्रशस्त और उसका श्वेत भाग लाल डोरों से पूर्ण होता है दृष्टि गम्भीर और मर्मभेदी होती है।

इस प्रकार यदि शिर का ऊपरी भाग चौड़ा, बाल घने, बड़े और पीछे की ओर ऊँचे फेरे हुए हों, ललाट प्रशस्त, उन्नत और ऊपर की ओर पीछे का दबा हुआ हो, भौंहें घनी और काली मुखाकृति ठुड्ढी की ओर को उत्तरोत्तर नुकीली, आँखें प्रशस्त, लाल डोरों से युक्त तीक्ष्ण, मर्मभेदी, ओष्ठ पतले और नोकदार हों तो समझना चाहिए कि सिंह लग्न में उत्पन्न व्यक्ति आपके समक्ष आपके अध्ययन का विषय हो रहा है।

स्मरण रहे कि सिंह राशि में यदि अन्य ग्रहों की स्थिति भी हो तो लग्न में उक्त सभी लक्षण स्पष्ट दृष्टिगत नहीं होते। वहाँ ग्रहों का अपना प्रभाव प्रमुख होकर उनकी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुकूल अनेक आमूल परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। देखें चित्रांक ८५ और ५९।

ग्रह प्रकरण में चेतावनी रूप वर्णित एक बात को लग्न की पहचान में भी सदा स्मरण ही रखना चाहिए कि जहाँ आकृति में उत्पन्न लक्षणों को जानकर लग्न

पकड़ा जा सकता है वहाँ कुण्डली में लग्न देख उस व्यक्ति की मुखाकृति में उन लक्षणों के पाने की सदा आशा नहीं की जा सकती।

वृश्चिक

वृश्चिक लग्न वाले व्यक्ति नाटे कद के बहुत कम होते हैं। साथ ही शरीर से असाधारण मोटे भी विरले ही कोई होते हैं। अतः एक साधारण नियम-सा यह जान लेना चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति नाटा हो वा असाधारण मोटा हो तो उस व्यक्ति का लग्न वृश्चिक पाने की आशा तत्काल छोड़ देनी चाहिए। स्मरण रहे कि यह एक साधारण मोटा-मोटी बात हुई। ऐसे उदाहरणों का अत्यन्त अभाव नहीं है जिनमें वृश्चिक होते हुए भी व्यक्ति नाटे वा मोटे वा नाटे-मोटे भी हों। पर ये उदाहरण नियम के प्रतिकूल होते हैं और ऐसा होने का उनमें यथेष्ट ज्योतिषीय अन्य कारण होते हैं। साधारण नियम यह हुआ कि व्यक्ति यदि नाटा वा मोटा हो तो लग्न कदाचित् ही वृश्चिक होगा और इसके पाने की ओर अपने विचार प्रभावित करने की कोई आवश्यकता नहीं।

वृश्चिक लग्न को ठीक-ठीक पहचानने में सिद्धहस्त होना जरा कठिन कार्य है और बतलाने पर भी उसकी आकृति मानस पटल पर सुचारु रूप से अंकित हो जायगी इसकी बड़ी कम आशा है। पर साथ ही यह भी है कि एक बार उसके मूल लक्षणों को जानकर इनकी आकृति मन में बैठा लेने पर इसका पहचानना इतना सरल है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। अतः इसके अध्ययन में पूरी सावधानी और सतर्कता व्यवहरणीय है।

वृश्चिक लग्न में दोनों प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं, लम्बे एकहरे बदन के और लम्बे दोहरे बदन के किन्तु किसी भी अवस्था में वे विशालकाय और भारी तोंद वाले नहीं पाये जाते (देखें चित्र ९३)। चाहे वे एकहरे वा दोहरे बदन के हों पर हर दशा में उनका शरीर पूरा संगठित और बलिष्ठ होता है। देखते ही उनके अंग-अंग में स्फूर्ति और चुस्ती टपकती पड़ती है पर साथ ही वे चंचल और अस्थिर प्रकृति के व्यक्ति नहीं होते। तौ भी यह नहीं कहा जा सकता कि एकहरे शरीर के व्यक्तियों में बलहीन व्यक्ति एकदम मिलते ही नहीं। हाँ, जहाँ ऐसे व्यक्ति मिलते हैं, वहाँ शरीर देखने में हल्का और कमजोर जान पड़ने पर भी भीतर से लोहे के तार की नाईं ठोस और आघात-प्रत्याघात संवहन करने के उपयुक्त होता है और टूटकर जुटने में उसे रञ्चमात्र भी विलम्ब नहीं होता। शरीर में उसके आन्तरिक अवयवों में इतनी प्रसुप्त-सी जीवनी शक्ति का भण्डार पूर्ण रहता है कि किसी प्रकार के आघात

प्रत्याघात का सामना करके भी उसका कोई अवयव तत्काल अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हो जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक तो वृश्चिक लग्न वाले व्यक्तियों को बलहीन गात्र मिलता नहीं पर यदि किसी कारण विशेषवश ऐसा देखने में मिल जाय तो दूसरे लग्न वाले व्यक्ति से अपेक्षाकृत बहुत ही अल्पकाल में वृश्चिक लग्नवाला व्यक्ति अपना स्वास्थ्य लाभ करके अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त कर लेता है। गात्रयष्ठि दुबली-पतली होने पर भी भीतर से लोहे की छड़ की नाईं ऐसी ठोस बनी होती है कि उसे टूटकर जुटते देर ही नहीं लगती।

उक्त वर्णन का अभीतक तात्पर्य केवल इतना ही था कि यदि किसी अन्य आगे वर्णित लक्षण के बल पर आपको किसी व्यक्ति का लग्न वृश्चिक जान पड़े तो उस अनुमान को दृढ़कर प्रकट करने के पूर्व एक बार ऊपर वर्णित लक्षण की ओर अपना ध्यान ले जाकर यह आपको देख लेना चाहिए कि यह मिलता है कि नहीं। यदि मिलता है तब सोने में सुगंध है और बेखटके अपने अनुमान को पुष्ट मानकर दूसरों पर उसे प्रकट कर दे सकते हैं। पर यदि ऐसा न मिले तो आप अपने अनुमान पर आस्था सहसा तब तक नहीं लाइए जबतक आप को आगे वर्णित इसके अव्यर्थ लक्षणों में से कोई और मिलाकर उसकी पुष्टि न करे।

इन लक्षणों को उद्दिष्ट करने के पूर्व वृश्चिक राशि भचक्र और काल पुरुष चक्र में किस अंग का प्रतीक और द्योतक मानी गई है इसका संक्षिप्त उल्लेख कर देना आवश्यक है क्योंकि उसके इस सिद्धान्त को हृदयंगम कर लेने के उपरान्त आगे वर्णित लक्षणादि को समझने और हृदयंगम करने में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

तो वृश्चिक राशि भचक्र की ८वीं राशि है। इस राशि के अन्त में भचक्र में एक जोड़ पड़ी हुई अनुमान की जाती है अर्थात् उस स्थान पर भचक्र में एक सन्धि-स्थल माना जाता है। इसलिए काल पुरुष अंग चक्र में और इसीलिए मनुष्य शरीर में भी यह राशि शरीर का एक सन्धिस्थल का निर्देशक है। भचक्र में पहला सन्धि-स्थल कर्क के अन्त में, दूसरा सन्धिस्थल वृश्चिक के अन्त में, तीसरा मीन के अन्त में माना जाता है। अर्थात् वृश्चिक काल पुरुष अंग का द्वितीय सन्धिस्थल है। अब मनुष्य शरीर के प्रत्यक्ष मोटा-मोटी तीन भाग किये जा सकते हैं और प्रत्येक भाग के अन्त में एक सन्धिस्थल है। पहला भाग गर्दन के ऊपर और दूसरा कटि प्रदेश के ऊपर और तीसरा पैरों की सुपलियों के ऊपर। कटि प्रदेश वाला सन्धिस्थल दूसरा होने से वृश्चिक, जिस काल पुरुष का दूसरा सन्धिस्थल (कटि प्रदेश वाले सन्धि-स्थल) का द्योतक है। वृश्चिक को साथ ही छिद्र (विवर) और आर्द्र राशि माना

गया है। अर्थात् ऐसा विवर (बिल वा छिद्र) माना गया है जो निरन्तर आर्द्र रहा करता हो वा जिससे आर्द्र स्राव किसी प्रकार का चला करे। राशि के इस स्वभाव के कारण वह दूसरे संधिस्थल अवयवों में से गुह्य जननेन्द्रियों का निर्देशक मानी गई है। पुनः वह, जिस प्रकार मलमूत्र की सफाई करके शरीर को द्वितीय संधिस्थल पर के अवयवों में से गुह्य इन्द्रियों को निर्दिष्ट करती हुई मानी गई उसी प्रकार प्रथम संधिस्थल के भीतर वृश्चिक राशि नाक का द्योतक ठीक मानी गई है क्योंकि शरीक के इस पहले भाग की सफाई मुख्यतः नाक ही करती है। आर्द्र विकार बहता हुआ सफाई का छिद्र इस भाग में नाक ही तो है।

कहने का तात्पर्य यह कि उक्त कारणों से वृश्चिक राशि नाक और मलमूत्र-वाहिनी नाड़ी गुप्त जननेन्द्रिय का द्योतक है। अतः हम पाते हैं कि मनुष्य की आकृति में शरीर के इन अङ्गों में वृश्चिक राशि का पूरा प्रभाव प्रकट होता है।

नाक पर वृश्चिक राशि का प्रभाव दो प्रकार से पड़ता है एक तो यह कि नाक मुखमंडल के सभी अंगों से अधिक विकसित, पुष्ट, ऊँचा, सुडौल और अनुपात से अधिक आकार-प्रकार में बड़ी हो जाती है। बिना अधिक प्रयत्न के जब देखते ही कह सकें कि अमुक व्यक्ति की नाक लम्बी, ऊँची, बड़ी पुष्ट और प्रशस्त है और देखने वाले की दृष्टि बरबस नाक पर जा पहुँचती है तो आपको समझना चाहिए कि वृश्चिक लग्न के कारण यह प्रभाव पैदा हुआ है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि नाक का अगला भाग दोनों छिद्रों के मुख पर बहुत बड़ा होता है। और कभी (जो वृश्चिक का निश्चायक ही समझिये) नाक भी ठीक ऊपर की ओर काफी उठी हुई होती है वा नाक की नोक ऊपर एक टीले-सी छोटी गुठली-सी उठ आती है। जहाँ ऐसा मिले और नाक काफी उन्नत और सुडौल जँचे वहाँ वृश्चिक लग्न होने में कोई सदेह नहीं।

दूसरे ऐसा होता है कि नाक उन्नत और सुडौल होने के बदले आगे की ओर पसरी हुई होती है और ठीक बीच में धँसी रहती है। यह लक्षण इस कारण से पैदा होता है कि वृश्चिक राशि का मुखमण्डल आगे की ओर निकला न रहकर बीच में धँस कर खोखला होने की ओर का झुकाव रखता है। मुखाकृति जब इस प्रकार पचकी रहती है तो स्वभावतः नाक को भी बीच में पचका देती है। मुखाकृति के इस साधारण पचकाव के कारण ही नाक बीच में कुछ बैठी हुई-सी लगती है।

अतः हम देखते हैं कि ऊपर वर्णित प्रकार से वृश्चिक लग्न होने के दो विपरीत से लक्षण नाक में पैदा होते देखे जाते हैं। पहले तो नाक उन्नत प्रशस्त

नासा रन्ध्र बड़े-बड़े खड़े होते हैं और कभी-कभी नाक की नोक पर एक टीले-सा ऊँचा उठा हुआ होता है जिस पर दृष्टि हठात् आकर्षित होती है। दूसरे मुख-मण्डल के कारण नाक बीच में चपकी हुई और चपटी-सी होती है। पहले प्रकार की पहचान सटीक और वृश्चिक लग्न का अव्यर्थ परिचायक लक्षण-सा है। दूसरे प्रकार के लक्षण अन्य कारणों से भी पैदा होते हैं। जैसे लग्न में एक वा कई पापग्रहों के जुटने से पचकना वा विकार उत्पन्न होना। दोनों प्रकार के लक्षणों में कौन वृश्चिक लग्न के कारण और अन्य ग्रह प्रभावजनित हैं इसे अभ्यास के पश्चात् ही जाना जा सकता है। साधारणतः ऐसी अवस्था में अन्य सहचारी अव्यर्थ लक्षणों का ही सहारा लेकर लग्न की पहचान अव्यर्थ रूप से की जा सकती है।

जताना अनावश्यक है कि दूसरे प्रकार के लक्षणों में पचकी मुखाकृति का जो उल्लेख ऊपर आया है वह पापग्रहों की युति दृष्टि का भी फल होता है, विशेषकर केतु के लग्नगत होने का, वा राहु-मंगल की युति का, वा शनि-राहु, वा केतु-मंगल की युति का, या इसी प्रकार के अन्य योगों का। जहाँ इस प्रकार की पचकी मुखाकृति होगी वहाँ नाक स्वभावतः बीच में चपटी-सी होकर बीच में धँसी हुई और पसरी-सी लगेगी।

इतना अवश्य स्मरण रखने की बात है कि वृश्चिक राशि के लग्न होने पर मनुष्य की नाक साधारण नहीं होगी। जब उन्नत लम्बी; पुष्ट, विशालरन्ध्रयुक्त नाक इत्यादि मिलें तो लग्न के अनुमान में भूल होने का अवसर शून्य-सा होता है।

अन्य लक्षणों में ललाट, वृश्चिक राशि का साधारण-सा, न छोटा, न बड़ा, न संकीर्ण, प्रायः खड़ा-सा होता है। यदि लग्न में कोई ग्रह न हो तो ललाट के कोने बालों में भीतर प्रविष्ट रहते हैं पर शनि आदि ग्रह के प्रभाव में कोनों में बाल जम आना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

आँखों और भौहों में भी कोई असाधारण विशेषता चिह्न रूप नहीं होती। पर आँखें प्रशस्त, काली पुतलियों से युक्त, और श्वेत भाग में लाल डोरों वाली पाई जाती हैं। आँखें सतर्क, निर्भीक, और उनकी दृष्टि चुभती हुई होती है।

भौंहें छरहरी और सघन नहीं होतीं पर वे काफी नोकदार वा अर्धवृत्ताकार होती हैं।

किन्तु सबसे बड़ी पहचान वृश्चिक राशि में लग्न के होने का है कपोलों की हड्डियों की बनावट। ललाट और कपोल दोनों की हड्डियाँ ठोस और प्रशस्त बनी होती हैं पर कपोल की हड्डी कनपटी से जबड़ों तक काफी चौड़ी और प्रशस्त होती है। मुखमण्डल सब मिलाकर काफी प्रशस्त होता है।

पर सबसे निश्चित पहचान है नाक के मध्य की दोनों ओर की हड्डी की उभाड़। नाक के दोनों पार्श्व में हड्डी आँख के नीचे निकली हुई वा उभड़ी हुई-सी होती है जो देखने में एक टीले-सी लगती है। इसकी उभाड़ से दो बातें पैदा हो जाती हैं। एक तो आँखों की चारों ओर का कोटर कुछ गहरा लगने लगता और दूसरे उस हड्डी के नीचे और निचले जबड़े की हड्डी से ऊपर गाल में गड्ढा हो जाता है। यह गढा एकहरे बदन के व्यक्तियों में तो प्रत्यक्ष ही होता है पर मांसल शरीर हो और गालों पर काफी चर्बी जान पड़े तो उस व्यक्ति के बोलते समय गालों में एक कूप-सा गढ़ा बनता और बिगड़ता रहता है। अर्थात् हँसते और बोलते ही यह लक्षण स्पष्ट होता है। अन्य ग्रहों का प्रभाव पड़े तौ भी सूक्ष्मरूप में उक्त लक्षण अवश्य वर्तमान रहते हैं।

ओठों के दोनों कोनों पर भी हड्डियों की उभाड़ हो जाती है जिससे भी चेहरे की सुन्दरता नष्ट हो उसका भोंड़ापन पुष्ट हो जाता है।

उक्त कथन का तात्पर्य यह नहीं कि किसी भी दशा में वृश्चिक लग्नवाले व्यक्ति की मुखाकृति सुन्दर नहीं हो सकती यह बात नहीं। किसी-किसी दशा में तो वह बहुत ही सुन्दर होती है। तात्पर्य केवल इतना ही है कि आप जब किसी व्यक्ति की मुखाकृति का अध्ययन करने लगें और वृश्चिक लग्न है कि नहीं यह संदेह हो तो पहले देखें कि ललाट से ठुड्डी तक मुखाकृति लम्बी है कि नहीं। तब देखें कि सामने से आकृति चौड़ी लगती है वा पतली है। यदि पतली हो तो आप ठीक मार्ग पर हैं। उसके पश्चात् यदि ठुड्डी चौड़ी और मोटी हो, मुख के कोनों और नाक की दोनों ओर गाल की हड्डी में प्रत्यक्ष उभाड़ हो और उस उभड़ी हड्डी के नीचे की ओर मुख के कोनों के ऊपर गाल में गढा हो वा कम-से-कम बोलते-हँसते इत्यादि समय गाल में छोटा कूप-सा बन जाय तो समझना चाहिए कि लग्न वृश्चिक है।

यह तो हुई साधारण वृश्चिक लग्न की पहचान। पर एक असाधारण रूप इसका और भी है जिसका उल्लेख ऊपर भी हो चुका है। कभी-कभी वृश्चिक लग्न में नाक बीच से बैठी हुई-सी मिलेगी और चेहरा धँसा हुआ पर चौड़ा ज्ञात होगा। वैसी दशा में मुखाकृति लम्बी न लगकर बैठी-सी चौड़ी और गोलाकार हो जाती है और भ्रम होने लगता है कि यह आकृति सचमुच वृश्चिक की है वा सिंह की वा कन्या की। वैसी परिस्थिति में आपको सिंह और कन्या के बताये अपने विशेष नियमों वा स्वर्णिम लक्षणों से प्रस्तुत मुखाकृति को विलगाना होगा। अभ्यस्त हो जाने पर भूल होने की आशंका कम है।

ऊपर वृश्चिक लग्न की जो पहचान बतलाई गई है उसमें और मेष लग्न में बहुत समानता है। कदाचित् यह दोनों राशियों का स्वामी एक ही ग्रह मंगल के होने से हो। परन्तु दोनों को विलगाने की पहचान मेष के वर्णन में दे आये हैं। ये ही लक्षण प्रायः केतु के लग्नस्थ होने पर भी उपलब्ध होने लगते हैं और कभी-कभी पहचानना असम्भव-सा हो जाता है कि वस्तुस्थिति क्या है।

अतः जब यह प्रसंग उपस्थित हो जाय कि लग्न वृश्चिक है कि मेष, कि जन्म समय लग्न में केतु उग रहा था तो वहाँ देखना चाहिए कि आँखें वर्तुलाकार हैं कि नहीं। यदि आँखें वर्तुलाकार नहीं हैं तो मेष लग्न नहीं है। पुनः देखना चाहिए कि वह व्यक्ति बातचीत में आँखें फाड़कर बातें करने का प्रयत्न करता है कि नहीं और यह कि उसकी आँखें उस समय बाहर निकलती हुई-सी हो जाती हैं कि नहीं। यदि हाँ तो केतु अवश्य लग्न या उसके सान्निध्य में वर्त्तमान है और वहाँ वृश्चिक लग्न होने की सम्भावना कम है। उसी प्रकार वहीं यदि आकृति लम्बी, शरीर ढीला-ढाला और चेहरे में केतु के अन्य प्रमुख लक्षण उपस्थित हों तो वृश्चिक लग्न की सम्भावना को बिल्कुल हटा देना चाहिये। इस प्रकार चतुर्दिक दृष्टि रखने पर संदिग्ध आकृतियों में ठीक लग्न की पहचान अपनी विचार और ऊहा-पोह शक्ति से करना चाहिए। ऐसे प्रसंग पर अपना मत अतिशीघ्र स्थिर करने की आवश्यकता आ उपस्थित हो वहाँ धैर्य से काम लेते हुए दो-एक मोटी-मोटी बात प्रत्येक लग्न के विषय में अवश्य मानसपटल पर पहले से ही अंकित रखनी चाहिए। स्मरण रहे कि मेष लग्न में व्यक्ति लम्बा नहीं होता, वृश्चिक लग्न में शरीर ढीला और बलहीन कभी नहीं होता। ये ऐसी बातें हैं जो साधारण-सी लगने पर भी ऐसे अवसरों पर अचूक और तत्काल १०० में ९० अव्यर्थ सिद्ध होंगी।

बात ऐसी है कि यह विषय ही ऐसा है जिसमें अचूक पहचान के लिए बड़ा पूर्वाभ्यास खोजता है। लक्षणों को पढ़ने से, जैसा प्रारम्भ में ही उल्लेख कर दिया गया है, उसकी वास्तविक पहचान और चित्र हृदय में बैठते नहीं। सम्बद्ध कुण्डलियों और व्यक्तियों में उक्त लक्षणों को खोजकर देख-देखकर उनका चित्र मानसपटल पर स्थायी रूप में अंकित कर रखना पड़ता है कि व्यक्ति के सम्मुख आ उपस्थित होते ही उसे पहचानने में सोचना न पड़े।

उक्त मोटे लक्षणों-सा ही एक यह भी लक्षण है कि वृश्चिक लग्न हो तो प्रायः दन्तपंक्ति सुन्दर, सुशृंखलित, स्वच्छ और दृढ़ होती है (देखें चित्र ९३)। पर केतु की हालत में यह बात नहीं जैसा केतु के प्रकरण में स्पष्ट ही कह आये हैं। मेष

लग्न में भी दन्तपंक्ति उतनी विकृत नहीं होती पर दाँत पतले और सूच्याकार होने का झुकाव रखते हैं।

जहाँ यह संदेह हो कि लग्न सिंह है अथवा कन्या कि वृश्चिक, जैसा वृश्चिक वाली पचकी कोटि में होना सम्भव है, तो देखना चाहिए कि गाल पचके हैं या उठे हुए। यदि उठे हुए तो लग्न कन्या होगा। यदि उस पर व्यक्ति हंसमुख और प्रसन्न चेहरे वाला हो तो कन्या लग्न का अनुमान अव्यर्थ उतरना चाहिए। सिंह लग्न में ललाट का ऊपरी भाग बायें से दाहिने अपेक्षाकृत काफी चौड़ा होता है। वृश्चिक में ऐसा नहीं होता। (देखें चित्र ९३) सम्मुख ललाट और नीचे का मुख और ठुड्ढी लगभग लम्ब रूप वाली लगती है। यह बात सिंह के विरुद्ध हो। सिंह के मुखमण्डल पर रोब और गम्भीरता रहती है। वृश्चिक में दृढ़ता और कर्मठपना झलकता है।

अब वृश्चिक के उक्त लक्षण को स्पष्ट करनेवाले जो भी चित्र उपलब्ध हो सके हैं उन्हें पाठकों के समक्ष उपस्थित कर इस प्रसंग को छोड़ आगे बढ़ा जाता है। आकृति की वास्तविकता चित्रांक ४०, ३९, १, ५७, ६, ४५, ५० लेखक जैसे साधारण व्यक्ति को टपकती दृष्टि दुर्बलता से नहीं हो रही है। कदाचित फोटो के विशेषज्ञ इसे अधिक समझ सकें।

धनु

वृहस्पति की पहचान के लक्षण ऊपर बतलाये जा चुके हैं। गुरु के दो स्वक्षेत्र माने जाते हैं (१) धनु और (२) मीन। इनमें से धनु राशि के कुछ अंश उसके मूल त्रिकोण भी माने जाते हैं। लग्न में गुरु पड़ने से जो लक्षण आकृति में पैदा होते हैं वे थोड़ी हेरफेर के साथ धनु राशि के लग्न या चन्द्र लग्न होने पर उग आते हैं और सहसा गुरु के लग्नस्थ होने का भ्रम हो जाता है।

किन्तु थोड़े विचार से ही दोनों के विभेद स्पष्ट हो जाते हैं। स्मरण रहे कि गुरु स्वयं आकृति को नाटेपन की ओर ले जाने की प्रवृत्ति या झुकाव रखता है पर धनु लग्न का कदाचित् ही कोई व्यक्ति नाटा मिले। यदि वृहस्पति के साथ हो तो भी धनुर्धर राशि मनुष्य को पूरे ऊँचे कद का बनाता है। साथ ही गुरुकृत ग्रीक मुखाकृति और धनुकृत तद्वत् आकृति में पर्याप्त भेद होता है। ध्यान से मुखाकृति के अवलोकन पर पता चलेगा कि धनुकृत मुखाकृति में ललाट की काट किंचित् भोंडी है। अर्थात् ठीक-ठीक और आकर्षक ग्रीक काट का वह नहीं है। प्राय: पुटपुर से ऊपर बालों वाले कोनों तक ललाट की ऊपरी काट कुंठित हैं और ऐसा ऊपरले दोनों कोनों के ललाट की भीतरी ओर दबने के कारण हुआ है। ऐसा हो जाने पर ललाट की ऊपरली रेखा की लम्बाई उसकी निचली रेखा की लम्बाई से कम हो जाती

है। परन्तु वास्तव ग्रीकाकृति में ऊपरली रेखा ही किंचित बड़ी वा लम्बी होती है। धनु लग्न का ललाट इसी कारण ऊपर को थोड़ा भोंड़ा हो जाता है। साथ ही भौंहों से नीचे ठुड्ढी तक दोनों गालों और मुख के दोनों कोनों समेत सारी बनावट गुरुकृत की-सी ही हूबहू रहती है। अतः नीचे ऐसी आकृति और ऊपर ललाट उपरोक्त प्रकार भोंड़ी वा भोंड़ी-सी मिले तो बेखटके वह गुरुकृत नहीं धनुकृत है और यदि शरीरयष्टि ऊँची हो निश्चय ही गुरु वहाँ नहीं है बल्कि अकेली धनु राशि ही लग्न है। इस मोटा-मोटी विभेद को जानकर उसके अन्यान्य विभेदक लक्षणों के सहारे धनु लग्न पकड़ा जा सकता है।

इन विभेदक लक्षणों का ज्ञान धनु लग्न की आकृति के सविस्तर वर्णन से ही होगा।

सबसे प्रथम यह जान लेना चाहिए कि धनु लग्न में व्यक्ति का कद पूरा ऊँचा होता है दोहरी और बलिष्ठ हड्डियाँ पूर्ण विकसित और सारे शरीर को शक्तिमान बनानेवाली। लम्बे ऊँचे बदन के साथ दलीदार और नलीदार अस्थियों की पूरी बाढ़, शरीर का प्रत्येक अवयव शक्तिशाली और तोंद का बिल्कुल अभाव कर शरीर दोहरा हो, तो धनुराशि लग्नगत है। ऐसा जानना चाहिए।

शिर, सब मिलाकर, साधारण से वृहत्तर, ऊपर से नीचे लम्बा और दाईं से बाईं ओर की चौड़ाई से कुछ बड़ा। लगभग चौकोर समझें। पेशानी से लेकर दोनों जबड़ों और कनपटियों की अस्थि दलीदार प्रशस्त और सुदृढ़ पर साथ ही परस्पर पूर्ण सम्बद्ध और सुगठित होती है। देखते ही चेहरे से सशक्तता टपकती-सी लगती है। कपोल भरे, चौड़े और मांसल पर मेदहीन और पुए से दोनों ओर निकले हुए या फूले हुए नहीं होते। कपोलों की पूपाकृति बुध प्रदत्त ही होती है।

कर्णपटी प्रशस्त, विशाल, दृढ़ और आकर्षक होती है। रंग गौर और गालों की अस्थि भरी हुई और गद्देदार पर भद्दी बिलकुल नहीं होती। नासारन्ध्रों की दोनों ओर गालों के दोनों कोने उभड़े हुए गोल गुठली से लगते और नासाग्र इन दोनों पार्श्ववर्ती गुठलियों का विभाजक-सा काम देता है।

चेहरा भव्य, आत्मविश्वासी और प्रभावशाली के साथ-साथ सुन्दर और गम्भीर होता है।

ठुड्ढी ओठों के नीचे किञ्चित् लटकनशील और चौकोर बड़ी होती और इसके ठीक बीच में ऊपर से नाक की नोक की सीध में नीचे एक खड़ी गर्तरेखा

मुखाकृति की समद्विभाजक-सी पाई जाती है। ठुड्ढी स्थूल ही नीचे चौड़ी-सी (अर्थात् नुकीली नहीं) होती है।

ललाट प्रशस्त और ऊपर से ढरक कर भौंहों से आच्छादित होती है। यद्यपि यह अनिवार्य नहीं और छरहरी भौहें भी बहुधा मिलती हैं चारो ओर की हड्डियों की अच्छी बाढ़ के कारण साधारणतः आँखों के कोटरों को पर्याप्त खोखला और गहरा होना चाहिए था। पर ऐसा होता बहुत ही कम है। उसके बदले साधारणतः कोटर उथले और आँखें प्रशस्त और साधारणतः उथली हो बैठी हुई मिलती हैं। भौहें (छरहरी भी) लम्बे मोटे और स्निग्ध बालों से गुच्छेदार रेखा-सी (मोटी रेखा सी) बनी होती हैं।

आँखें श्वेतारुण विशाल, पानीदार, लाल डोरों से समन्वित और गूढ़दर्शी होती है। कह आये हैं कि सुगठित और सम्बर्द्धित अस्थिपञ्जरों के बीच अक्षिकोटर बड़े और विस्तीर्ण तो होते पर साधारणतः छिछले ही होते हैं जिन में आँखों का जड़ाव साधारण ही होता है।

शिर के बाल सघन, स्निग्ध, मोटे पर कोमल और कर्णपटी दोनों ओर ऊपर शिर के बालों में घुसी हुई और सारा चेहरा गुरुकृत आकृति को उभाड़ लाने वाला होता है।

अंगों के जोड़ केतुकृत जोड़ों की नाईं बेहद ढीले तो नहीं पर वृश्चिक के जोड़ों की नाईं सख्त गठे भी नहीं होते।

ललाट तो सिंह की नाईं ही प्रशस्त और चौड़ा होता पर ठुड्ढी उसकी-सी नुकीली नहीं होती। ठुड्ढी लटकी या दृढ़ बढ़ी हुई तो होती है पर साथ ही मोटी और चौड़ी भी होती है।

इतनी चौड़ी या मुख के बाहरी कोनों तक ऐसी पसरी हुई कि यदि जरा भी और दोनों ओर बढ़े तो गालों और कर्णपटियों की एक सीध में आ जाय। जहाँ ठुड्ढी पतली और नुकीली जान पड़े तो वहाँ धनु के बदले सिंह का अनुमान अधिक ठीक होगा।

सारांश यह कि जहाँ उक्त प्रकार ऊँची डील हो, शरीर की हड्डियों की दली मोटी (पुष्ट) और सम्बर्द्धित हो, शरीर मेद प्रधान न होकर नसप्रधान हो और माँस नसें और त्वचा का पारस्परिक बैठाव ठोस, दृढ़ और सख्त (सकस) हो, शिर की

सभी हड्डियाँ चौड़ी और दृढ़तापूर्वक बढ़ी हों पर साथ ही पुष्ट और भव्य हों और मेद का आधिक्य न देख पड़े; ललाट प्रशस्त हो पर जिसके कोने बालों में शिर की ओर दूर तक घुसे हों (यह शनि लग्नस्थ हो तो कभी-कभी पेशानी सिकुड़ कर पतली और सघन पुष्ट बालों के कारण कोने आच्छादित भी हो जाते हैं) चेहरा दृढ़ता टपकनेवाला, भौहों के कोटर गहरे चौड़े पर धँसे हुए न हों, आँखें सतेज बड़ी-बड़ी और लाल डोरों वाली हों, बोली गम्भीर, गालों की उपरली हड्डी से लेकर नीचे ठुड्ढी तक (नाक, मुख, ओठ आदि समेत) ठीक काट का हो पर उन हड्डियों से ऊपरला भाग शिर के बालों तक ग्रीक आकृति का न होकर भोंड़ा हो या भोंड़ेपन की ओर का उसका झुकाव हो तो समझें कि जातक धनु लग्न या राशि में पैदा हुआ है।

कह आये हैं कि ऐसा समझना कि सभी वर्णित लक्षण कहीं एक ही व्यक्ति में उसे मिलेंगे भारी भूल है। ये सभी लक्षण अन्यान्य भिन्न-भिन्न ग्रहों की युति, स्थिति, दृष्टि और लग्नस्थित अन्यान्य राशियों के फेर से कुछ न कुछ प्रभावित मिलेंगे। कहीं दो-एक तो कहीं अधिक और कहीं लग्नवत् तो कहीं राशिवत्, न्यूनाधिक मिलेंगे। उनकी पकड़ पाठकों को अपने सूक्ष्म दर्शन और विवेक से करनी होगी।

एक बात की ओर अभी तक संकेत नहीं किया जा सका है कि धनु लग्न या राशि वाले व्यक्ति बहुधा घनी, लम्बी और गुच्छेदार दाढ़ी और मूँछें रखने वाले भी पाये जाते हैं। यह लक्षण स्पष्टतः शनि का है पर न जाने किस कारण यह बात धनु लग्न या चन्द्र लग्न के होने पर बहुधा पाया जाता है। दाढ़ी-मूँछ के अतिरिक्त कभी-कभी ऐसा व्यक्ति काकुल रखते भी पाया जाता है। अतः जहाँ धनु लग्न की पहचान में संदेह या द्विविधा जान पड़े वहाँ यदि मूँछों की काट विचित्र हो या वे बड़ी-बड़ी या लम्बी या गुच्छेदार या शान से चढ़ी हुई मिलें अथवा दाढ़ी में यहाँ या ऐसी ही कुछ विशेषताएँ देख पड़ें या शिर के बाल ही विचित्र ढंग से बढ़े या रखे पाये जायँ वहाँ ये लक्षण धनु लग्न या चन्द्र लग्न के निश्चायक सिद्ध होंगे। यदि शनि इस राशि के आसपास हो या देखता हो तो इस प्रकार के लक्षण बालों में अवश्य पाये जाते हैं अतः अन्य लक्षणों पर दृष्टि रखते हुए संदेहास्पद स्थलों पर इस लक्षण से निर्णायक काम बेखटक लिया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऊँचा पूरा डील अवयवों के दृढ़ गठन, हड्डियों की दुहरी बाढ़, नस प्रधान देह पञ्जर, मेद का अभाव, सशक्त अवयव और व्यक्तित्व, शिर और ललाट प्रशस्त, कपोलों के आसपास और कर्णपटी की हड्डियों की चौड़ी बाढ़, ठुड्ढी लम्बी, मोटी और चौरस मुखाकृति में ग्रीक काट की झलक पर उसमें थोड़ा भोंड़ेपन का पुट धनु राशि के जन्म लग्न होने की पहचानें हैं। देखें चित्रांक १९, ८, ९, ४९, ६४, ७२ और ७४।

मकर

मकर लग्न की पहचान मुखड़े से अधिक देह की गठन से होती है। गर्दन से ऊपर के अंगों की बनावट एक विशेष प्रकार की अवश्य होती है किन्तु वैसी ही या उससे मिलती-जुलती आकृति अन्यान्य लग्नों में भी पाई जाती है। अतः केवल मुखाकृति या मुखड़े से ही लग्न या राशि की पहचान कठिन और दीर्घाभ्यास की मुखापेक्षिणी है।

मुखड़ा चौकोर और ऊँचाई और चौड़ाई में लगभग समान जान पड़ता है। चेहरा भरा हुआ कभी-कभी दृढ़ और सख्त तो कभी-कभी ढीला-ढाला और फूला-फला होता है। ललाट प्रशस्त और चौड़ा होता है। शिर का आकार बड़ा और चौड़ा ही होता है। कदाचित् ही कभी कोई शिर छोटा मिले।

आँखों के कोटर बड़े गहरे और खोखले होने की ओर की प्रवृत्ति रखते हैं। देखने में आँखें छोटी और धँसी-सी लगती हैं पर जहाँ छोटी न भी लगे वहाँ वे बिलकुल कान्तिहीन और अनाकर्षक ही होती हैं पर तौ भी स्वतः सजीव ही रहती हैं।

किसी-किसी में आँखें धँसी, छोटी और तिरछी बैठाव की भी मिलती हैं जो शनि के लग्नस्थ या उसके निकटस्थ पड़ने का चिह्न विशिष्ट है।

बाल घने, मोटे, काले, रूखड़े और संबर्धनशील होते हैं। भौंहों के बाल सघन ही होते हैं पर यह बहुत आवश्यक नहीं।

दन्तपंक्ति दृढ़ और पर्याप्त सम्बद्ध होती है पर उसके दाँतों के आगे की ओर निकलने का झुकाव जरा भी नहीं होता। अधिकतर छोटे-छोटे सटे दाँत सीधा बैठे होते हैं और उनमें चमक रहती है और दृढ़ता तो सदा टपकती ही पड़ती है। देखें चित्रांक ६७, ६५, ३८, ६९, ५५, ४४, ३०।

गर्दन के नीचे कमर के ऊपर की बनावट चौकोर या चौपहल कहिए होती है। जितनी ही लम्बी-चौड़ी उतनी ही मोटी भी होती है। अर्थात् छाती और कन्धों के निकट की चौड़ाई और कमर की चौड़ाई दोनों बराबर और समतुल तो होती है पर साथ ही पीठ और छाती के बीच की मुठाई भी लगभग उतनी ही होती है। अर्थात् देह ईंट की नाईं चौपहल-सी हो जाती है।

तोंद मेदपूर्ण और मांसल तो होता पर निकलता बिलकुल ही नहीं और साथ ही कमर पतली भी नहीं होती। सूर्य के प्रभाव में भी ऐसी ही चौपहल देह होती

है पर उसमें कमर पतली और छाती उससे चौड़ी होती है। मेद का देह में अभाव और गठन सख्त और स्फूर्तिमयी होती है। दोनों की आकृतियों का विभेदक यही लक्षण है।

कमर के नीचे जांघ, पिंडुलियाँ, ठेहुने, घुट्टी और सुपलियाँ, सब गर्दन से नीचे की ऊपरवर्णित देह की गठन के अनुरूप अनुपात में बनी होती हैं। जंघे पुष्ट पर पिंडुलियों का पुष्ट और मोटा होना आवश्यक नहीं।

इसलिये जहाँ मुखाकृति चौड़ी और चौपहल, आँखों के कोटर बड़े या धँसे, आँखें सजीव पर अनाकर्षक, गर्दन से कमर तक की बनावट चौपहल, थुलथुल भी पर तुन्दिल कभी नहीं, छाती और कमर की मुटाई लगभग समान, कमर पतली नहीं और कमर के नीचे की बनावट देह की बनावट के ही अनुरूप हो वहाँ मकर लग्न का अनुमान या राशि का अनुमान ८०% व्यक्तियों में ठीक पाया जायगा। यह लग्न भी पहचान के लिए निरन्तर और दीर्घाभ्यास खोजता है। शिर वृहत, चेहरा चौड़ा और भरा-पूरा, किन्तु आगे को निकला हुआ बिलकुल ही नहीं।

नाक लगभग भोंड़ी और चेहरे से बुद्धिमत्ता बिलकुल नहीं टपकती, जब तक शनि स्वयं मकरस्थ न हो। जब वृहस्पति की पूरी दृष्टि इस लग्न पर पड़ती है, विशेष कर जब गुरु उच्चस्थ हो, तो चेहरा ग्रीक काट का आकर्षक और प्रतिभान्वित होता है। सिर में मोटे बालों की खासी अच्छी बाढ़ होती है यहाँ तक कि सारा शरीर भी रोमों से आवश्यकता से अधिक आच्छादित रहता है।

लग्नस्थ शनिवाले व्यक्ति को छोड़कर प्रायः सर्वत्र ऊँचाई मध्यम ही मिलती है। लग्नस्थ शनि हो तो डील-डौल पूरा ऊँचा भी पाया जाता है और साथ ही असाधारण कृशता का भी अभाव होता है।

मकर लग्न वाला व्यक्ति प्रायः धीमा पर कठिन परिश्रमी होता है।

हड्डियाँ दलीदार और मोटी ही होती हैं और शनि द्वारा अन्यत्र प्रदत्त कृशता का अभाव भी प्रायः होता है।

मनुष्य का स्वभाव बाहर से धर्मभीरु होता है।

कभी-कभी नाक की नोक उठी हुई मिलती है।

कुम्भ

मकर की मुखाकृति चौकोर-सी पर कुम्भ की गोलाकार होती है। चौकोर मुखाकृति भी कभी-कभी गोली लग सकती है पर कुम्भ की कभी चौकोर नहीं

लगती। गोली मकर मुखाकृति से कहीं अधिक गोली कुम्भ की मुखाकृति हो जाती है। कुम्भ के लग्न होने पर गाल पूए के समान दोनों ओर (बुध की गालों) की नाई निकले होते हैं पर मकर के गालों में इस प्रकार से निकलने की ओर के झुकाव का नितान्त अभाव होता है। बुध के लग्नस्थ होने या मिथुन के लग्न होने पर गालों में जो गोलाई निकल आती है ठीक वैसी ही कुम्भ के लग्न होने या चन्द्र लग्न होने पर कभी-कभी पैदा हो जाती है। सिंह की मुखाकृति (प्रशस्त किस्म वाली) बड़ी भव्य और प्रभावोत्पादक होती है पर कुम्भ की ठीक उल्टी भोंड़ी और देखने में भोली-भाली और सादी-सी अनाकर्षक होती है।

ऊपर कह आए हैं कि गाल मांसल पूए-सी फूली हुई होती है और मुखड़ा इसी कारण वृत्ताकार लगता है।

पेट विशाल, लम्बा और प्राय: निकला हुआ-सा लगता है मानों वहाँ एक पानी का घड़ा बँधा हुआ हो। शिर शरीर के अनुपात से बड़ा नहीं होता। स्वभाव धार्मिक और दार्शनिक तर्क-वितर्क की प्रवृत्ति वाला होता है।

जाँघ और पिंडलियाँ मोटी और पुष्ट होती हैं। सुपलियाँ भी अपेक्षाकृत भरी हुई और मांसल होती हैं।

कमर पर शरीर मोटा और वजनी होता है पर आँखें सुन्दर नहीं होतीं बल्कि अनाकर्षक होती हैं। अधिक संख्या में आँखों की आकृति देखने में वर्तुलाकार लगती है। धँसी होने के कारण पपनियाँ सटी-सी लगती और सुन्दर आँखें भी निस्सार लगती हैं।

डील-डौल ऊँचाई में मध्यम ही होता है यद्यपि एकहरे और दोहरे शरीर के जातकों की कमी नहीं होती। एकदम दुबले-पतले आदमी भी मिले हैं और उनमें से कुछ तो बड़े विचारक, राजनेता, न्यायाधीश और दार्शनिक भी हैं। धार्मिक नेता तो बहुधा ऐसे ही मिलते हैं।

देखें चित्रांक ५, ३२, ४२ और ७३।

मीन

मीन लग्न हो तो व्यक्ति नाटी खूँटी वाला होता है पर शरीर दोहरा, चौड़ा और मोटा ही होता है (देखें चित्र ९०)। यह लक्षण बहुसंख्यक व्यक्तियों में प्रतीकात्मक पाये जाने पर भी अव्यर्थ नहीं है। अत: इसे सुनहले नियमों में गिनना अभी युक्तिसंगत या समुचित नहीं होगा।

सामने से चेहरा चौड़ा और प्रशस्त लगता है देखें चित्र ९० । पर काफी दुबली-पतली; बेमांस मेद की, चिपटी-सी, चारो ओर से खोखली और अस्थिमय मुखाकृति भी जिस पर शुकचंचुवत् उठी और मुड़ी नासिका हो काफी संख्या में मिलती हैं। बहुधा देखने में आता है कि मुखाकृति सामने से नासिका द्वारा समद्विभाजित हो। इसी के साथ नीचे की ठुड्ढी के ठीक बीच में (अर्थात् मध्य चिबुक में) एक छोटा गर्त एक प्रकार की प्रधानता प्राप्त किये रहता है। चिबुक स्वयं चौड़े आकार का होता है। कर्णपटी पर्याप्त चौड़ी होती है। अर्थात् कान से नाक की बगल में उभड़ी हड्डी की नोक तक की दूरी पर्याप्त बड़ी होती है।

बातों में प्रसन्नता टपकती रहती और बातें करने का ढंग शालीन होता है। आश्चर्य कि गुरु का क्षेत्र होते हुए भी यह लग्न मुखाकृति को ग्रीक काट नहीं दे पाता।

द्विस्वभाव सभी राशियों की यह एक प्रकृति-सी है कि यदि उनके चेहरों को एक मध्य रेखा से बाँटें तो वे अनायास एक ही रूप-रंग के दो भागों में विभक्त हो जाते हैं। विभाजन प्राकृतिक-सा और अनायास मन में अंकित हो उग आता है।

अन्यान्य प्रकार की राशियों में जैसे चर या स्थिर राशियों में यह बात नहीं पाई जाती। चिबुक मध्य का यह गर्त इस विभाजन की मध्य विन्दु है और देखने से प्राकृतिक रूप में उत्पन्न-सी जान पड़ती है। चारो द्विस्वभाव राशियों की नैसर्गिक बनावट की यह एक प्राकृतिक पहचान है जो अन्यों में नहीं पाई जाती।

इन चारों द्विस्वभाव राशियों (मिथुन, कन्या, धनु और मीन) के बीच का विभेद इस प्रकार का है—

मिथुन की आकृति लम्बी होती है। आकृति से यहाँ तात्पर्य सामने की मुखाकृति से है। अर्थात् मिथुन के प्रभाव वाली मुखाकृति में शिर के बालों से लेकर नासिका होते ठुड्ढी तक की दूरी मुख की चौड़ाई की दूरी से (अर्थात् नाक की दोनों ओर के गालों के एक छोर से दूसरे छोर तक की दूरी) अधिक होती है।

कन्या के प्रभाव वाला मुखड़ा प्रायः लम्बा और चौड़ा बराबर होता है और साथ ही दोनों ओर गाल भरे मांसल और प्रशस्त होते हैं। अर्थात् दोनों पार्श्वों की हड्डियाँ पूरी सम्बर्धित होती हैं।

धनु का मुखड़ा मिथुन और कन्या दोनों से मिलता-जुलता होता है। ऊपर नीचे की लम्बाई तो मिथुन की-सी बड़ी होती पर नाक की दोनों ओर कर्णपटियों की बनावट कन्या-सी होती है। देखने में यह मुखड़ा पहले मिथुन का-सा प्रतीत होगा

होगा पर तुरत समझ पड़ेगा कि यह उतना लम्बा मुखड़ा नहीं है जितना मिथुन का प्राय: मिलता है। जहाँ दोनों में अनुरूपता का संदेह हो वहाँ सारे शरीर का मजबूत गठन धनु की निश्चायिका होता है।

धनु वाली मुखाकृति के प्रकरण में यह लिखा जा चुका है कि नाक के नीचे का सारा मुखड़ा ग्रीकाकृति और नाक से ऊपर का हिस्सा बेमेल होता है। इस लक्षण से धनु लग्न या राशि बड़ी आसानी से अचूक पकड़ी जाती है।

मीन का मुखड़ा ऊपर-नीचे की अपेक्षा दायें-बायें अधिक चौड़ा होता है। अनुपातत: साथ ही शरीर बहुत छोटा होता है। देखें चित्रांक १२, ३७।

वृष

वृष और तुला दोनों शुक्र ग्रह के आधिपत्य में आते हैं किन्तु तुला लग्न को जितनी सुगमता और स्पष्ट रूप से पहचान पाना सहज है उतना ही वृष लग्न को पहचान पाना कठिन है। जहाँ तुला लग्न की आकृति संतुलित, भव्य और आकर्षक होती है वहाँ वृष लग्न में संतुलित-अतुलित भव्य और अभव्य सभी प्रकार की आकृति मिल जाती है। कभी तो आकृति विशेषकर मुखाकृति पूरी भरी हुई विशाल और भव्य मिलती है तो कभी-कभी संकुचित छोटे डौल की, एकहरे लम्बे बदन और लम्बी गर्दन पर चिपटाई हुई-सी भी मिल जाती है पर डौल और पुष्टि चाहे जैसी हो आँखें सदा विशाल पुष्ट चमकीली और आकर्षक ही होती हैं।

वृष लग्न हो तो कभी-कभी मनुष्य का बदन दोहरे डील-डौल वाला ऊँचा पूरा, सांगोपांग भरा हुआ और सुन्दर होता है पर नाटे डौल के लोग भी इसमें कम नहीं मिलते। किन्तु इतने वर्णन से वृष लग्न को पहचान पाना असम्भव है। साधारणत: चेहरा चौड़ा और प्रशस्त, ललाट ऊँचा, भौंहें काली और धनुषाकार और मनुष्य आकर्षणपूर्ण और भव्य होता है। दन्तपंक्ति सुदृढ़, पुष्ट और सुचारु रूप से संगठित होती है। आगे के ऊपरले दाँत और नीचे के जबड़े और दाढ़ें सुदृढ़ और समवर्द्धित होती हैं। सब प्रकार की मुखाकृतियों को वृष लग्न में पाने की आशा ऊपर व्यक्त ही की जा चुकी है किन्तु उपरोक्त सभी लक्षणों में से कोई भी वृष लग्न की पहचान का सुनहला लक्षण नहीं है।

जब आप किसी आकृति में किसी अन्य लग्न के सुनहले लक्षण न पावें और साथ ही मनुष्य को आगे की ओर कंधे से ऊपर गर्दन समेत झुकने की ओर

का झुकाव पावें तो उसे वृष लग्न का सुनहला लक्षण समझें चाहे मनुष्य एकहरे बदन का हो चाहे दुहरे का, चाहे ऊँचा पूरा या नाटा हो, चाहे भरे चेहरे का चाहे खोखले चेहरे का हो और चाहे वह भव्य-अभव्य-आकर्षक-अनाकर्षक कुछ भी हो किन्तु यदि वह कन्धों और गर्दन समेत आगे को झुका हुआ मालूम हो या झुकने की उसकी आदत हो तो वह, मनुष्य वृष लग्न का है ऐसा अनुमान करें और यदि अन्य लक्षण सहकारी हों तो उसे वृष लग्न का व्यक्ति समझें। देखें चित्रांक ७, ६३, ८१ लम्बे डील-डौल और आकृति वाले व्यक्ति को वृष लग्न के कारण आगे की ओर झुकते हुए पाना तो साधारणतया समझ में आता है किन्तु आश्चर्य यह है कि नाटे और दोहरे बदन के लोग भी कंधे के निकट से आगे का झुकाव रखनेवाले होते हैं। लम्बी गर्दन वाले व्यक्तियों को तो छोड़ दें संकीर्ण गर्दन वाले लोग भी निश्चय आगे की ओर का झुकाव कंधों के निकट से रखते हैं। जहाँ गर्दन की संकीर्णता के कारण गर्दन का झुकाव आगे की ओर असम्भव हो वहाँ भी कंधों के निकट से ऐसे व्यक्ति कुबड़ों से झुकाव वाले हो जाते हैं। मेरे विचार से वृष लग्न की पहचान का मनुष्याकृति में यह लक्षण अव्यर्थ-सा है और देश-काल-पात्रानुसार अन्य सहकारी लक्षण मिलें तो वृष लग्न का अनुमान अव्यर्थ होगा। लेखक का यह कथन नहीं है कि कुण्डली में जिन लोगों के वृष लग्न पड़ा हो वे सभी कंधों और गर्दन से कुबड़े होंगे बल्कि कथन यह है कि यदि मनुष्य उक्त प्रकार कंधे और गर्दन के निकट से कुबड़ा-सा हो और कुछ अन्य सहकारी लक्षण हों तो उस मनुष्य का जन्म वृष लग्न में हुआ होगा। वृष लग्न पड़ने से ही वह कुबड़ा होगा यह निश्चित नहीं किन्तु यदि वह उक्त प्रकार कुबड़ा हुआ तो उसका लग्न वृष होगा ऐसा अनुमान करने में भूल की संभावना नाम मात्र की होगी। ऐसा क्यों होता है इसका स्पष्टीकरण पहले किया जा चुका है जहाँ यह समझाया गया है कि आकृति के सटीक लक्षणों को पाकर ग्रह तो निश्चयपूर्वक पहचाना जा सकता है किन्तु ग्रह देखकर लक्षण पकड़ पाना निश्चित नहीं।

सहकारी लक्षणों के लिए व्यक्ति के वेश-भूषा, केश-विन्यास, रहन-सहन, बोल-चाल और उसके पहनावे के ढंग पर ध्यान देना चाहिए। यदि उसकी वेष-भूषा सुरुचिपूर्ण और आकर्षक हो, पोशाक कीमती और तुनुक हो, बेशकीमती न हों पर सुन्दर, आकर्षक और अनस्तव्यस्त हों या उनके पहनने और सम्भालने का ढंग सुन्दर और संतुलित हो तो यह लक्षण शुक्र के प्रभाव का अतः वृष और तुला के प्रभाव का द्योतक है और ऐसी स्थिति में कुबड़ेपन की स्थिति में वृष लग्न की उपस्थिति सहज ही पकड़ पावेंगे। उसकी अनुपस्थिति में वृष लग्न की सम्भावना की कल्पना हटा देनी चाहिए। उसी प्रकार दंतपक्तियों की स्वच्छता और

सुन्दरता, हंसमुख बोल-चाल, वार्तालाप में कोमलता और लजीलापन तथा केश-विन्यास की सुन्दरता पर विशेष ध्यान चेहरे की चिकनाहट और नमकीनापन शुक्र प्रभावगत ही है। जहाँ भौहों का बाँकपन विशेष और सुन्दर लगे वहाँ भी शुक्र का प्रभाव जानना चाहिए। इन लक्षणों के साथ यदि मनुष्य की आकृति में आगे की ओर के झुकाव का लक्षण (कुबड़ापन) प्रधानता प्राप्त करता हो तो वहाँ वृष लग्न का अनुमान यदि अन्य कोई विशेष भूल न हो तो अव्यर्थ होना चाहिए।

इसी प्रकार मनुष्य की चाल-ढाल, सामूहिक व्यवहार, स्वभाव की कोमलता और नम्रता, आँखों की सजावट और उनमें काली पुतलियों के साथ लाल डोरों की सजावट इत्यादि अनेक ऐसी बातें हैं जो शुक्र प्रभाव-क्षेत्र में आती हैं। इन्हें भी सहकारी लक्षणों में लेकर उपरोक्त सुनहले नियम के लागू होने पर वृष लग्न का अनुमान प्रायः अव्यर्थ रूप से किया जा सकता है। देखें चित्राङ्क ७, २४, ६१।

कर्क लग्न

कर्क लग्न का आकृति से अनुमान कर पाना सभी लग्नों के अनुमान करने से बहुत कठिन है। वस्तुतः डील-डौल और हर प्रकार की आकृति देखने को मिल जाती है। इस लग्न की पहचान का एक ही चिह्न सदा सबमें नहीं पाया जाता चाहे वह व्यक्ति की मुखाकृति हो या उसका शरीर। इसके लग्न होने से एक ही साँचे और रंग-ढंग के लोग भी नहीं उत्पन्न होते। लेखक के हजार प्रयत्न करते रहने पर भी इसे पहचान लेने का कोई सुनहला लक्षण नहीं मिला। इसलिए लेखक आपको इसकी पहचान का कोई सुनहला लक्षण नहीं दे सकता। अतः लेखक आपको यह सुझाव देता है कि जब आप किसी व्यक्ति की आकृति विशेष को किसी अन्य लग्न में न बाँध पावें या समाविष्ट न कर सकें तो उस आकृति को कर्क लग्न-गत समझें। आप देखेंगे की थोड़े अभ्यास से इस प्रकार से आप ८०% मुखाकृतियों में कर्क लग्न निश्चित रूप से पा सकेंगे। इस लग्न में व्यक्ति की ऊँचाई, उसके चलने-फिरने के ढंग, मुखाकृति के चिह्न, मेद, शरीर की बनावट और उसका आकर्षण हर व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः लक्षणों से उस लग्न को पकड़ पाना कठिन है।

अधिकांश आकृतियों में कर्क लग्न होने पर वृहस्पति के प्रभाव के सुनहले लक्षण के अन्तर्गत वाली ग्रीकाकृति के सुन्दर लक्षण प्रकट होते देखे जाते हैं पर इतने मात्र से कर्क ही लग्न है ऐसा कह पाना प्रायः असम्भव है। गुरु की पहचान के सुनहले लक्षणों में ग्रीकाकृति गुरु के लग्नस्थ होने के प्रधान लक्षणों में से है। अतः ग्रीकाकृति से यह कह सकना कि गुरु लग्नगत है या कर्क राशि लग्नगत है असम्भव है। तब यदि थोड़ा तर्क लगाया जाय तो कर्क का

पकड़ पाना कदाचित् सम्भव हो। गुरु के लग्नगत होने पर दो-तीन बातें लक्षण रूप अवश्य पायी जाती हैं। जैसे—मझोला कद, दोहरा बदन और ग्रीकाकृति। तो जहाँ ग्रीकाकृति दृष्टिगत हो पर व्यक्ति एकहरे बदन का भी लम्बी शरीरयष्टि का हो और साथ ही उसकी मुखाकृति ग्रीक हो तो आप कर्क लग्न का अनुमान कर सकते हैं। उसी प्रकार यदि ग्रीकाकृति के साथ उपरोक्त लक्षणों के अभाव में मनुष्य की बोली में घड़घड़ाहट न हो या गले से बेजान फेफड़े की नाईं शक्तिहीन और घिसघिसाहट लिए कोमल आवाज न हो पर ग्रीकाकृति हो तो सम्भव है कि कर्क लग्न हो। इस प्रकार अपने तर्क के बल पर प्राप्त देशकालपात्रानुसार अनुमान करके ही कर्क लग्न पकड़ा जा सकता है। देखें चित्रांक ८६, १८, और २५।

तुला लग्न

वृष लग्न की पहचान के विपरीत तुला लग्न की पहचान अधिक सहज और निश्चायक है। तुला लग्न वाले व्यक्ति की सबसे पहली पहचान उसकी गात्रयष्टि की ऊँचाई है और यह स्मरण रखना चाहिए कि तुला लग्न का व्यक्ति प्रायः मध्यम ऊँचाई से अधिक ऊँचाई का होता है। अर्थात् उसकी गणना साधारणतः लम्बे व्यक्तियों में ही होती है। ऊँचाई से संतुष्ट होने के बाद उसकी मुखाकृति की बनावट पर ध्यान देना चाहिए। उसकी मुखाकृति सामने की ललाट की ओर से ठुड्ढी पर्यन्त कुछ विशेष लम्बाई लिए हुए होती है अर्थात् यदि उसके मुख के बीचोबीच नाक की दोनों ओर की हड्डियों की नाप ली जाय तो वह ललाट से ठुड्ढी तक की लम्बाई से कम होगी। गाल की उपरोक्त दोनों हड्डियों की जगह उसका मुख बाहर की ओर निकलने का झुकाव रखता है। इसको यों समझें कि यदि एक रेखा ललाट के मध्य विन्दु से ठुड्ढी तक सीधी खींच दें तो मुख का वह भाग इस रेखा से बाहर की ओर निकलता हुआ जान पड़ेगा। इतना होने के बाद शेष सभी भागों की बनावट संतुलित होती है और सब मिलाकर चेहरा भव्य और आकर्षक होता है। शुक्र प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत आने के कारण तुला वाला व्यक्ति अपनी वेशभूषा पर विशेष ध्यान देता है। उसे अस्त-व्यस्त वस्त्राभूषण बिलकुल नापसंद होते हैं। उनके मुख का वर्ण उतना गोरा नहीं होता जितना प्रायः सचमुच वह देखने में लगता है। इसकी पहचान यह है कि चेहरा गोरा लगने पर भी उसके होठों पर ध्यान देते ही वह भ्रम जाता रहता है क्योंकि होठों के रक्त की गोराई वह नहीं होती जो उसके चेहरे पर देखने में लगती है। अर्थात् रक्त में श्यामता का पुट स्पष्ट होता है जो चन्द्रमा के प्रभाव में इसके ठीक विपरीत होता है। दोनों ग्रहों के रक्त पर के इस प्रभाव पर ध्यान देते ही दोनों को विलग करने में और उनकी पहचान में भूल होने की सम्भावना नहीं रहती।

तुला वाले व्यक्ति की आँखें प्रायः प्रशस्त, बड़ी और आकर्षक होती हैं और उनमें लाल डोरों का पुट सदा मिश्रित होता है। आँखों की सजीवता और उनकी मर्मभेदी शक्ति देखते ही बनती है। जहाँ शक्तिहीन और दुष्ट ग्रहों के प्रभाव से आँखें प्रभावित हो जाती हैं वहाँ ही इस लक्षण में विभेद मिलता है अन्यथा उपरोक्त बातें सदा वर्तमान रहती है।

ठुड्ढी पतली और ठूँठ होती है। शिर का आकार साधारण प्रकार का पर चारों ओर से संतुलित बनावट का होता है। देखने में शायद ही कभी तुला का शिर विशाल मालूम हो। दन्तपंक्ति इतनी संतुलित होती है कि देखते ही बनता है। दन्तपंक्तियों की सुन्दर बनावट के कारण ही सारे शिर का आकार सहज ही संतुलित हो जाता है। व्यक्ति कम बोलता है पर जब बोलता है तब सदा तर्कपूर्ण, सारगर्भित और प्रभावपूर्ण बोलता है और उसके विचार संतुलित होते हैं। शरीर के अन्यान्य अवयव पारस्परिक अनुपात में बने होते हैं और उनका संगठन एक दूसरे के पूरक रूप में हुआ रहता है। व्यक्ति का सारा स्वरूप सर्वांगपूर्ण और दृढ़ जान पड़ता है। व्यक्ति काम-काजी और उद्योग-व्यापार में चतुर और दिलचस्पी लेनेवाला होता है। तुला की बनावट का ठीक-ठीक ज्ञान बिना इस प्रकार की दर्जनों आकृतियों के परीक्षण और निरीक्षण के नहीं हो सकता। यद्यपि तुला की आकृतियाँ साधारणतः बहुत मिलती हैं और अभ्यस्त आँखों द्वारा शीघ्र पहचान ली जाती हैं तो भी उनका विवरण असाधारण रूप से कठिन होता है क्योंकि तुला के व्यक्ति के विभिन्न अंगों में वैचित्र्य बहुत कम होता है। देखें चित्रांक ३, ४, ७०, ३०, १३, ७८, २६, ८४, ८७ और २७।

मिथुन और कन्या लग्न

अब मिथुन और कन्या दो लग्नों की पहचान के लक्षणों का वर्णन शेष रहा। ये दोनों लग्न बुध के आधिपत्य में आते हैं और बहुसंख्यक लक्षण दोनों में समान रूप से प्रकट पाये जाते हैं इसलिए दोनों का एक साथ वर्णन अनुचित नहीं होगा।

बनावट के हिसाब से दोनों में मुखाकृति की दोनों ओर गाल पुए के समान फूले हुए पाये जाते हैं और विभेद इतना ही है कि कन्या की मुखाकृति लम्बाई और चौड़ाई

में लगभग समान होती है। इसलिए चौकोर और गोलाई के बहुत सन्निकट होती है। किन्तु मिथुन सिर से ठुड्ढी तक ऊपर से नीचे लम्बा होता है और दोनों पार्श्वों के बीच पर्याप्त संकीर्ण होता है। दोनों में गालों की बनावट की समानता के कारण मुखाकृति भरी हुई लगती है और नाकों के दोनों ओर की हड्डियाँ लगभग गालों की बनावट में विलुप्त हो जाती हैं। यहाँ चौड़ाई ही कन्या की आकृति को मिथुन की आकृति से अलग करती है। दोनों में आँखें सजीव, प्रशस्त और पानीदार के साथ लाल डोरों-सी रेखाओं से समाच्छन्न पायी जाती हैं। किन्तु कन्या में ये रेखायें कभी-कभी नगण्य-सी होती हैं। मिथुन की आकृति देखने में गम्भीर-सी किन्तु कन्या की चंचलता लिए हुए और समालोचनात्मक वक्तव्य के लिए आकुल-सी लगती हैं।

मिथुन वाले व्यक्ति की पूरी आकृति दो प्रकार की मिलती है। एक तो बहुत लम्बी और दूसरी पर्याप्त नाटी। किन्तु कन्या की आकृति सदा मध्यम कद की होती है। इसमें ऊँचाई नियम के विरुद्ध ही मिलना विस्मयकारक है। मिथुन की देहयष्टि लगभग सूर्य की देहयष्टि के समान चौकोर-सी चौपहल और कंधों से कमर तक समानान्तर रेखाओं के बीच होती है। किन्तु विशेष चौड़ी प्रायः नहीं पायी जाती। कन्या की आकृति में यह बात नहीं, इसमें शरीर दोहरे बदन का भरा हुआ और मांसल तो मिथुन के समान ही होता है और अपने कद के हिसाब से चौपहल भी, किन्तु चौड़ाई में मिथुन से बड़ा और कद मँझोला होने के कारण मिथुन की देह से बहुत अधिक चौड़ा लगता है। दोनों में पेट निकलने नहीं पाता और साधारण से अधिक कभी अवस्था में बढ़ने नहीं पाता। किन्तु इसमें कन्या लग्न के व्यक्तियों में विशेषकर जब वृहस्पति का प्रभाव उसपर होता हो तो पेट (तोंद) बहुत निकल आता (चालीस की अवस्था के बाद) है।

मिथुन वाले व्यक्ति में मुस्कराहट और स्मिति सदा प्रत्यक्ष बनी रहती है और व्यक्ति बातें करते समय बिना मुस्कुराहट और हँसी की प्रसन्नता मुखमंडल पर लाये बातें नहीं कर सकने की प्रवृत्ति रखता है। कन्या के व्यक्तियों में भी मुखमंडल हार्दिक प्रसन्नता के साथ बातें करते समय हँसी टपकी पड़ती है। किन्तु व्यक्ति मुस्कुराता कम ठहाका अधिक लगाता है। अर्थात् उसकी हँसी हृदय के भीतर से निकलती है। मिथुन की मुस्कुराहट और स्मिति समझदारी की जड़ से निकलती

है किन्तु मुस्कुराहट और हँसी के बात पर ये दोनों निश्चय रूप से पहचाने जा सकते हैं और दोनों का बिलगाव उपरोक्त विभेदक लक्षणों से किया जा सकता है।

दोनों में शिर के बाल और भौंह गाढ़ी काली किन्तु उतनी सघन नहीं होती जितनी शनि के कारण पायी जाती हैं। किन्तु इतनी हलकी और छेहर भी नहीं पायी जाती कि जितनी सूर्य के कारण पायी जाती है।

ललाट दोनों में ऊँचे और प्रशस्त होते हैं और बिना बालों वाले कोने दोनों में पर्याप्त भीतर तक पैठे होते हैं। कभी-कभी मिथुन की ललाट अपेक्षाकृत पतली पायी जाती है विशेषकर मिथुन की नाटी वाली आकृतियों में जिनमें बाल सामने ललाट पर कुछ उतर आते हुए-से लगते हैं।

मिथुन का वार्तालाप संयत और अपेक्षाकृत गम्भीर ही होता है जो मुखाकृति पर के मुस्कुराहट आदि के रहते हुए भी भाँप लिया जाता है। किन्तु कन्या वाले व्यक्तियों का वार्तालाप अधिक समालोचनात्मक और तात्कालिक प्रत्युत्पन्नमतित्व लिए होता है। कन्या वाले व्यक्ति सूक्ष्मद्रष्टा होने के कारण विशेष रूप से और विस्तृत समालोचक होते हैं। मिथुन में ऐसी कोई बात नहीं किन्तु दोनों वक्तृत्व शक्ति सम्पन्न होते हैं और लम्बी बातें धड़ल्ले से कर सकते हैं। यदि बुध बलवान हुआ और लग्न धन या लाभ भाव में बैठा रहे तो मिथुन वाले व्यक्ति भी बहुत बातें करने वाले होते हैं। यदि बुध निर्बल हुआ तो अनर्गल प्रलापी भी होते हैं। लम्बी आकृति के मिथुन वाले व्यक्तियों में ऐसा कम होता है किन्तु मिथुन के नाटे कद वाले व्यक्तियों में इस प्रकार के व्यक्ति अधिक मिलते हैं।

मिथुन के व्यक्ति की शरीर यष्टि में अवयवों की बनावट वर्तुलत्व लिए होती है। अर्थात् हाथों, पैरों, गर्दन, कंधों और गालों में यह वर्तुलत्व विशेष रूप से दीख पड़ता है। कन्या के व्यक्तियों में यह आवश्यक नहीं।

दोनों में त्वचा क्षीण और कोमल ही मिलती है और यदि दूसरा कोई विशेष कारण न हो तो वर्ण गौर होता है और रक्त भीतर से फूट निकलने का झुकाव रखता है। कन्या के व्यक्तियों में त्वचा के नीचे की नसें अधिक पुष्ट और कभी-कभी स्पष्टता लिए हुए उभड़ी-सी होती हैं। किन्तु मिथुन में ऐसा नहीं होता।

ऊपर के जो भी लक्षण बतलाये गये वे अचूक नहीं हैं। किन्तु लगभग अचूक से ही हैं। अन्य लग्नों से विभेदक के रूप में ये तो अचूक ही हैं। किन्तु अपने ही दोनों में थोड़ा-सा और विभेद होता है। यदि लक्षण स्पष्ट प्रकट हो और हँसी के

प्रकार की पकड़ में भूल न हो तो हँसी कन्या की अचूक पहचान है। मिथुन में भी यह लक्षण ज्यों का त्यों प्रकट ही रहता है किन्तु उसकी शरीरयष्टि की ऊँचाई मिथुन को विलग कर देती है। कन्या की शरीरयष्टि में या मुखाकृति में मुखाकृति की बनावट लम्बाई और चौड़ाई के समत्व रूप के कारण कन्या लग्न का विभेदक होती है। इन दोनों की पहचान के लक्षण अचूक ही हैं और इन्हें स्वर्णिम कहा जा सकता है।

दाँतों की बनावट मध्यम आकार की गठीली होती है और दाँतों की कांति दुधिया। दाँत सघन और मजबूत तथा कड़े होते हैं। कन्या की मुखाकृति में दन्तपंक्ति ध्यानपूर्वक देखने पर बहुत ही थोड़ी आगे की ओर निकलने की प्रवृत्ति-सी ज्ञात होती है। मिथुन में यह आवश्यक नहीं।

मिथुन की नाटी आकृति वाले लोग और कन्या के लगभग बहुसंख्यक व्यक्ति बहुत शीघ्रता से निर्णय लेने में स्वाभाविक तौर पर दक्ष होते हैं और उतनी ही फुर्ती से विचारों का कार्यान्वियन भी करते हैं। मिथुन की शेष आकृतियों में ऐसा कम होता है।

मिथुन का राहु लग्न में हो तो आकृति लम्बी और गाँठें ढीली होती हैं। बातों में स्वच्छता नहीं पायी जाती। स्वभाव लगभग धूर्त-सा हो जाता है। दाँतों की बनावट पर राहु का विशेष प्रभाव पड़ जाता है और दाँत बहुधा बाहर निकल आते हैं। शनि यदि मिथुन लग्न का हुआ तो आकृति तो लम्बी भी देता है किन्तु कभी-कभी नियमविरुद्ध नाटा भी कर देता है। हर हालत में शरीरयष्टि के अवयवों का वर्तुलत्व गायब हो जाता है। केतु के मिथुन गत होने पर राहु के समान ही काला होता है किन्तु दाँत कभी-कभी बहुत बढ़े हुए छेहर और अन्तर्मुखी होते हैं। कभी-कभी किन्तु सदा नहीं केतु के कारण दन्तपंक्ति की सजावट अँगरेजी के U अक्षर की नाईं हो जाती है। विशेषकर निचली पंक्ति में। वार्तालाप बहुत ठोस नहीं होता। सूर्य मिथुनस्थ हो तो मिथुन की आकृति खिल उठती है और मिथुन के सभी प्रभाव अधिक स्फुट देख पड़ने लगते हैं। व्यक्तित्व आकर्षक भी हो जाता है और बातूनीपना कम। शुक्र के मिथुनगत होने से वर्ण अधिक स्वच्छ और निर्मल-सा लगने लगता है। आँखें अधिक चंचल और सजीव हो उठती हैं और स्वस्थ सुधरा हुआ होता है। वृहस्पति मिथुनगत हो तो मुखमंडल पर गम्भीरता और चिन्ताशीलता बढ़ जाती है और आकृति अपेक्षाकृत नाटी हो जाती है। आँखों का ओज और वक्तृत्व शक्ति बहुत बढ़ जाती है। चन्द्रमा और मंगल मिथुन लग्न में कोई विशिष्ट लक्षण प्रकट करते नहीं देखे जाते।

कन्या में शनि की स्थिति आकृति को लम्बा नहीं कर पाती। किन्तु नाक और जबड़ों समेत ठुड्ढी वाले भाग को एक विशिष्ट रूप से चौड़ा कर देती है। ओठों के कोने कुछ विस्तृत हो जाते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल कोई अपना विशिष्ट प्रभाव प्रकट करते कन्या लग्न में नहीं देखे जाते। कन्या का बुध व्यक्ति को वाचाल और सारे शरीर को प्रशस्त करता हुआ भी देखा जाता है। लेखक को कुछ व्यक्ति ऐसे मिले जिनकी कुंडली में कन्यागत बुधचन्द्र के कारण वे मोटे हो गये। उतनी शरीर की मुटाई अन्य किसी ग्रह की युति-दृष्टि से नहीं पायी जाती केवल बृहस्पति और शनि की युति को छोड़कर। किन्तु बुध और चन्द्रमा की इस युतिवाले व्यक्ति बहुत ही अल्प संख्यक मिले। बृहस्पति और शुक्र की युति कन्या में ग्रीकाकृति के साथ शरीर को बेहद मोटा और तुंदिल बना देती है। कद मध्यम से भी छोटा बनाता है। इस सम्बन्ध में चित्रांक १०, १६, २२, २८, २९, ४२, ४६, ४७, ४८, ६६ और ७५ देखा जा सकता है।

अन्त में निवेदन है कि उपरोक्त लक्षणों को प्रकट पाकर ही ग्रहों की उपरोक्त स्थिति पकड़ने का नियम रखना चाहिए क्योंकि विपरीत नियम ठीक नहीं।

●

द्वादश प्रकरण

परिशिष्ट

अबतक आकृति से ग्रहों और लग्नों की पहचान के तीन प्रकार के नियमों का वर्णन आ चुका है। एक तो वैसे नियम हैं जो अनुभूत और सुनहले हैं अर्थात् जिन लक्षणों को पाकर सम्बद्ध ग्रह या लग्न की पहचान अचूक होती हैं। दूसरे प्रकार के वे नियम हैं जो अचूक तो नहीं लेकिन लगभग अचूक के ही समान है और जो सहचारी लक्षणों के रूप में अचूक लक्षणों को पूर्णतया निष्ठ कर देते हैं। तीसरे प्रकार के वे नियम हैं जो अभी पूर्णतया निश्चित लक्षण नहीं निर्धारित किए जा सके हैं किन्तु वे सहचारी नियमों के रूप में कभी-कभी बड़े काम के संदिग्ध अवसरों पर निश्चायक सिद्ध होते हैं। इन सभी नियमों के जान लेने के बाद इन्हें व्यवहार रूप में व्यक्तिगत आकृतियों में प्रयोग कर ग्रहादि की पहचान करने के अभ्यास के समय इन सबों का मन में ध्यान रखना आवश्यक होता है। व्यवहार में प्रयोग करते समय व्यक्ति विशेष को देखते ही सब बातें स्पष्ट नहीं होतीं और कुछ लक्षणों की ओर ध्यान आकृष्ट होने पर शेष लक्षणों को भी ढूंढ़ने का प्रयास करना पड़ता है। अतः इस प्रयास के नियमों को किस तरह प्रयोग किया जाय इसके लिए भी एक अपना तरीका अपनाना चाहिए।

सबसे पहला तरीका और आवश्यक बात तो यह है कि सभी नियमों को सांगोपांग समझ कर मन में बैठा लेना और आवश्यकता होने पर उनसे काम ले सकना है।

दूसरा प्रकार यह होगा कि प्रत्येक ग्रह और लग्न के सुनहले नियमों का स्मरण कर व्यक्ति विशेष में उन्हें ढूंढ़ लेना और उनके सहचारी अन्य नियमों की खोज व्यक्ति के शरीर में निकालना। जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हो वहाँ व्यक्ति की कुंडली में सहचारी नियमों को ढूंढ कर देख लेना और वैसे ही दूसरे उदाहरणों में उनका प्रयोग करना।

तीसरा प्रकार और सबसे अच्छा प्रकार पर्याप्त अभ्यास हो जाने के पश्चात् यह होगा कि प्रत्येक कोटि के स्वरूप का एक मानसिक चित्र कर लेना। इसमें पर्याप्त मनन और चिंतन और व्यावहारिक अनुभव की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु सच-मुच वह तीसरा प्रकार सबसे सुन्दर प्रकार है।

अब कुछ उदाहरणों से उपरोक्त व्यावहारिक प्रकारों को व्यक्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है। चित्रांक २१ को देखें। सबसे पहले आपका ध्यान उनकी भव्य आकृति की ओर जाता है और उनका मुखौटा अन्तर्मुखी मिलता है। कहने का तात्पर्य कि यदि ललाट से ठुड्ढी तक एक रेखा खींची जाय तो नाक के कुछ अंशों के अतिरिक्त सभी मुखौटे के अवयव इस रेखा के भीतर पड़ेंगे जिसको हम खोखले मुखौटों में गिन सकते हैं। यद्यपि अनेक कारणों से इस मुखौटे को पूरा खोखला नहीं कह सकते। सारा मुखमंडल प्रशस्त और भरा हुआ है। जिसका कारण लग्नेश सूर्य पर वृहस्पति की पूरी दृष्टि और शुक्र की युति है। आप देखेंगे कि लग्नेश सूर्य चौथे और वृहस्पति दसवें पड़ा है। अब इनके कंधे से कमर तक के बीच के भाग में मेद की प्रधानता क्यों है इसका कारण स्पष्ट हो जाता है। चौथा और दसवाँ पर कंधे से कमर के बीच के शरीर के भाग के द्योतक होते हैं और वहाँ वृहस्पति और शुक्र का प्रभाव स्पष्ट है। आकृति के खोखलेपन की ओर के झुकाव का कारण लग्न में राहु का बैठना है जो मुखौटे को पचकाता है। आकृति स्पष्ट ही सिंह लग्न की है। सिंह लग्न के वर्णन का मिलान कर इसकी पुष्टि कर सकते हैं।

अब इस लगभग स्थूल-काय महोदय की शरीरयष्टि को देखकर सहसा यह अनुमान करने का ध्यान होता है कि कहीं लग्न में वृहस्पति तो नहीं है। इसकी पुष्टि के लिए जब हम आकृति में वृहस्पति के सुनहले नियमों को पाना चाहते हैं तो उसका अभाव है। आकृति ग्रीक काट नहीं है। यद्यपि थोड़े ही और सुधार से यह आकृति उस कट में आ जाती। ललाट ग्रीक ललाट की नाईं आकर्षक नहीं है। अतः लग्न में वृहस्पति की आशा नहीं की जा सकती। दूसरे पेट का आकार-प्रकार लग्नस्थ गुरु का नहीं बल्कि केन्द्र गत गुरु का स्पष्ट है जो वस्तुतः ठीक है। इसमें सिंहस्थ राहु और केन्द्रगत गुरु का अनुमान निश्चय रूप से किया जा सकता है।

आश्चर्य की बात तो यह है कि यद्यपि चन्द्रमा के साथ केतु और शनि कुम्भ में पड़े हैं तो भी इनमें से किसी ग्रह का कोई लक्षण शरीर में बाहर से दृष्ट नहीं है जो इस बात की पुष्टि करता है कि लक्षणों से तो ग्रह तक पहुँच सकते है किंतु ग्रह से लक्षण की ओर नहीं जा सकते।

पुनः चित्रांक ३१ की ओर भी ध्यान दिया गया। इन महोदय के शरीर पर दृष्टि पड़ते ही इनके बालों के रख रखाव की ओर अनायास ध्यान जाता है और मूँछों की सुन्दर रखाव पर तो दृष्टि टिक ही जाती है। लक्षणों में बतलाया जा चुका है कि इस प्रकार मूँछ और दाढ़ी का रखाव सप्तमस्थ शनि का लक्षण है और यहाँ वह स्पष्ट वर्तमान है। मीन की आँखें शनि की पूरी दृष्टि लग्न पर है

चेहरे का काट सिंह का है जिस पर वृहस्पति के प्रभाव से भरा-पूरा और मेद सम्पन्न हो गया है। आप देखेंगे कि चंद्र लग्न सिंह है और उसके बारहवें बलवान् गुरु कर्कस्थ है। आँखों की बनावट और भौंह का छरहरापन वृहस्पति के प्रभाव का द्योतक है।

पुनः चित्रांक ८८ की ओर ध्यान दिया जाय। यह चित्र श्री सद्गुरु जगजीत सिंह नामधारी कॉलिज, गढ़वा पलामू (विहार) के प्राचार्य श्री भगवान तिवारी जी का है और उन्हीं के सौजन्य से प्राप्त है। आकृति देखते ही सबसे पहले ध्यान इनके शरीर यष्टि की ऊँचाई और लगभग छरहरे वदन की ओर जाता है। ऐसी आकृति को राहु, केतु, सूर्य और शनि तथा धनु और वृश्चिक और बहुत हुआ तो तुला लग्नों में पाने की आशा कर सकते हैं। आँखें शनि की नहीं हैं (तिरछा बैठाव)। अतः लग्नस्थ शनि नहीं होगा। राहु का पचकाव के अभाव में लग्न राहु की भी आशा नहीं की जा सकती। केतु की भोंड़ी आकृति बिलकुल नहीं है। ऐसी सुन्दर आकृति केतु के प्रभाव में नहीं पायी जाती। अतः केतु के भी वहाँ पाने की आशा छोड़ देनी चाहिए। सूर्य की एक सम्भावना हो सकती थी किन्तु कंधे से कमर के बीच वाला शरीर का अंग चौपहल और भरा हुआ नहीं है। अत· लग्न में सूर्य की भी आशा नहीं की जा सकती और न सूर्य प्रभाव में बनने वाला यह ढाँचा ही है। अब इधर से ध्यान हटाकर राशियों में इस ऊँचाई को पाने की चेष्टा करें तो धनु की ओर ध्यान सहसा जाता है। धनु में जो एक प्रकार की ग्रीक आकृति का कट होता है उसमें थोड़ी कसर-सी हो गयी है और इस कसर की ओर ध्यान देते ही इनकी आँखों पर ध्यान जाता और उसे केतु से प्रभावित पाते हैं। केतु लग्न या उसके दूसरे बारहवें या चन्द्र लग्न के दूसरे बारहवें रहकर ऐसी ऊँचाई और आँखों पर अपना ऐसा प्रभाव दे सकता है। वदन के छरहरेपन को देखते हुए आँखों के इस वर्तुलाकरण के कारण केतु के प्रभाव में आने वाली आकृति लगभग जँच जाती है। शरीर में जोड़ों (Joints) की बनावट ढीली और शरीर-यष्टि मेदरहित है। अतः केतु इनके लग्न या चन्द्र लग्न के आस-पास अवश्य है ऐसा अनुमान किया जा सकता है। कुछ देर उनके बातें करने के बाद कभी-कभी थोड़ी अटक कर बातें करने का लक्षण मिलता है जो केतु के द्वितीयस्थ होने का निश्चायक है। अब ऊँचाई या तो केतु की है या यदि वह द्वितीयस्थ है तो राशियों से ऊँचाई देने वाली कोई राशि लग्न होनी चाहिए ऐसी ऊँचाई देने वाली तुला या वृश्चिक कदाचित ही होती है अतः लगभग निश्चित है कि धनु राशि या लग्नकृत यह ऊँचाई है। प्राचार्य महोदय को जो जानते हैं उन्हें पता है कि ये आखेट प्रेमी हैं अतः राशियों में धनु राशि ही लग्न या चन्द्र लग्न हो सकती है निश्चय हो जाता है और कहा जा सकता है कि इनका लग्न या चन्द्र लग्न धनु होगा और केतु

उसके आस-पास द्वितीयस्थ होगा। आप देखेंगे कि यहाँ चन्द्र राशि धनु और उसके दूसरे स्थान में केतु वर्तमान है। उसी प्रकार चित्रांक ३४ की ओर ध्यान दिया जाय। यह आकृति अनेक प्रभावों की मिश्रित आकृति है। इनकी आँखों, ऊँचाई, और मुखौटा जो सूच्याकार स्वरूप आगे की ओर निकलने की ओर झुकाव रखता है। दंत पंक्ति और दाँतों की बनावट और वेशभूषा में मेष, केतु, शनि मकर के प्रभाव प्रतीत होते हैं। सबसे पहली बात जो ध्यान में आती है वह यह है कि केतु और मेष और मंगल का प्रभाव आकृति पर निश्चित है। दंत पंक्ति मुखौटे में शनि का प्रभाव भी स्पष्ट है ऐसी अवस्था में अनुमान स्पष्ट है कि लग्न या चन्द्र लग्न के आस-पास केतु और मंगल तथा शनि के प्रभाव निश्चित हैं। लग्न राशि या तो मेष होगी या धनु या चेहरे की प्रशस्तता के कारण मकर। अब आप इनकी कुंडली में देखें तो ये सब बातें अचूक-सी हैं। लग्न मेष है जो आँखों को वर्तुलत्व देता और लग्नेश मंगल केतु के साथ में होने से आँखों के विस्तार की पहचान कराता है। शनि लग्न से बारहवें है और मंगल केतु चन्द्रमा से बारहवें है। बतलाया जा चुका है कि ये दोनों स्थितियाँ लग्न स्थितिवत् ही प्रभाव उत्पन्न करती हैं यह भी निर्दिष्ट है कि लग्नेश जहाँ किसी राशि में जा बैठता है कभी-कभी उस राशि का ही प्रभाव चेहरे पर उत्पन्न कर देता है। यहाँ लग्नेश मंगल का केतु के साथ धनु में बैठना इनकी आकृति में धनु की ऊँचाई स्पष्ट है। स्मरण रहे कि इनकी वेशभूषा केतु से विल्कुल ही प्रभावित नहीं बल्कि शनि से, जो लग्न से बारहवें बैठा है।

पुनः चित्रांक ३५ पर ध्यान दिया जाय। इनकी आकृति ठीक-ठीक सिंह की आकृति है और सिंह लग्न के लक्षणों के वर्णन में इस आकृति के सभी लक्षण आ गये हैं। त्रिकोणात्मक मुखौटा ठुड्ढी का पतलापन, बालों का रख-रखाव सभी सिंह कोटि के हैं। चेहरा पचकीला अर्थात् खोखला-सा है जो द्वितीयस्थ राहु का चिह्न है। कुंडली में ये सभी लक्षण मौजूद हैं।

देखें चित्रांक ३८। यह भी एक मिश्रित प्रभाव की आकृति है। कोई एक विशिष्ट लक्षण नहीं स्पष्ट होने पर भी मकर लग्न की छाप मुखौटे में है। ललाट कोनों के ऊपर कर्णपटियों में दोनों ओर थोड़ा दब-सा गया है और गाल पचकीले हैं। यह लक्षण केतु की स्थिति का संकेत देता है जिसे लग्न या चन्द्र लग्न के सान्निध्य में होना चाहिए। कुण्डली में मकर लग्न और चन्द्रमा से बारहवें केतु, मौजूद है। यहाँ स्मरणीय है कि तुला राशि का कोई चिह्न मुखाकृति में नहीं है और न बारहवें गुरु का शरीर के किसी भाग में।

पुनः चित्रांक ७१ का भी अवलोकन किया जाय। चेहरा खोखला राहु की द्वितीयस्थ स्थिति का पता देता है। शरीरयष्टि की ऊँचाई भी राहु के कट ही है जो लग्न से द्वितीयस्थ रहते हुए भी राहु दे सकता है। आँखों में राहु के कोई लक्षण नहीं किन्तु केतु के कुछ लक्षण हैं पर निघूने केतु के नहीं क्योंकि आँखें बड़ी और विस्तृत तो हैं पर वर्तुलाकार नहीं। देखने का ढंग केतु का जरूर है। दूसरे घर के स्वामी सूर्य (आँख) के केतु साथ में बैठने से कदाचित् उसका पुट आ गया है। किन्तु वस्तुतः आँखें उच्चस्थ चन्द्रमा पर वृहस्पति और मंगल की दृष्टि के कारण निर्मित-सी हैं। स्मरण रहे कि चन्द्रमा लग्नेश भी है किन्तु इन सब के और भी विशिष्ट कारण (जैसे उच्चस्थ सूर्य) कुण्डली में है जो आकृति से अचूक पहचाने नहीं जा सकते। किन्तु द्वितीय राहु के लक्षण स्पष्ट हैं और साक्षात्कार में बतला दिये गये थे।

पुनः चित्रांक ७६ को भी देखें तो वृष और मिथुन की कोई छाप आकृतिगत स्पष्ट नहीं हो किन्तु आँखों की बनावट में केतु का पुट स्पष्ट है। अतः लग्न या चन्द्रमा के साथ केतु का होना अचूक है। चेहरा नोकदार और आगे की ओर निकलने का झुकाव रखता है अर्थात् चेहरा पचकीला नहीं है। शरीरयष्टि दुबली-पतली और वेशभूषा पसन्द प्रकृति है। यह लक्षण लग्न या चन्द्र लग्न से बारहवें या लग्नस्थ शनि के होने का (मुखौटे की सूच्याकार आकृति) है। कहा जा सकता है कि कुण्डली में शनि ऐसी ही स्थिति में है। स्पष्ट है कि शनि चन्द्र लग्न से बारहवें है और केतु चन्द्रमा के साथ है।

पुनः चित्रांक ८९ को भी ध्यान से देखा और समझा जाय।

वर्तुलाकार आँखें, गालों का पिचकना; वेशभूषा की सादगी। मिथुन लग्न होने पर भी उसके लक्षण मुखाकृति पर न होकर केतु के सभी लक्षण उग आये हैं विशेषकर उनकी वृद्धावस्था के कारण।

ये ज्योतिष के अंग्रेजी ग्रन्थ Encyclopaedia Horoscopica के लेखक हैं जो 20 भागों में विस्तृत है, शुक्र-चन्द्र-युति, मंगल ने० युति और एकादश हर्षल के प्रभाव से ज्योतिष में निष्णात हुए।

अन्त में चित्रांक १३. ७८. ७९. और ८० की ओर ध्यान देना आवश्यक है। इस अध्ययन की ओर प्रवृत्त होने वाले प्रत्येक सज्जन को स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य की प्रौढ़ता जैसे-जैसे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उसकी आकृति में महान परिवर्तन भी होता जाता है और लक्षण विशेषों का सम्बन्ध अवस्था विशेषों से भी है। इसलिए अध्ययनेच्छु महोदयों को आकृति के लक्षणों को पहचानते समय व्यक्ति की अवस्था पर भी ध्यान देना चाहिए। कुछ लक्षण ऐसे हैं जो युवावस्था के पहले तो आकृति में स्पष्ट मिलते हैं किन्तु बाद में तिरोहित हो जाते हैं अर्थात् अन्य ग्रहों के

लक्षणों के साथ-साथ मिश्रित होकर पहचाने नहीं जाते। कुछ लक्षण ऐसे होते हैं जो बाल्यावस्था और युवावस्था में स्पष्ट पैदा ही नहीं होते और आगे चलकर वे ही प्रधान हो जाते हैं। इसलिए इस ओर सदा ध्यान रखकर ही अपनी प्रगति में गति लानी चाहिए। यहाँ चित्रांक १३, ७८, ७९, और ८० की ओर ध्यान देना उचित होगा। चित्रांक १३ के व्यक्ति की शरीर की बनावट लग्नगत मंगल से विशेष प्रभावित है। इनके मुखमंडल पर बर्रे के दाग इतने अधिक उगे हुए थे कि चेचक निकलने का भ्रम हो होता था। किन्तु ये कभी चेचक से रुग्ण हुए ही नहीं। इस चित्र को देखकर मंगल की स्थिति तो लग्न में अनुमान की जा सकती है जिसके लक्षणों का विस्तृत विवरण दिया जा चुका है। किन्तु अब चित्रांक ७८ को देखा जाय जो उन्हीं व्यक्ति का चित्र है। इसमें मंगल के कोई विशिष्ट चिह्न निश्चित रूप से वर्तमान नहीं है। क्योंकि अवस्था वृद्धि के साथ उसका लोप हो गया है। इसका भी निर्देश प्रसंगवश यथास्थान पहले ही कर दिया गया है। अब पुनः चित्रांक ७९ को देखा जाय आकृति में इतना परिवर्तन हो गया है कि तीनों चित्रों को एक ही व्यक्ति का मानना भी कठिन हो गया है। अतः मंगल के लग्न स्थिति का चिह्न तो कौन कहे तुला लग्न की आकृति भी कहने में आदमी संदिग्ध ही रहेगा। किन्तु चित्रांक १३, ७८, ८९ और ८० चारों में अवस्था विभेद रखते हुए भी सिंह राशि स्पष्ट पहचानी जा सकती है। अवस्था बहुत बढ़ जाने पर; षष्ठस्थ वृहस्पति (जो किसी-किसी पंचाङ्ग से पंचमस्थ) के लक्षण शरीर में अधिक व्यक्त हो गये हैं विशेषकर छाती से नीचे के अंगों में।

चित्रांक ८० में और सब लक्षण भी विलीन हो गए हैं किन्तु लग्न से व्यय और चन्द्रमा से धन स्थान में बैठे राहु के लक्षण प्रधान हो गये हैं और राहु की यह स्थिति इस अवस्था में अधिक निश्चय रूप से बतलायी जा सकती है जो पहले कदाचित् ही पिचकालू या खोखले प्रकार की मुखाकृति से किसी प्रकार बतलायी जा सकती थी।

इस प्रकार कथ्य इतना ही है कि प्रस्तुत अध्ययन में अवस्था पर भी ध्यान देना नितांत आवश्यक है।

●
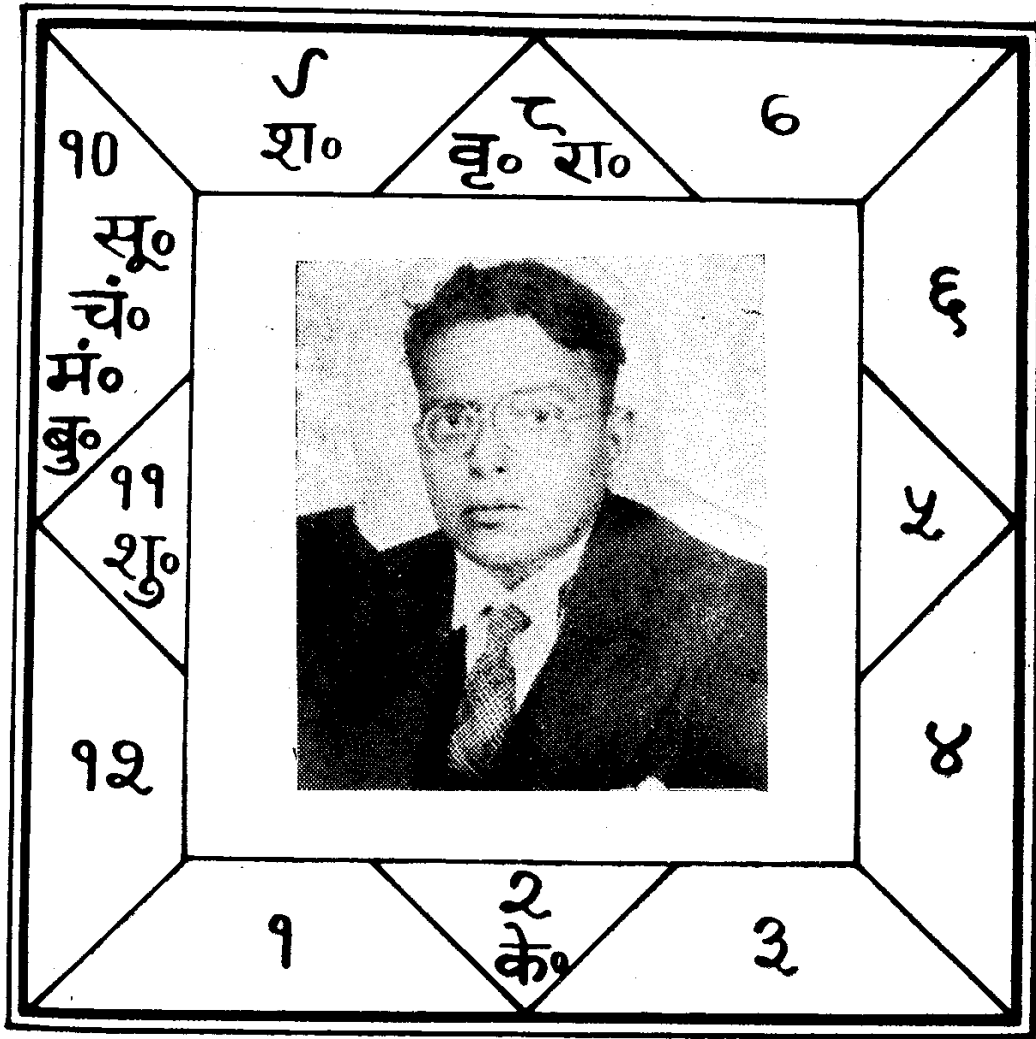
चित्र सं०-१

रायबहादुर भैया रुद्र प्रताप देव, रियासत नगर उँटारी, पालामऊ

सं० १९५६, माघ कृष्ण अमावस्या, श्रवण १ चरण इष्ट ५७।०

चित्र सं०-२

स्व० श्रीमान् डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह,

भू० पू० वित्त मन्त्री, बिहार सरकार
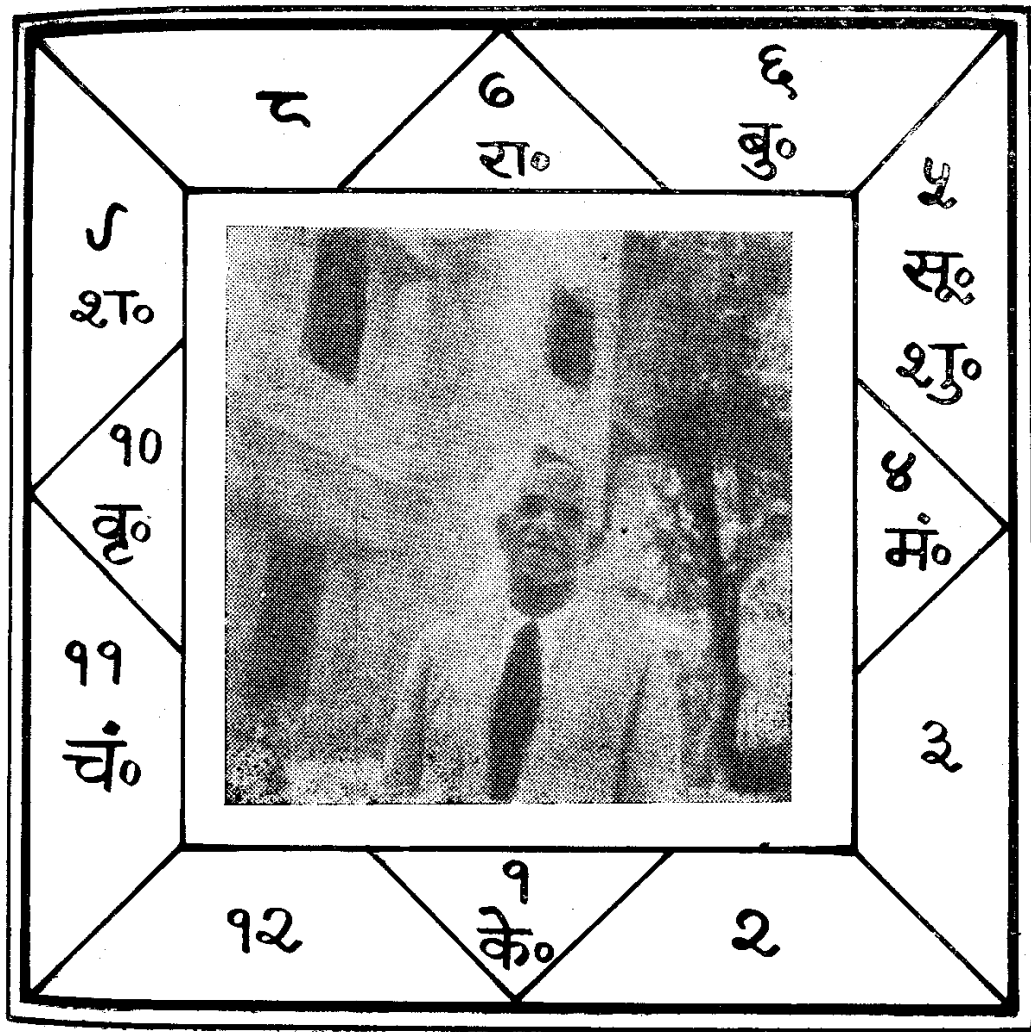
चित्र सं०-३

स्व० श्री जस्टिस अनन्त सिंह

जन्म ता० १६ सितम्बर, १९०२ ई०

इष्ट ६।६
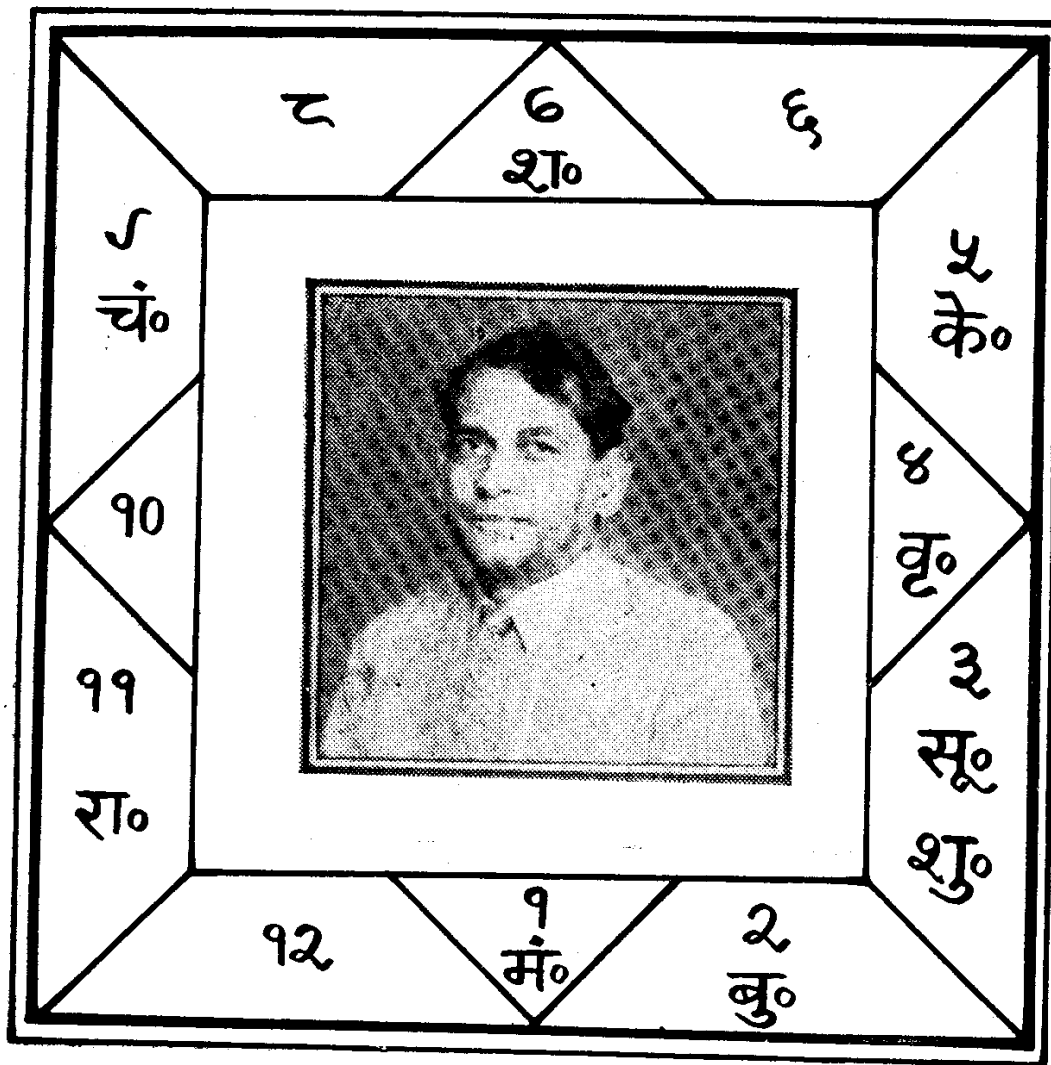
चित्र सं०-४

स्व० डॉ० गोरख नाथ सिंह,
निदेशक, शिक्षा विभाग और सचिव, बिहार सरकार
जन्म ता० २५-६-१८९६ ई०
इष्ट २२।३५
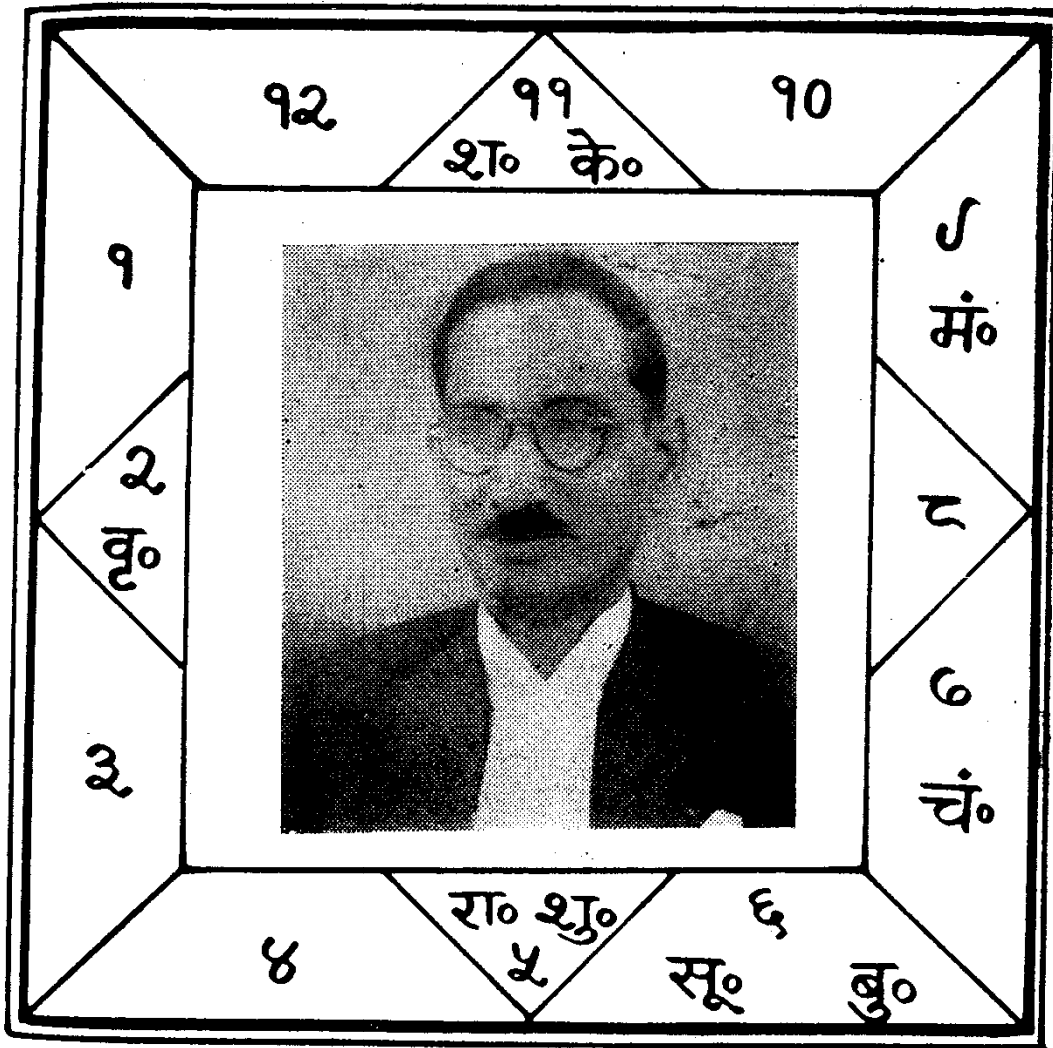
चित्र सं०-५

भू० पू० श्रीयुत् जस्टिस सरयू प्रसाद सिंह, पटना हाईकोर्ट

जन्म ता० १-१०-१९०५ ई० रविवार

इष्ट २६।१५

चित्र सं०-६

स्व० बाबू केदार नाथ सिंह, जमींदार, मड़वनियाँ

जन्म ता० २५-१-१८९८ ई०

इष्ट ५०।५१
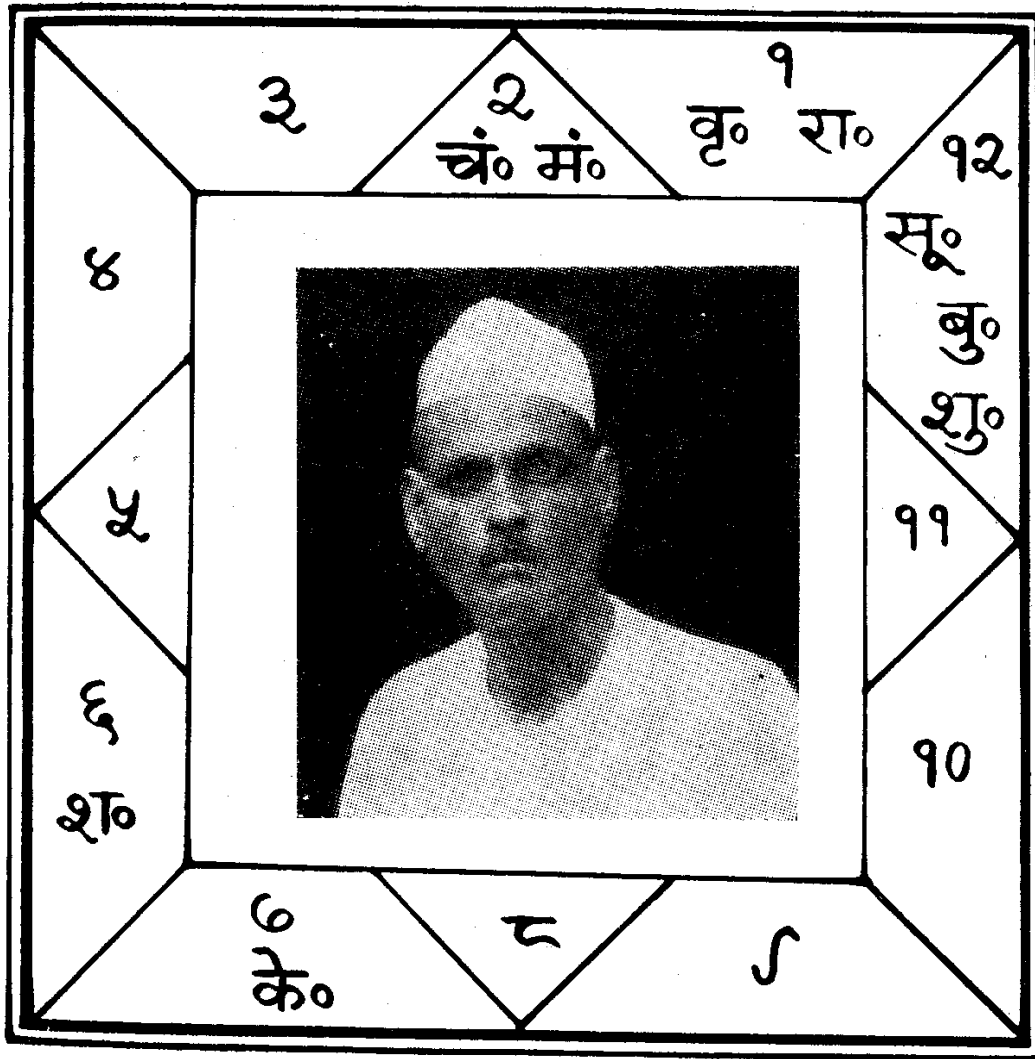
चित्र सं०-७

स्व० श्री बाबू वासुदेव नारायण सिंह, रईस, काँड़ी
जन्म सं० १९५० श० १८१५ चैत गुरु रोहिणी
इष्ट १०।५४
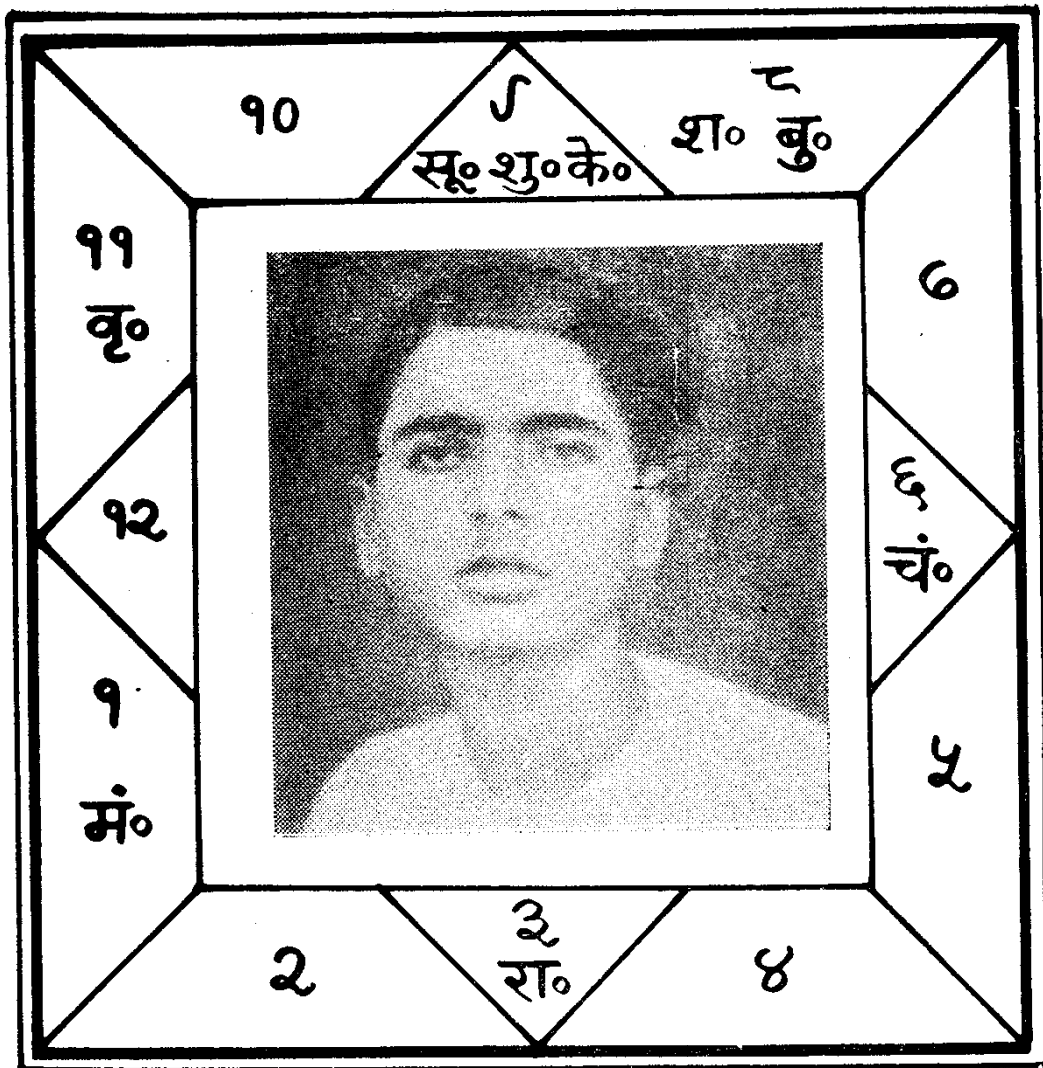
चित्र सं०-८

श्री बाबू कामेश्वर प्र० सिंह, रईस, कांड़ी, पालामऊ
जन्म सं० १९८३ श० १८४८ पौष कृष्ण ७ रविवार
इष्ट ५९।०
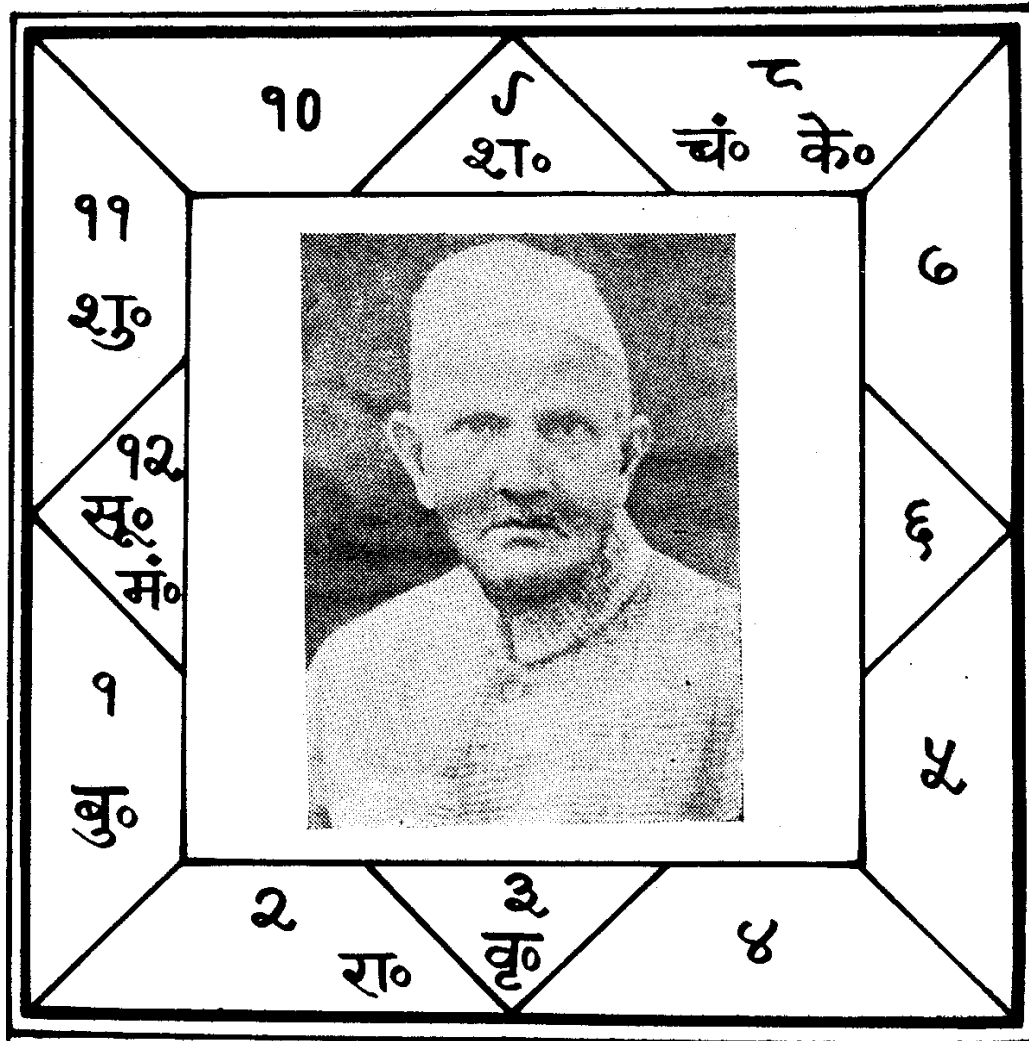
चित्र सं०-९

श्री दिलीप नारायण सिंह
जन्म ता० २९-३-१८७२ ई०
इष्ट ४९।०
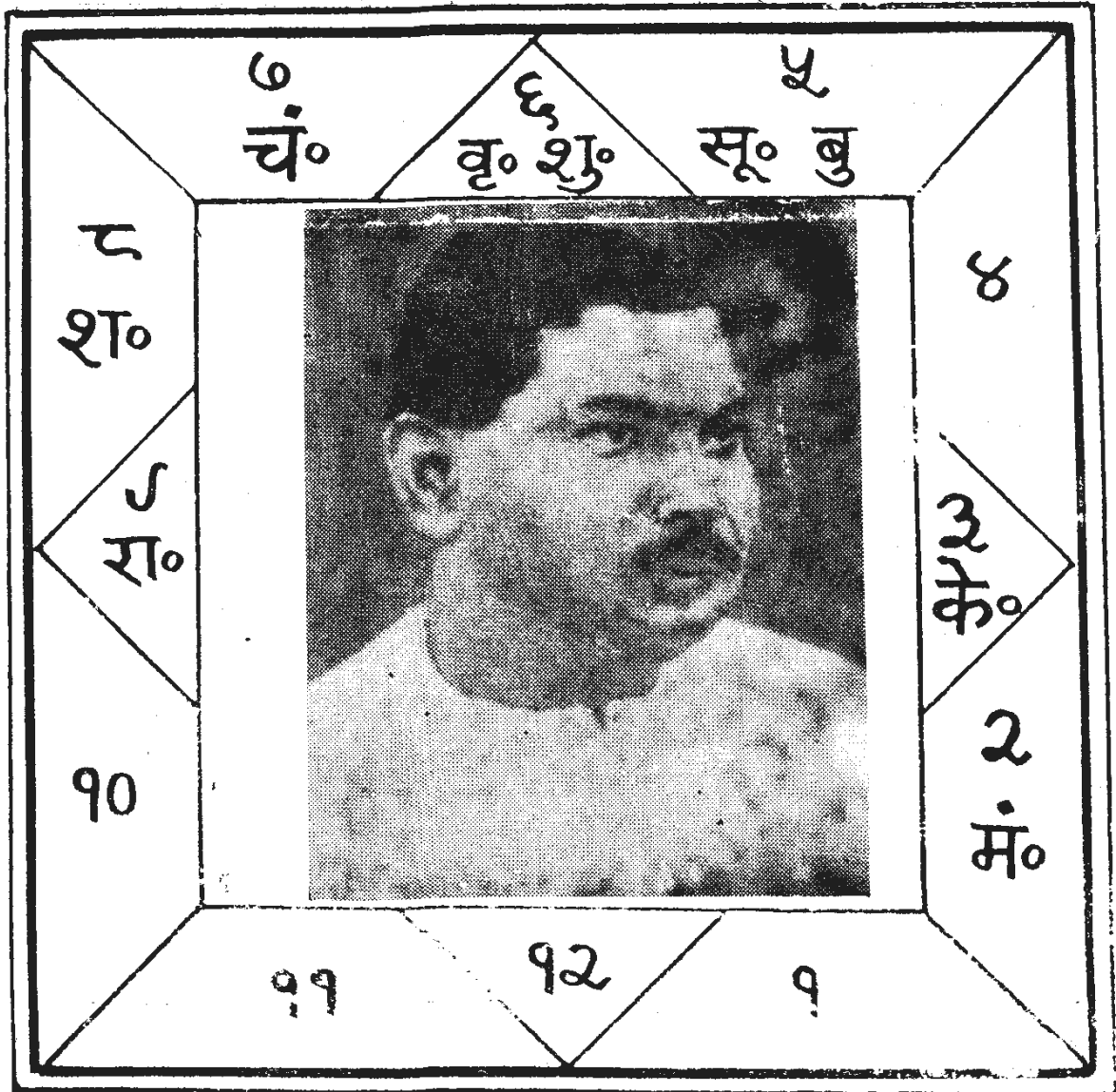
चित्र सं०-१०

श्री बाबू महेन्द्र प्रसाद सिंह

जन्म २२ अगस्त, १८९८ ई०, इष्ट ८।५७
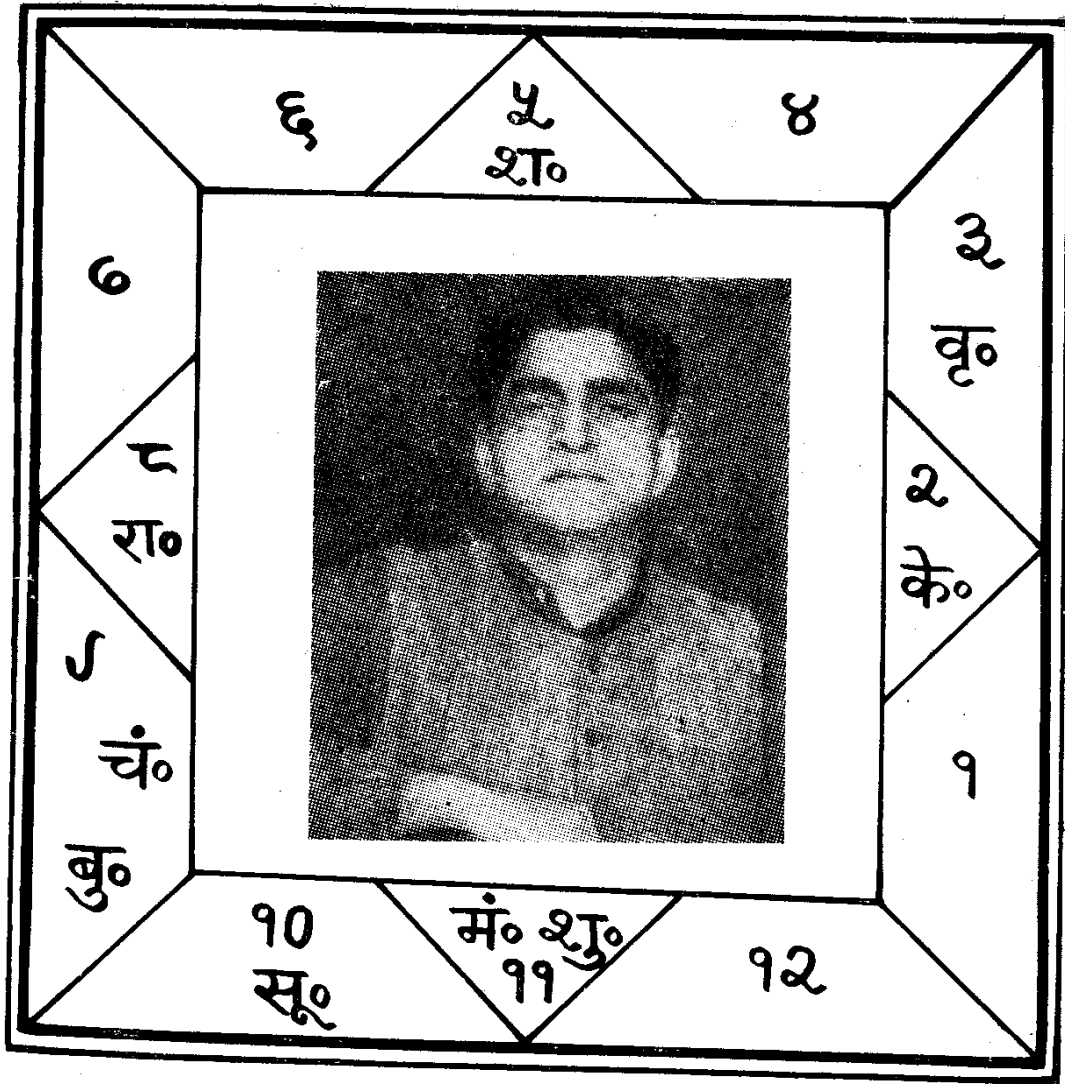
चित्र सं०-११

श्रीयुत् चपलेन्दु भट्टाचार्य, श्रमिक नेता, बिहार

जन्म ता० २८-१-१९१९ ई०

सायं ७।५९
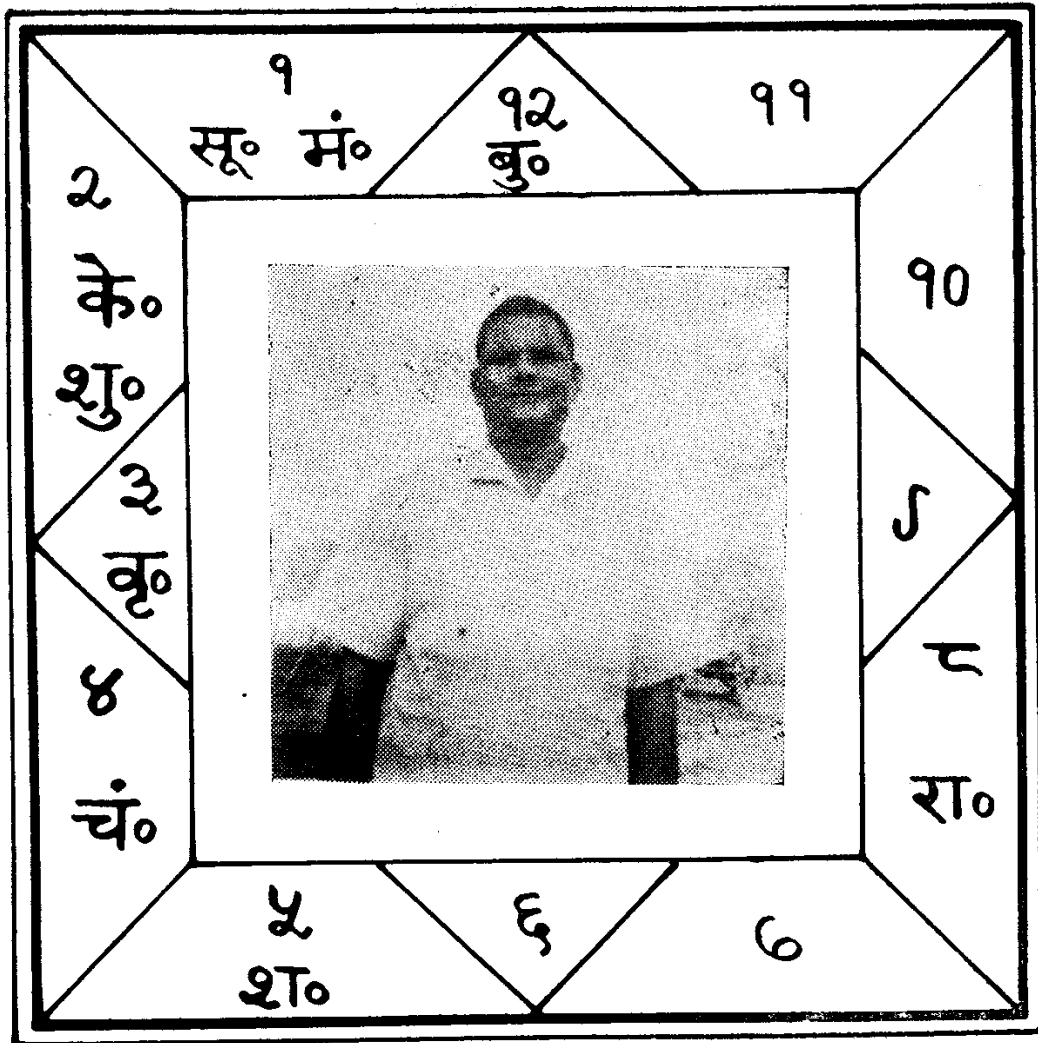
चित्र सं०-१२

श्री बाबू विष्णु प्र० सिंह, भू० पू० उ० निदेशक, सांख्यिकी, बिहार

जन्म सं० १९७६ शं० १८४१ वैशाख शुक्ल ६, सोमवार

इष्ट ५४।१३
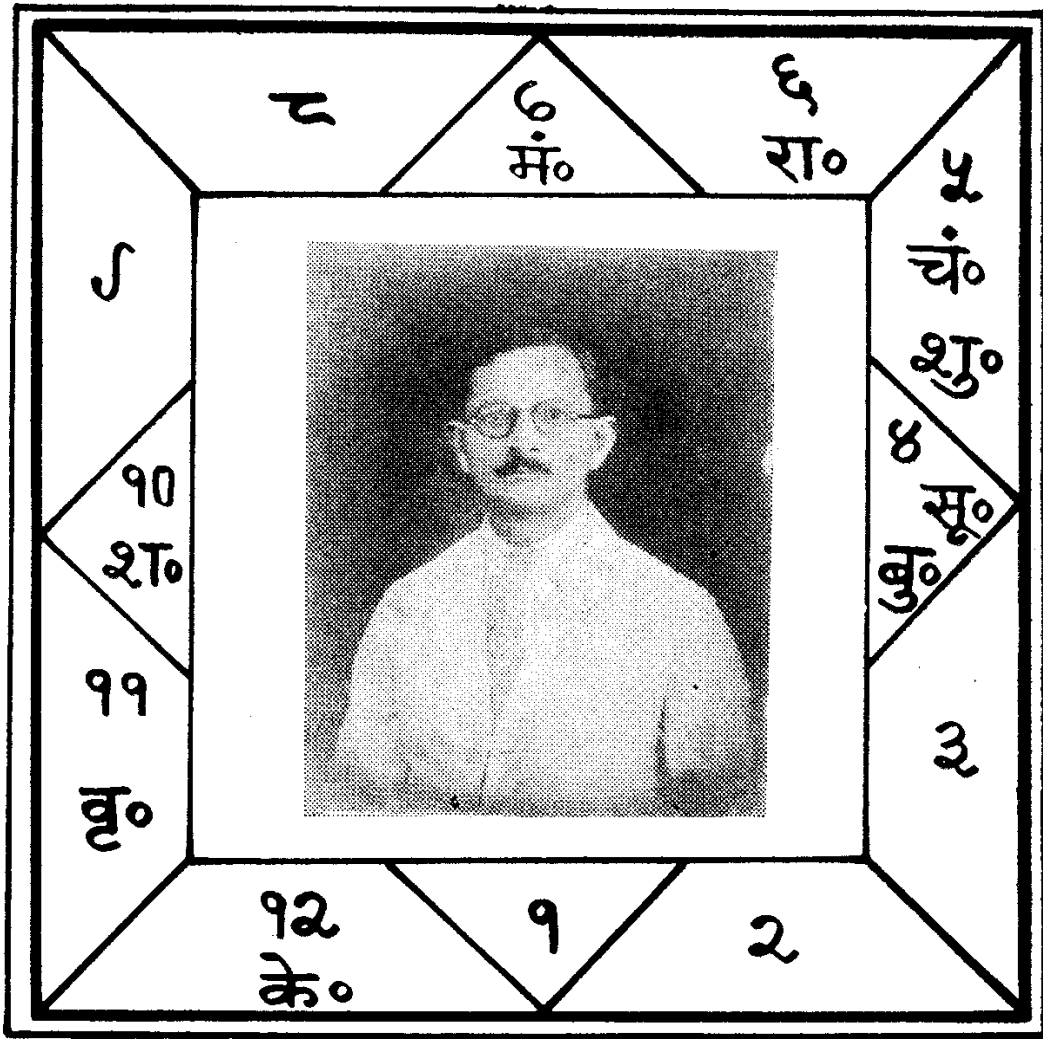
चित्र सं०-१३

लेखक श्री बाबू रामाधार सिंह,
भू० पू० उप श्रमायुक्त, बिहार, मड़वनियाँ, पालामऊ
जन्म २७-७-१९०३ ई०
इष्ट १७।१५

चित्र सं०-१४

प्रो० केदारनाथ प्रसाद

सं० १९२१ आश्विन शुक्ल अष्टमी, चन्द्रवार

इष्ट ४७।०
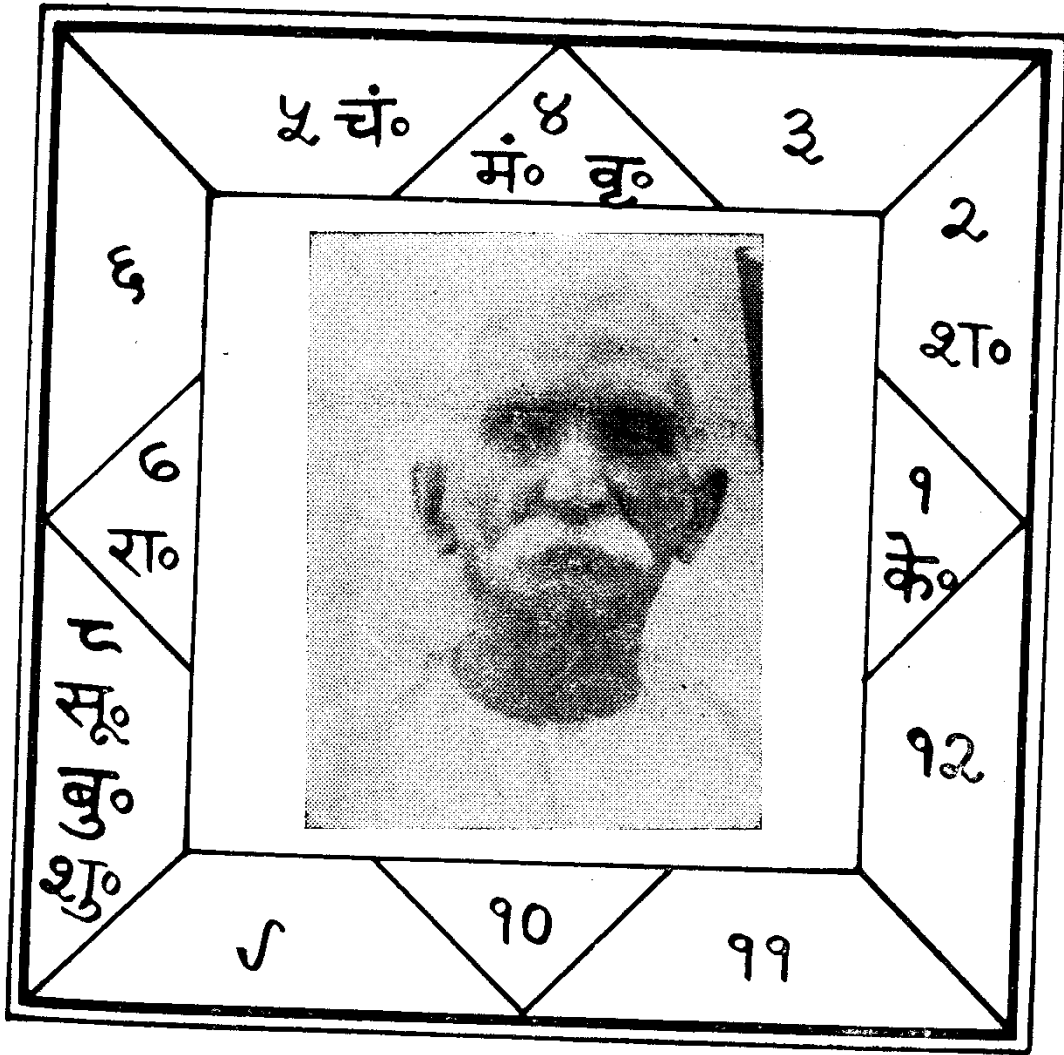
चित्र सं०-१५
ज्योतिर्विद् स्व० पं० सहदेव पाण्डेय,
मैनेजर, रियासत नगर ऊंटारी, पालामऊ
जन्म सं० १९४० श० १८०५ मार्ग कृष्ण ८
इष्ट ३६।०
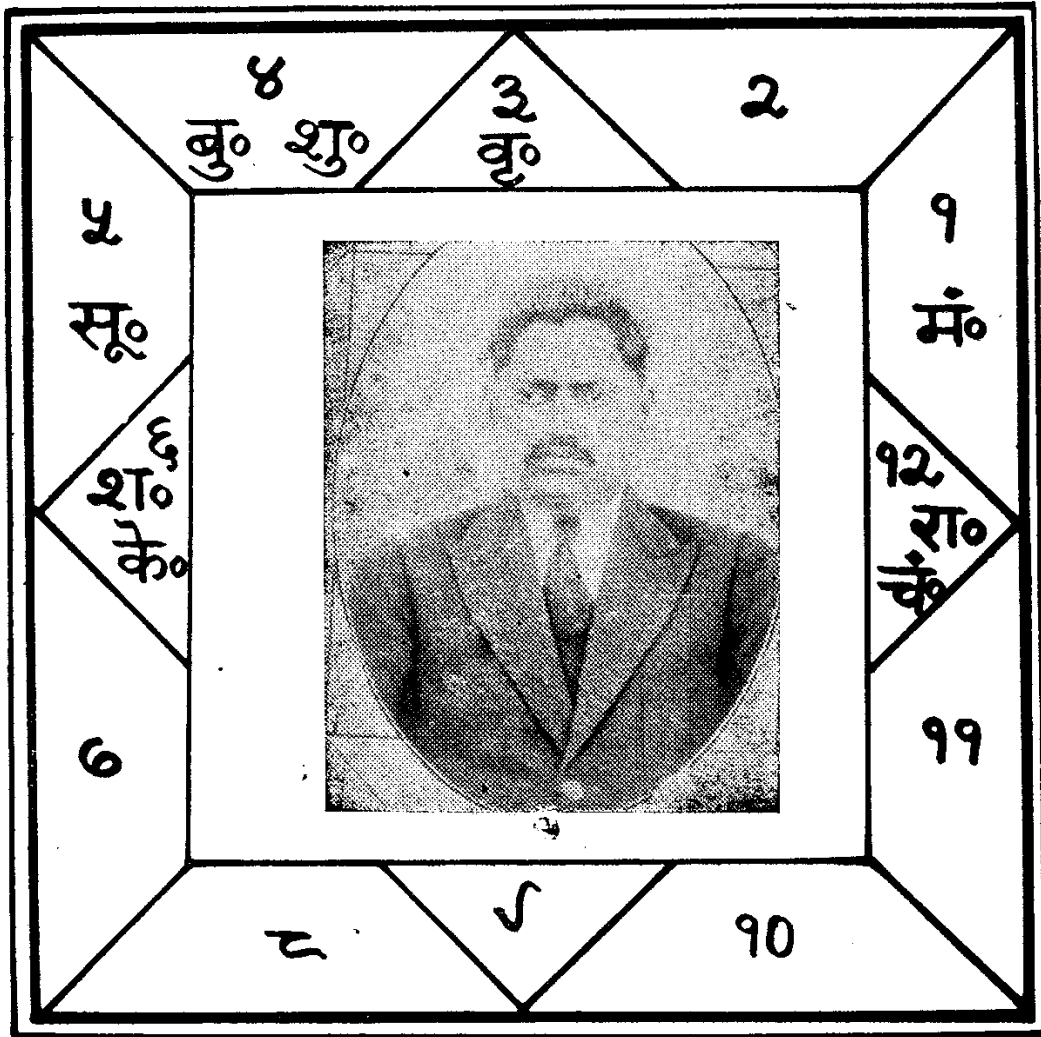
चित्र सं०-१६

स्व० राय बहादुर ठाकुर भोलानाथ सिंह, एडवोकेट

जन्म ता० १८-८-१८९४ ई०

इष्ट ५२।५०
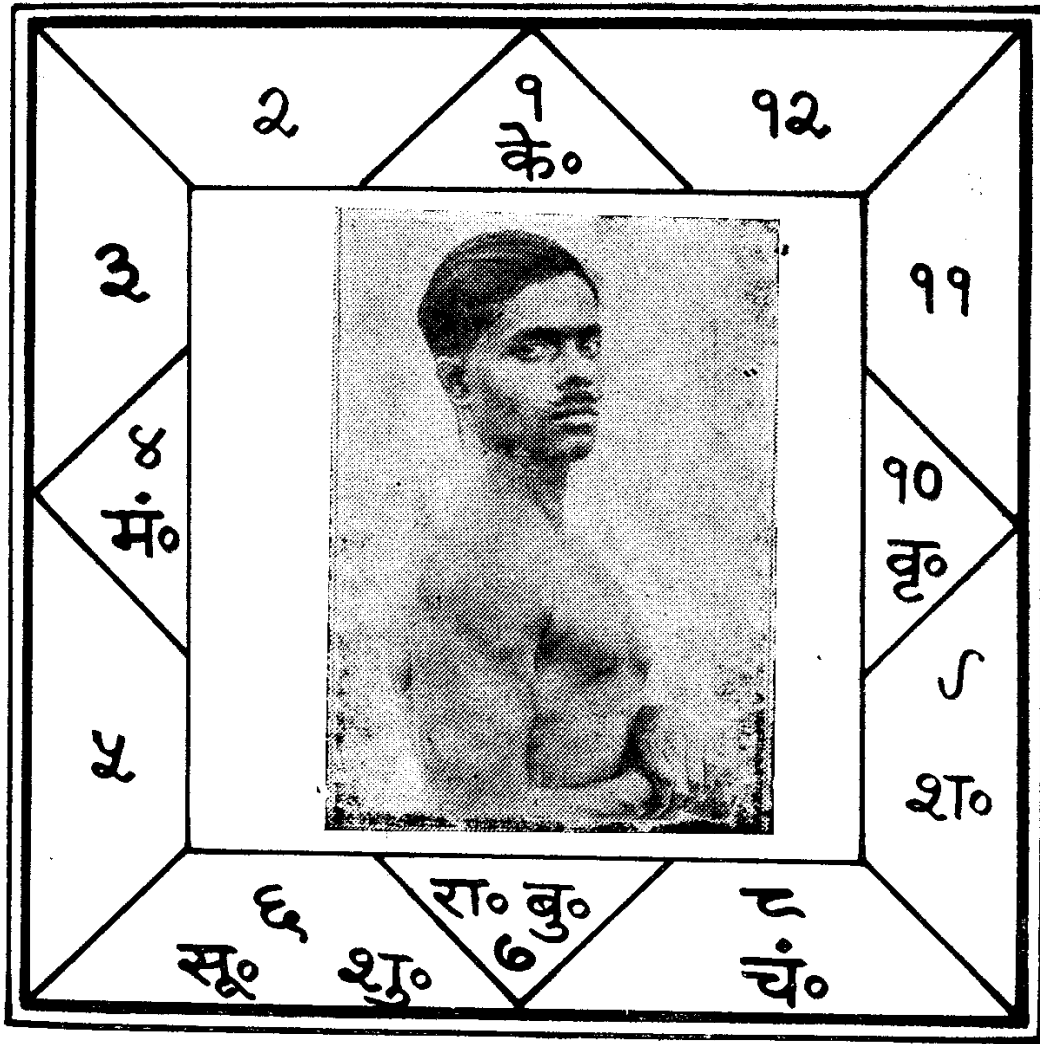
चित्र सं०-१७

श्री वी० पी० सिन्हा

जन्म सं० १९५९ श० १८२४ आश्विन शुक्ल ६ मंगलवार,

इष्ट ३२।६
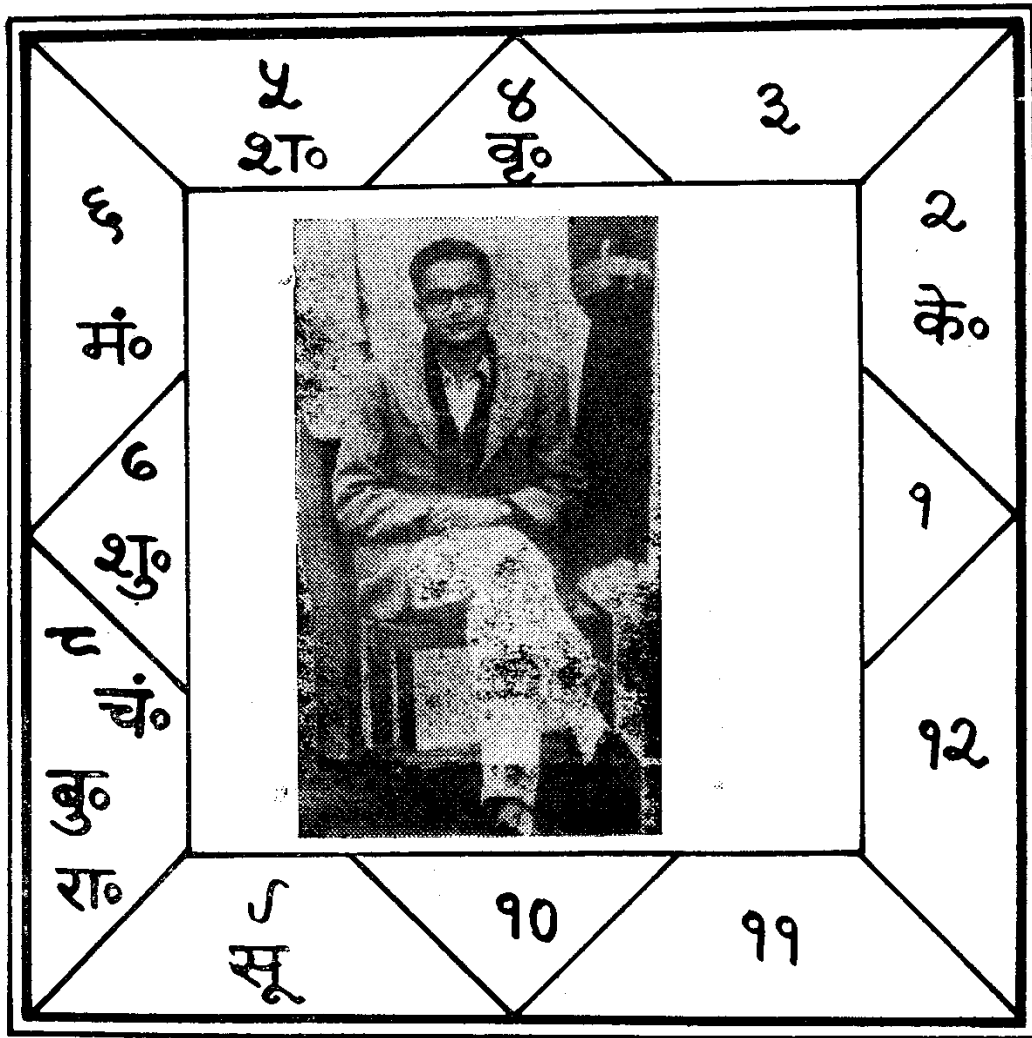
चित्र सं०-१८
श्री चन्द्रभूषण प्रसाद,
असिस्टेंट लेबर कमिश्नर, जमशेदपुर
जन्म सं० १९७६ श० १८४१ पौष कृष्ण १४ रविवार, इष्ट ३१।११
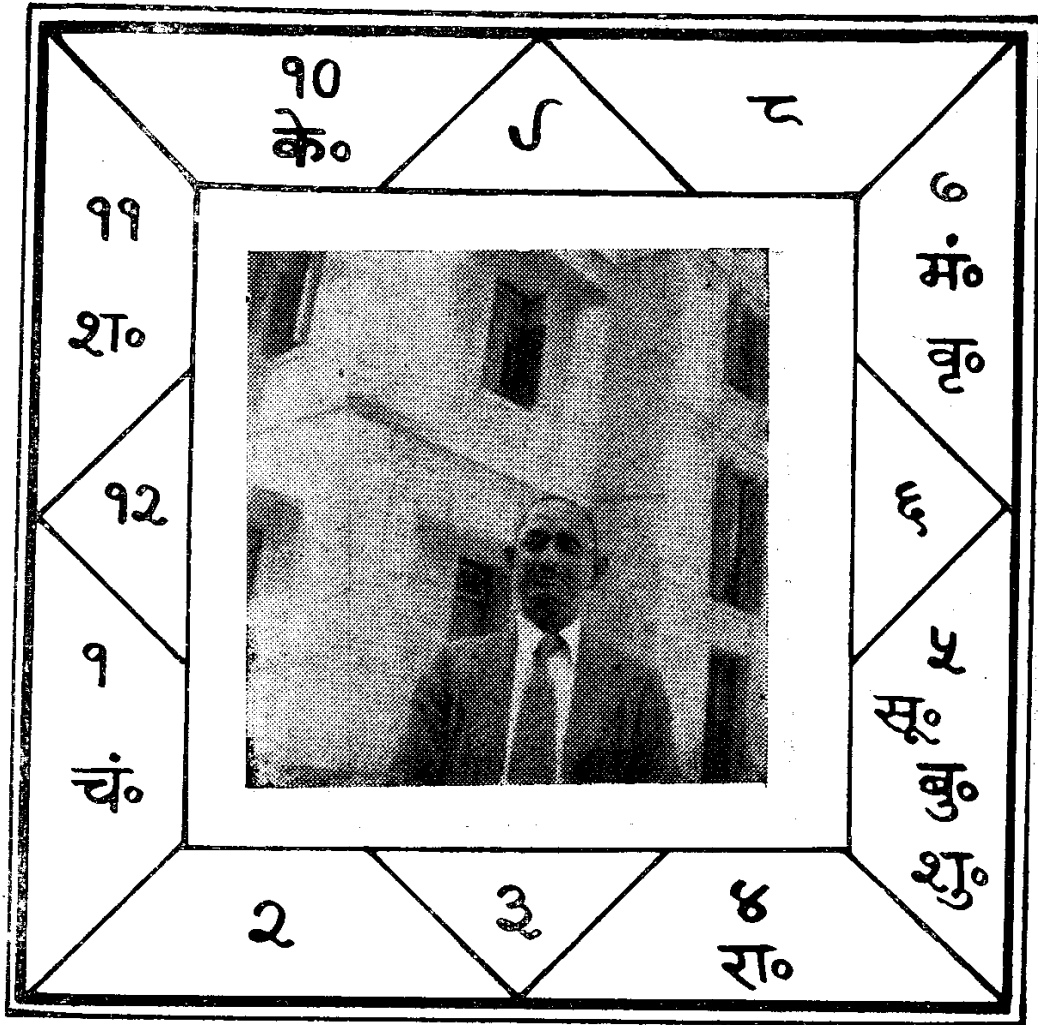
चित्र सं०-१९

भू० पू० जस्टिस कन्हैया सिंह, पटना हाईकोर्ट

जन्म ता० २०-८-१९३५ ई०, २ बजकर ५७ मिनट रात्रि में
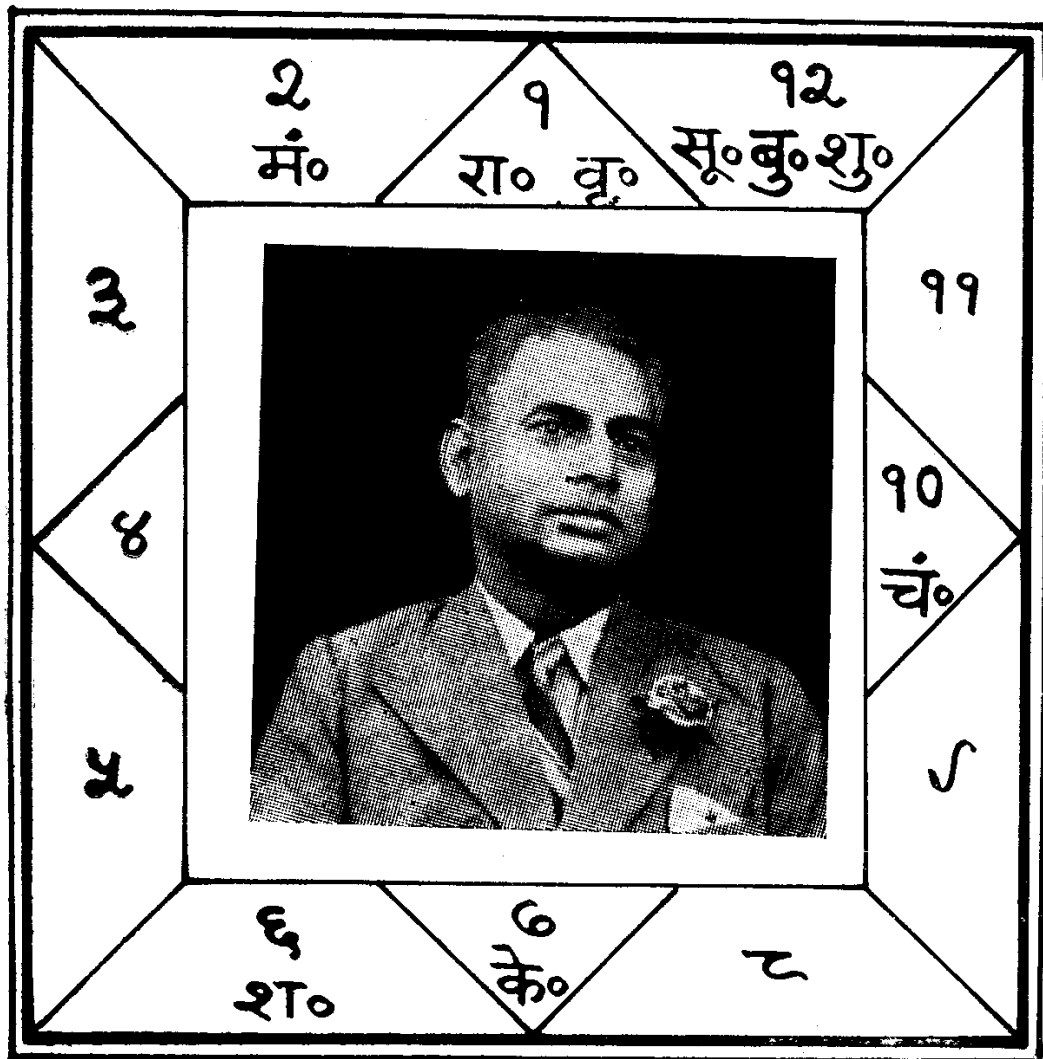
चित्र सं०-२०

स्व० बाबू प्रभु सिंह

जन्म सं० १९५० श० १८१५ वैशाख कृष्ण, इष्ट १।४५
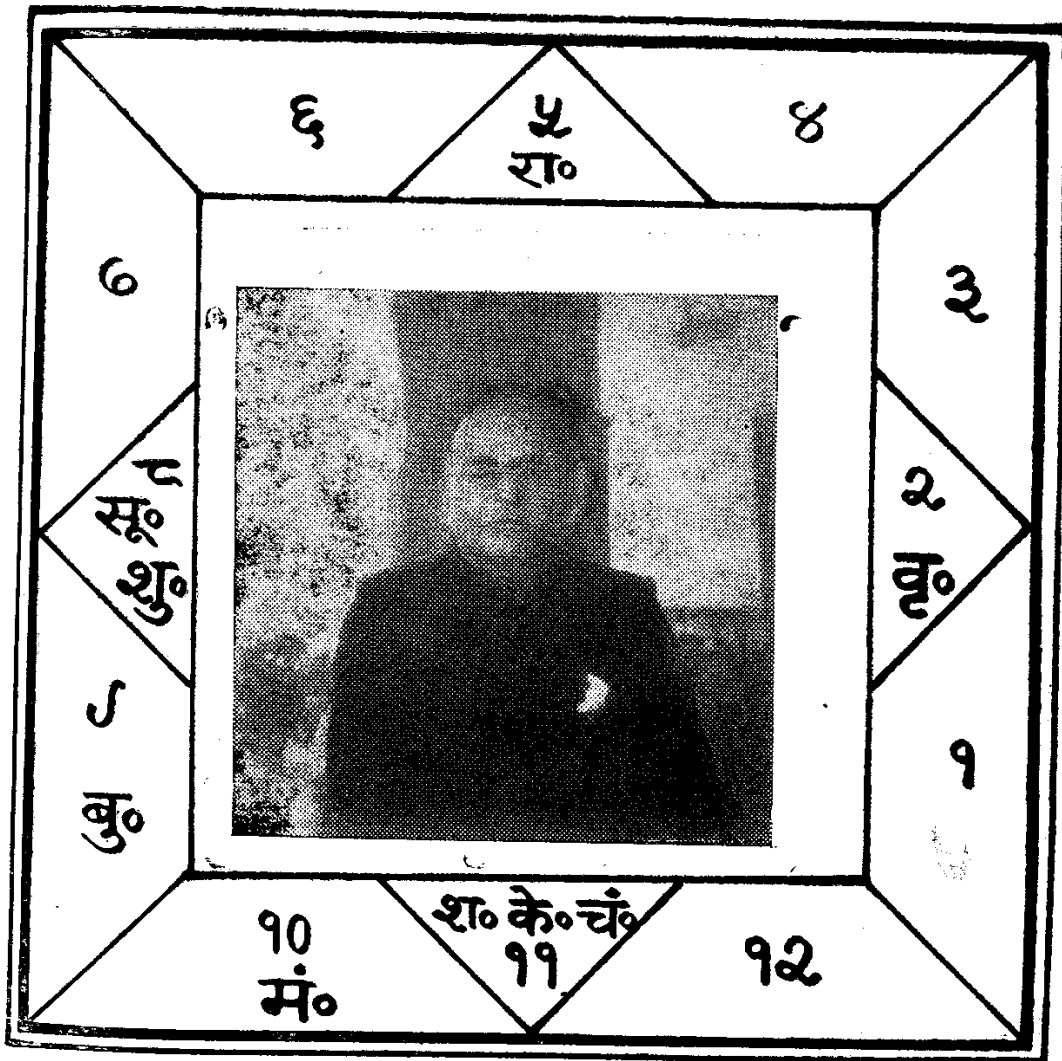
चित्र सं०-२१

श्रीयुत् बाबू कृष्णवल्लभ नारायण सिंह

रईस कुल्हरिया

जन्म सं० १९६२ श० १८२७ अग्रहण शुक्ल ६ शनिवार, इष्ट ४२।३४
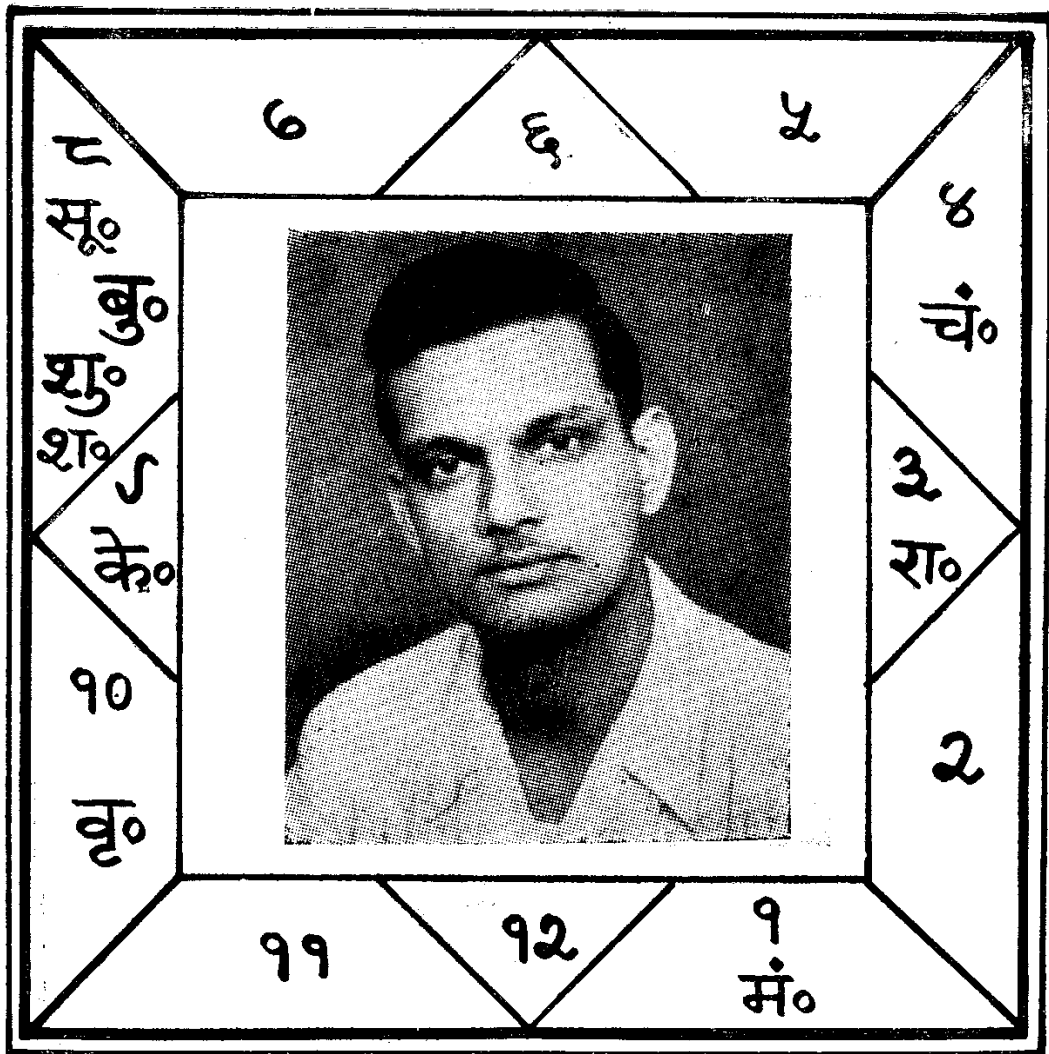
चित्र सं०-२२

श्री बाबू गजेन्द्र सिंह, मड़वनियाँ

जन्म सं० १९८३ श० १८४८ मार्गशीर्ष, इष्ट ५२।१

(जन्म ता० २५ नवम्बर, १९२६)
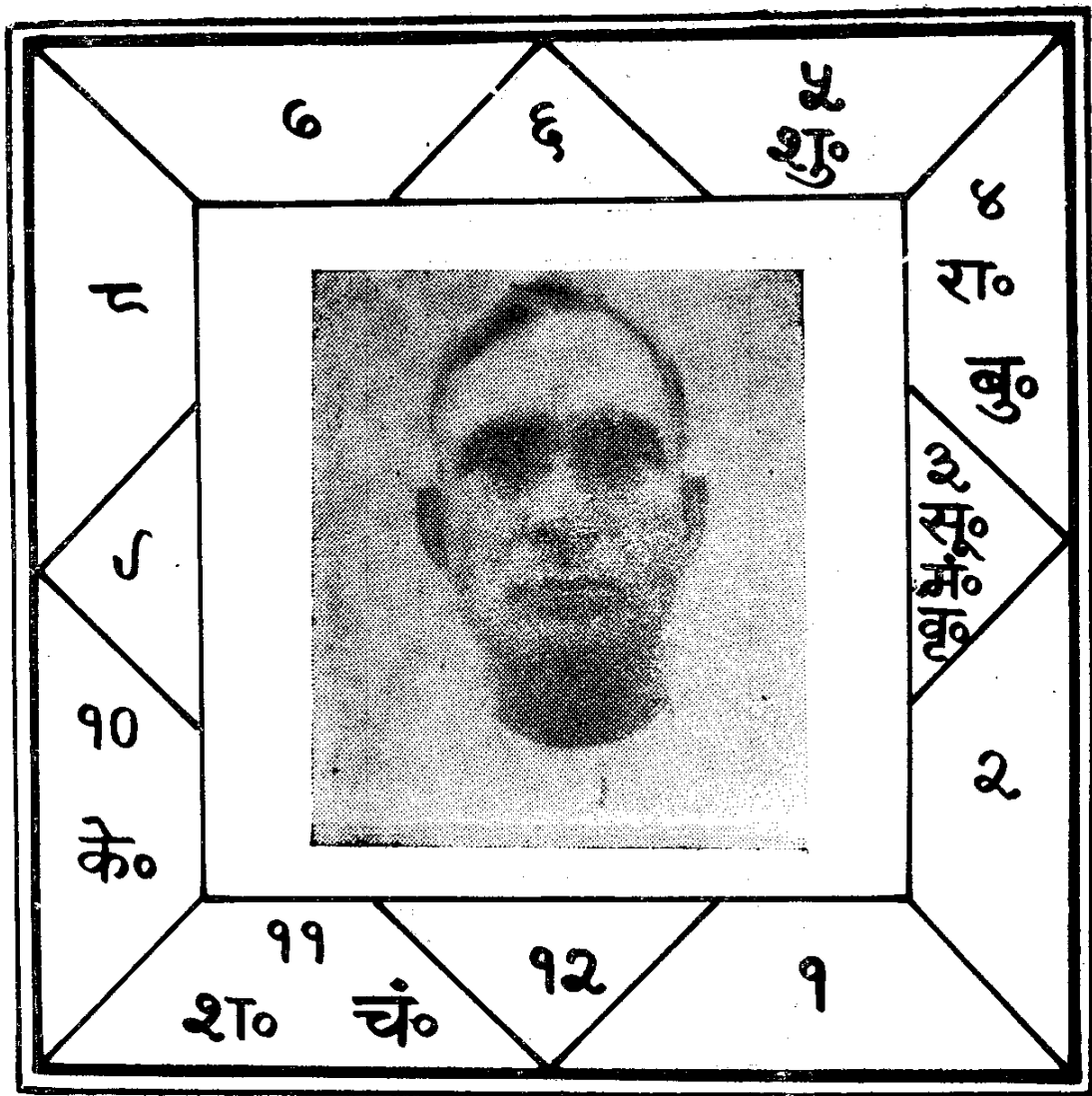
चित्र सं०-२३

श्री बाबू वेंकटेश्वर देव सिंह, एडवोकेट, गढ़वा, पालामऊ

जन्म ता० ११ जुलाई, १९०६ ई०, इष्ट १२।९

चित्र सं०-२४

डॉ० गणपति सिंह वर्मा

चित्र सं०-२५

श्री नवरंग देव पाण्डेय

जन्म ता० २-४-१९१९ बुधवार, इष्ट २२।१
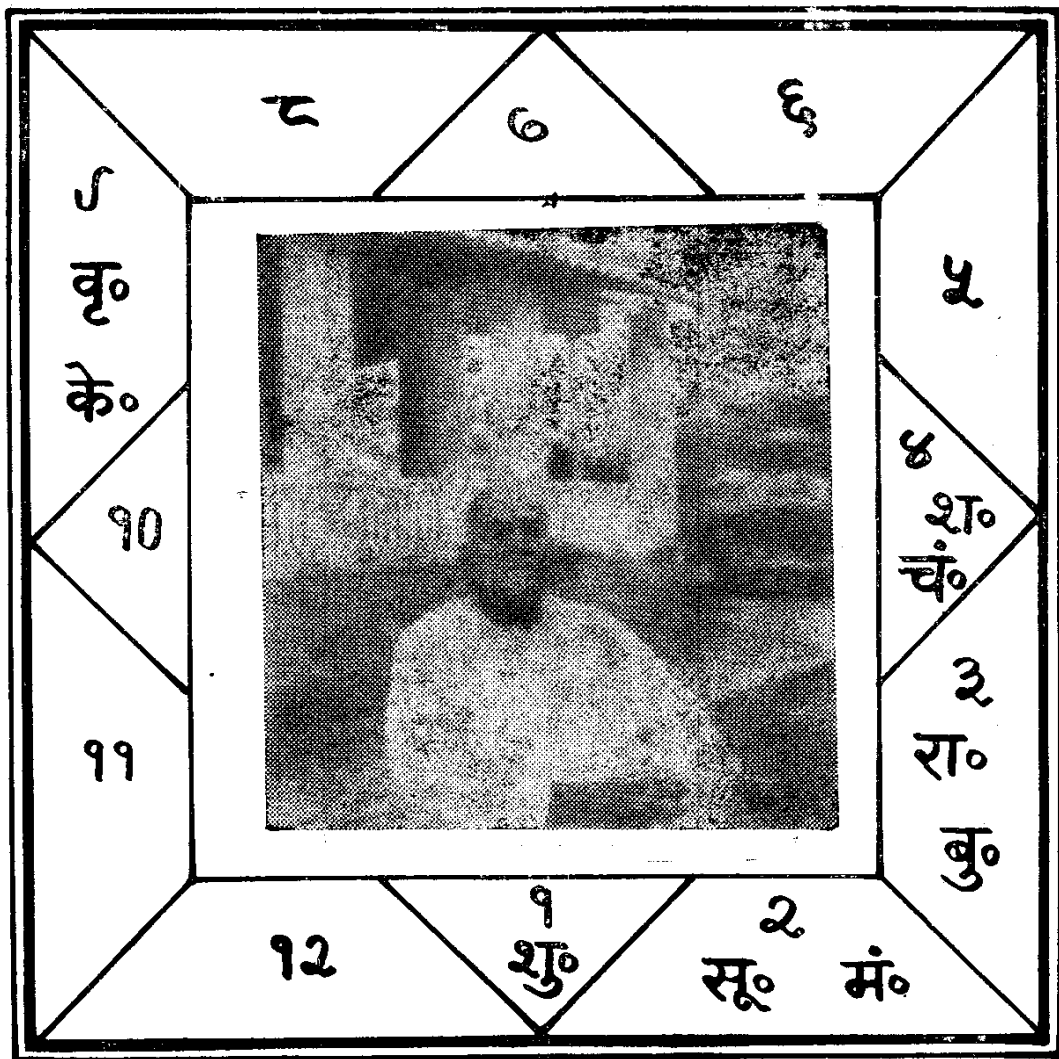
चित्र सं०-२६

स्व० श्री रायबहादुर रामेश्वर सिंह भू० पू० रेवेन्यू सचिव

जन्म ता० ४-६-१८८९ ई० मंगलवार, इष्ट २८।३८
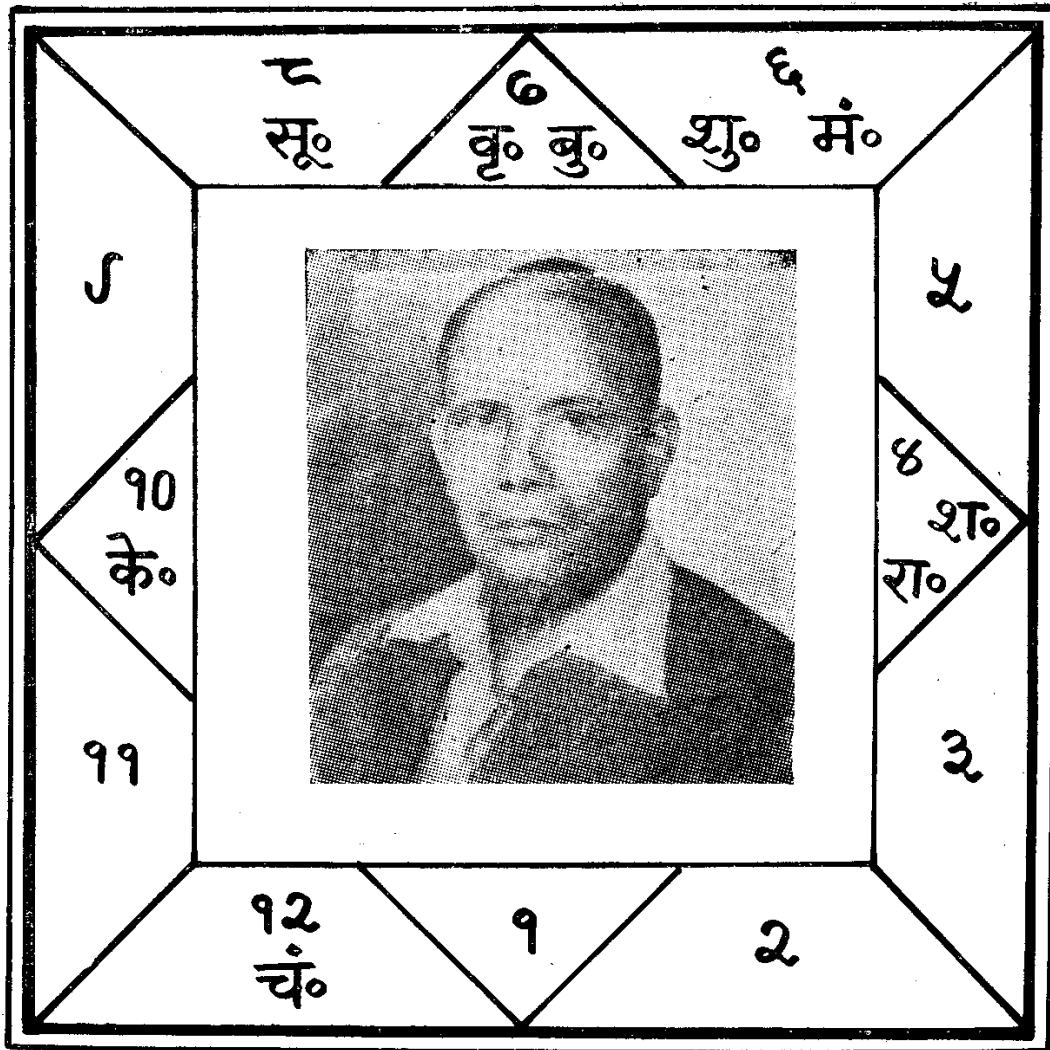
चित्र सं०-२७

श्री संत प्रसाद सिंह

जन्म सं० १९४४ श० १८०९ अग्रहण शुक्ल १०, इष्ट ५६।०
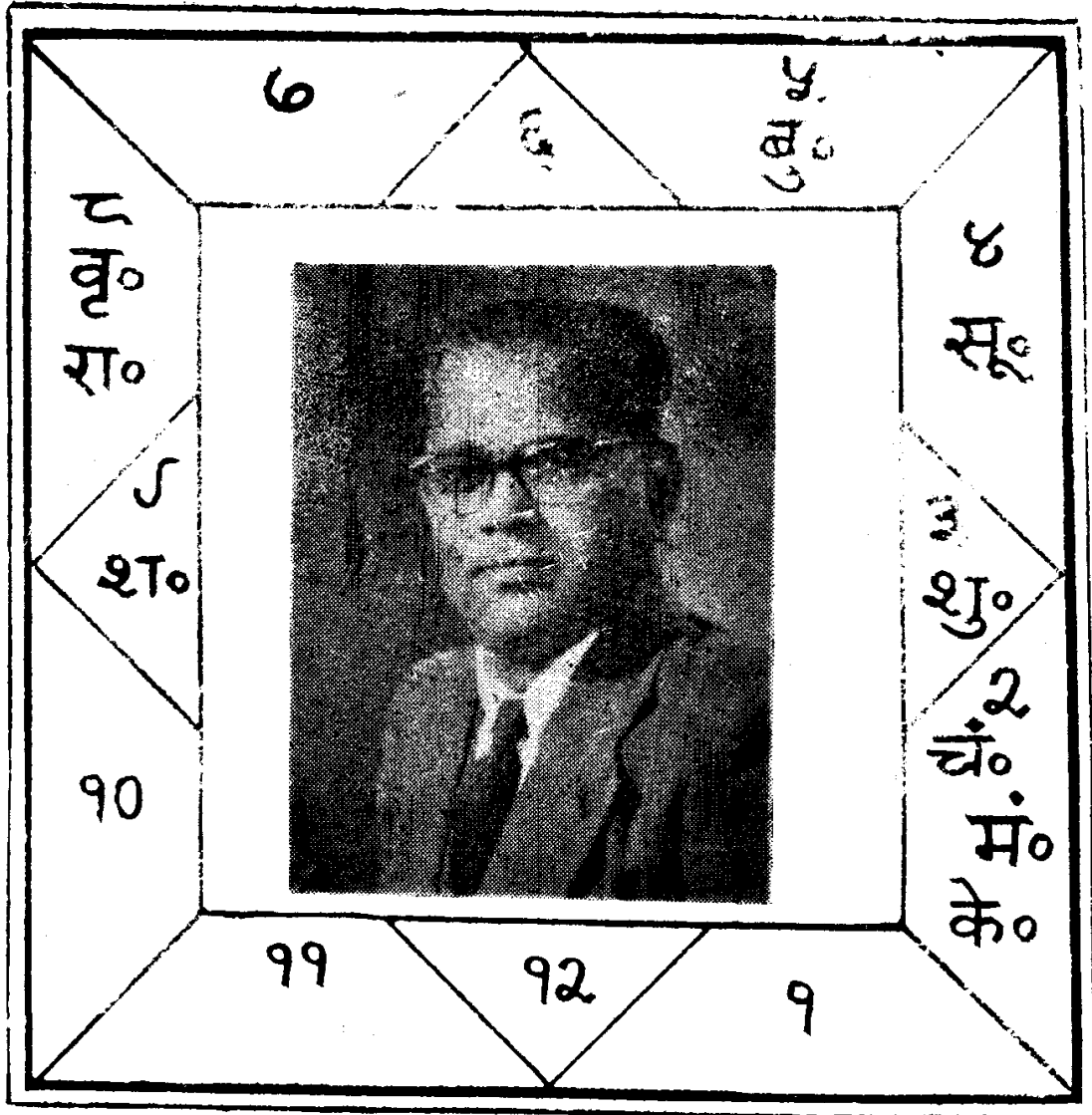
चित्र सं०-२८

डॉ० पारसनाथ सिंह

जन्म सं० १९५७ श० १८२२ श्रावण कृष्ण १२

इष्ट १२।५
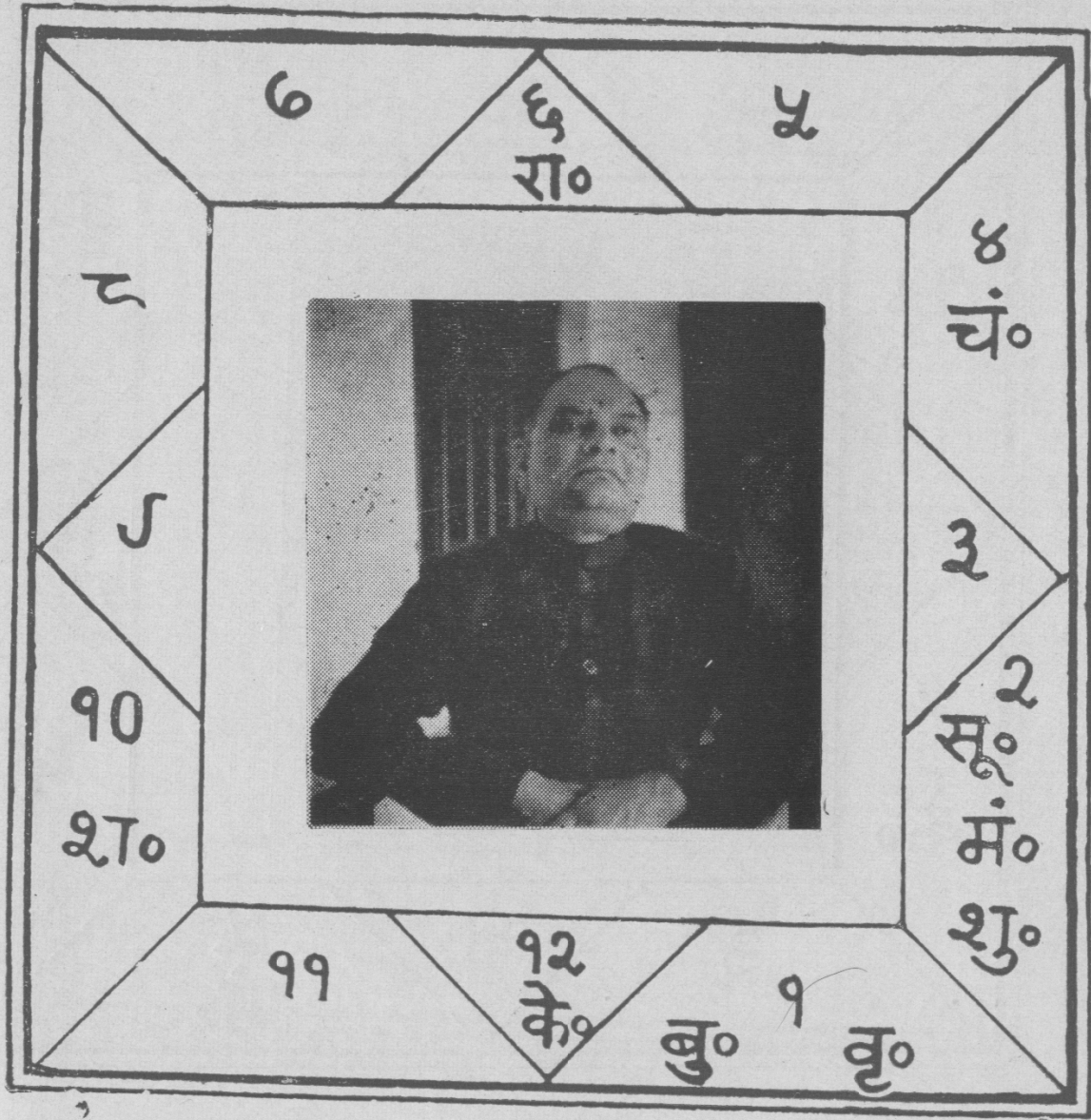
चित्र सं०-२९

डॉ० हरनन्दन सहाय

जन्म सं० १९६१ श० १८२६ ज्येष्ठ शुक्ल, इष्ट २३।४६
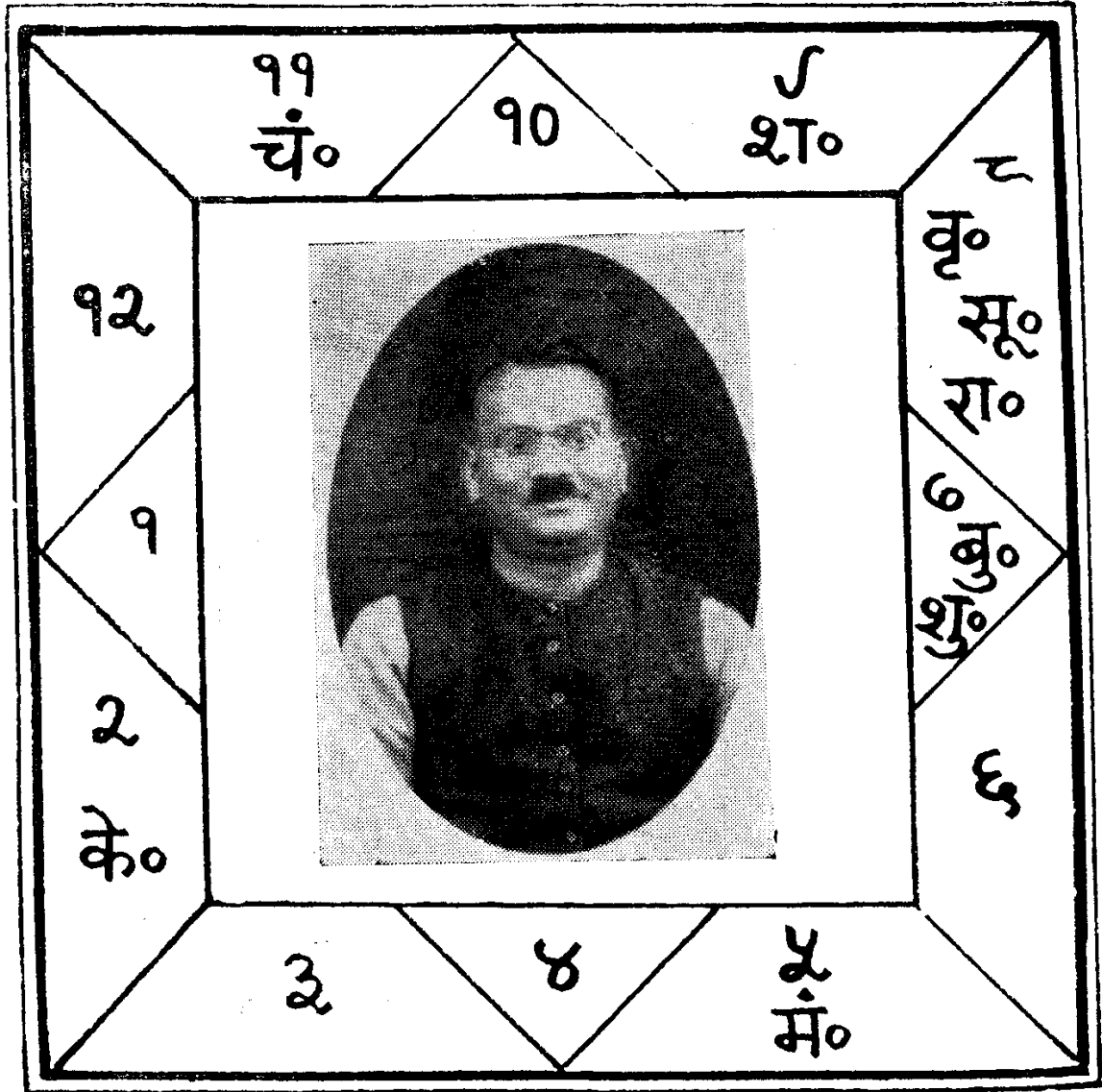
चित्र सं०-३०

श्री मदन गोपाल मेहता

जन्म सं० १९५७ श० १८२२ अग्रहण शुक्ल ८ शुक्रवार, इष्ट ८।३०
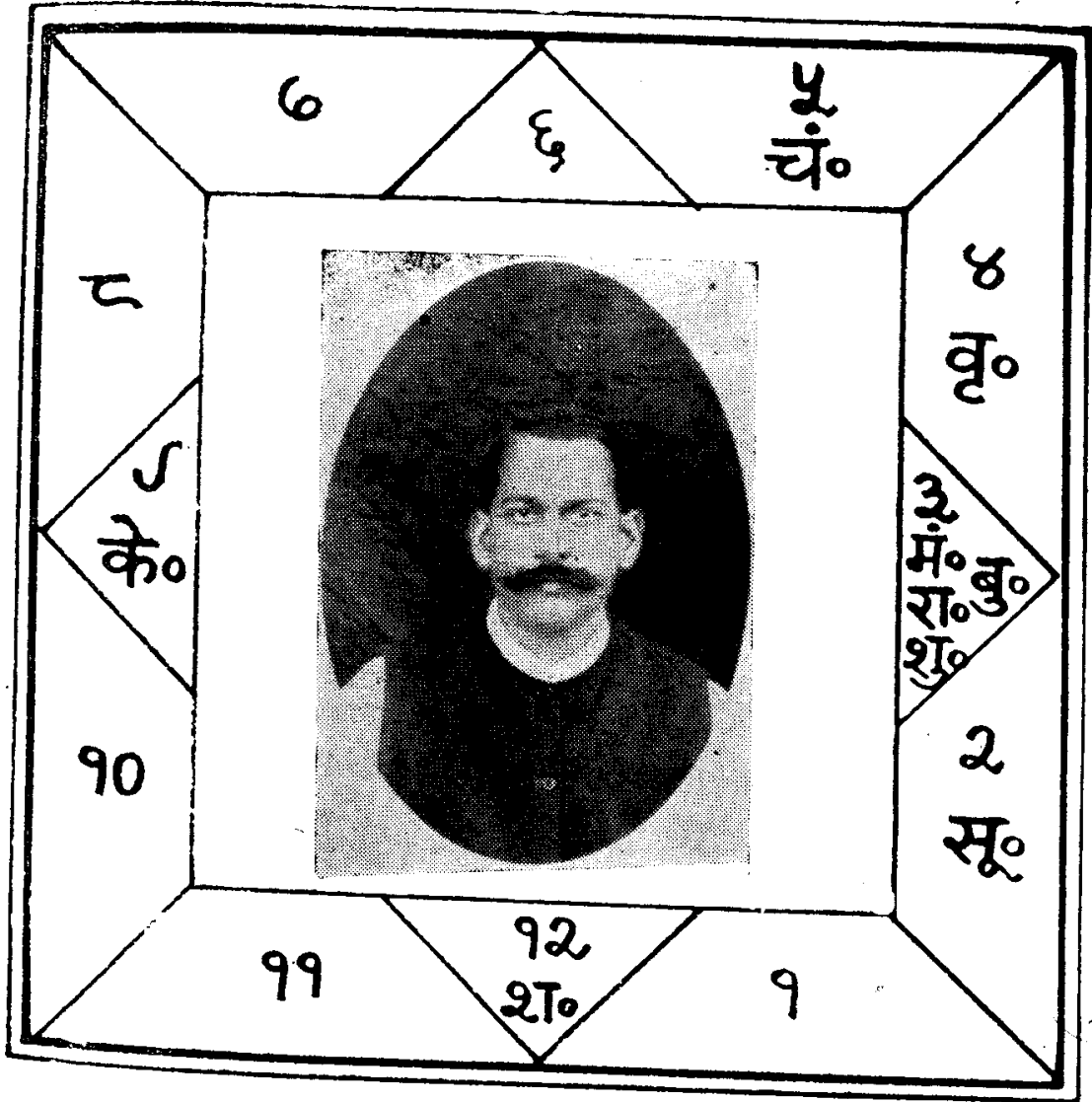
चित्र सं०-३१

श्री कपिलदेव नारायण सिंह
जन्म सं० १९६५ ज्येष्ठ शुक्ल ६ आश्लेष
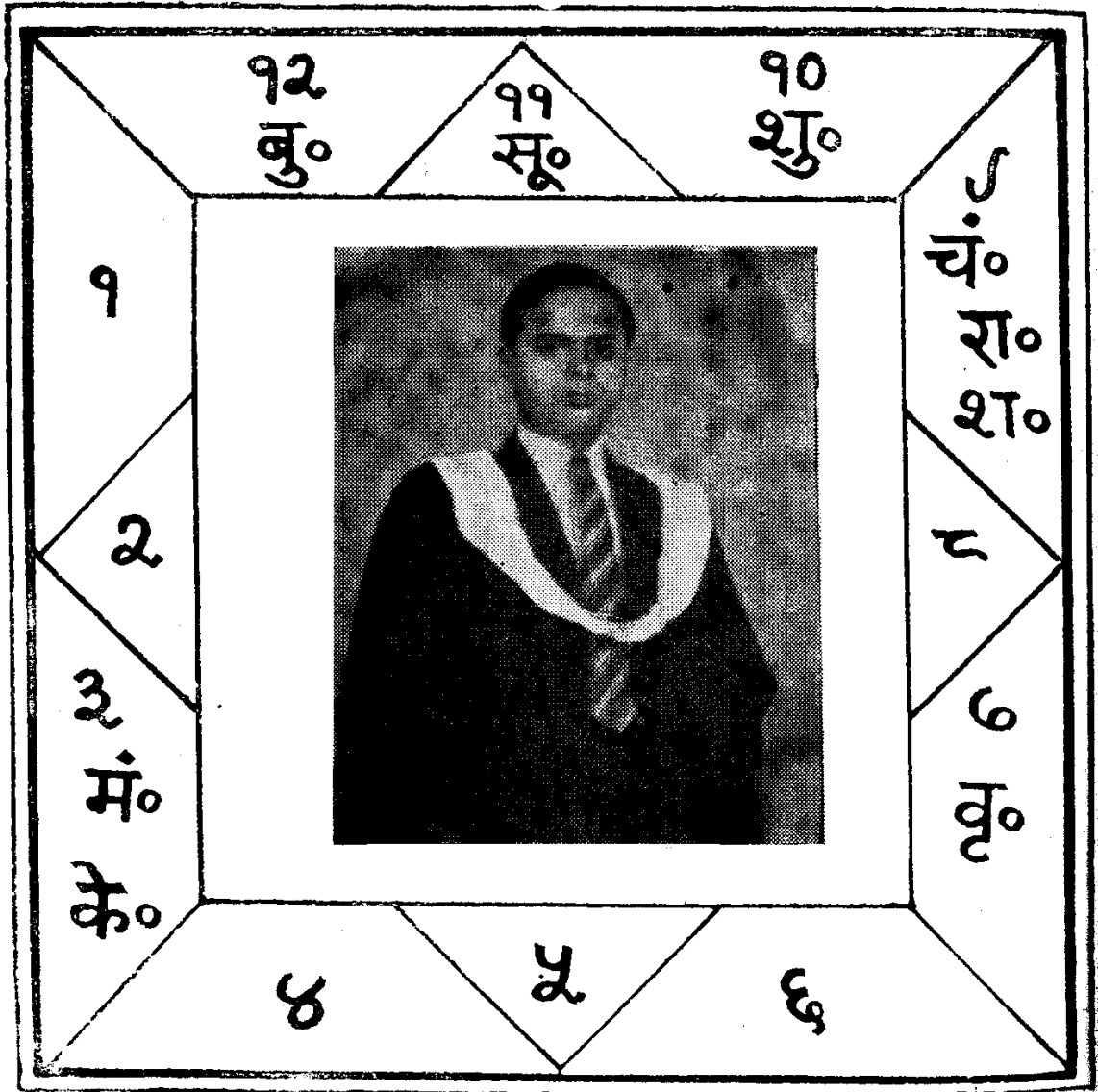
चित्र सं०-३२

श्री शम्भुशरण, एडवोकेट

जन्म सं० १९५५ श० १८२० फाल्गुन कृष्ण ९ सोमवार, इष्ट २९।४६
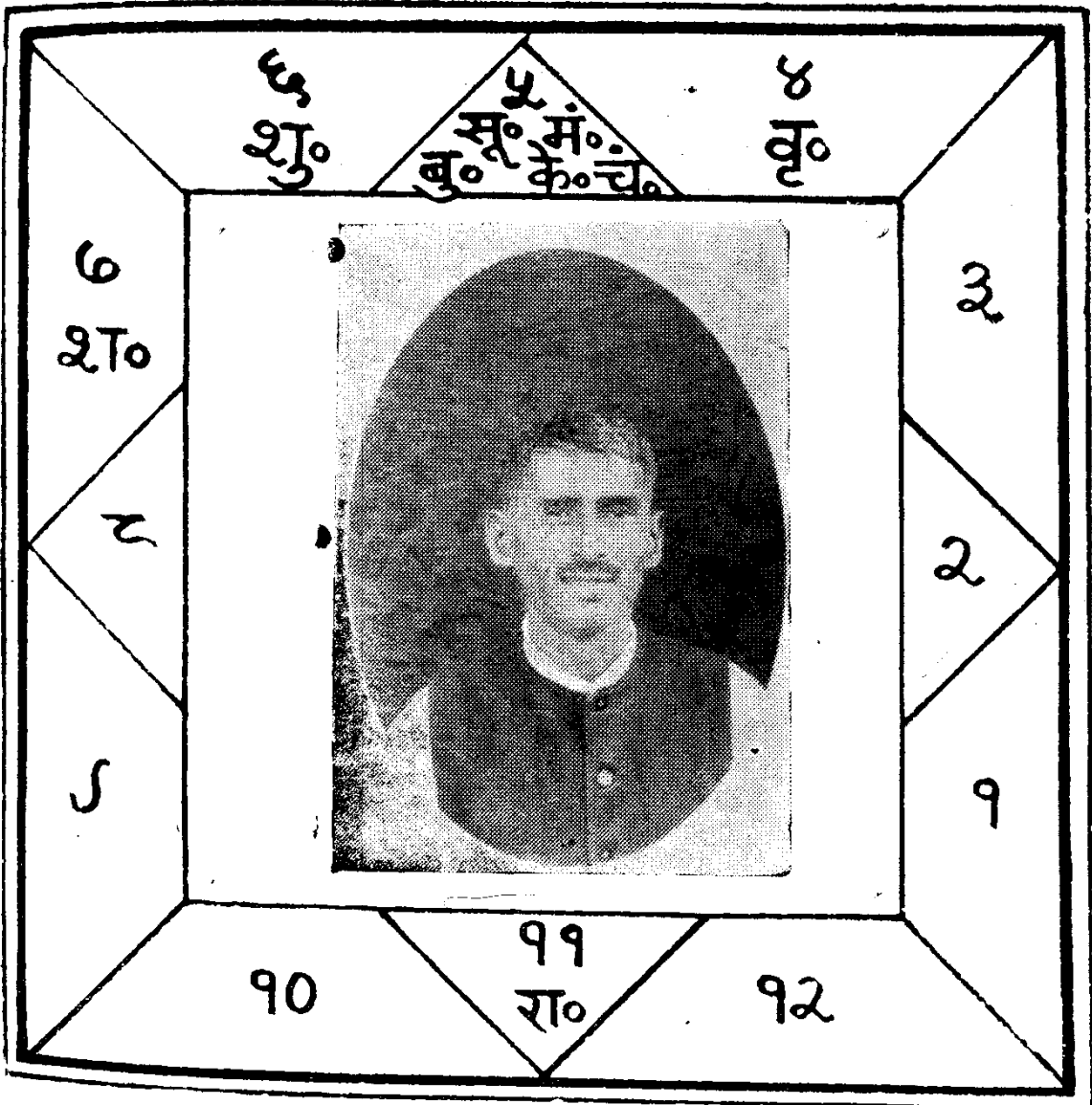
चित्र सं०-३३

श्री लक्ष्मण त्रिपाठी
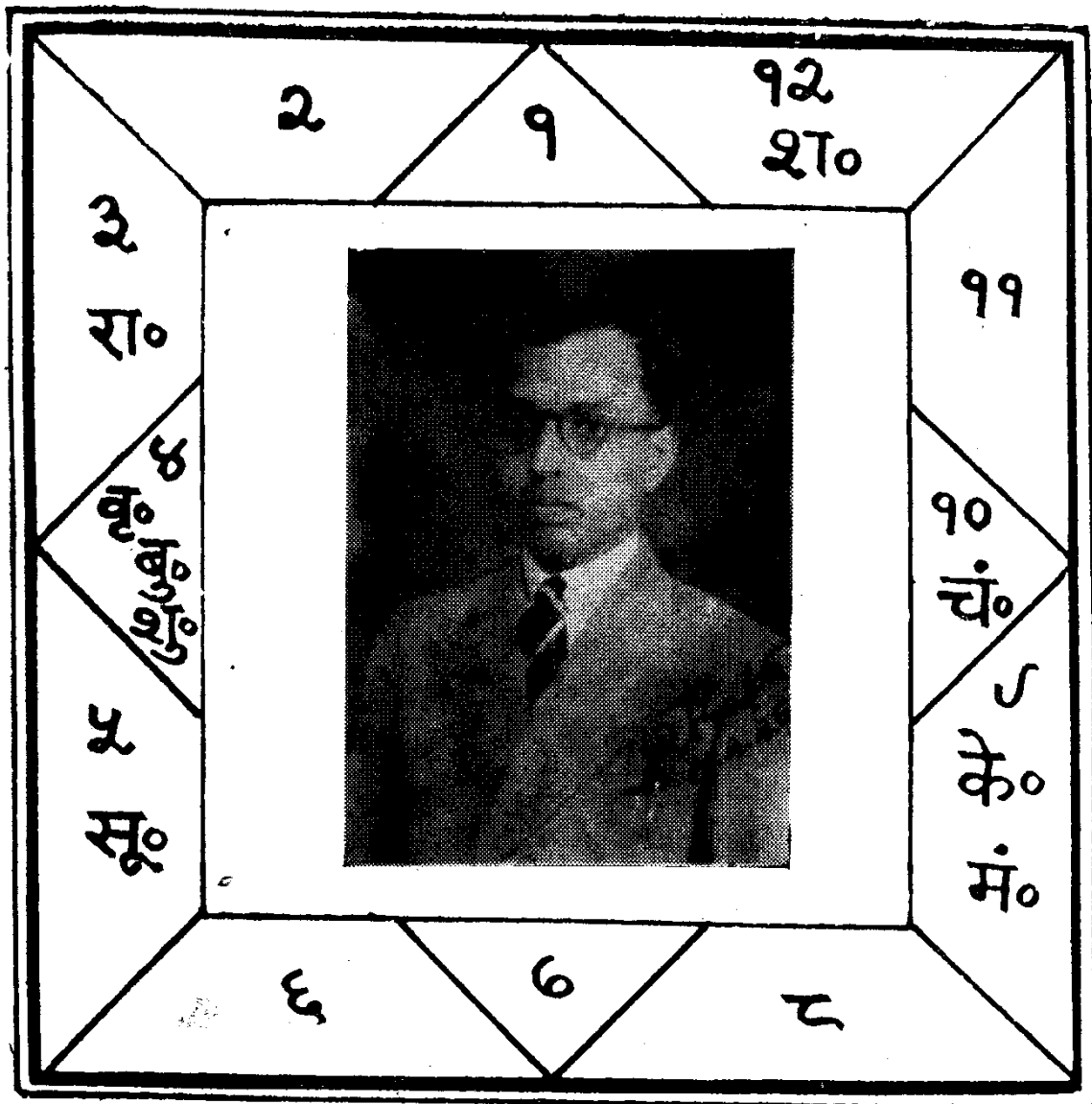
चित्र सं०-३४

श्री आर० पी० गुप्त

दिनांक २१-८-१९०७, बुधवार
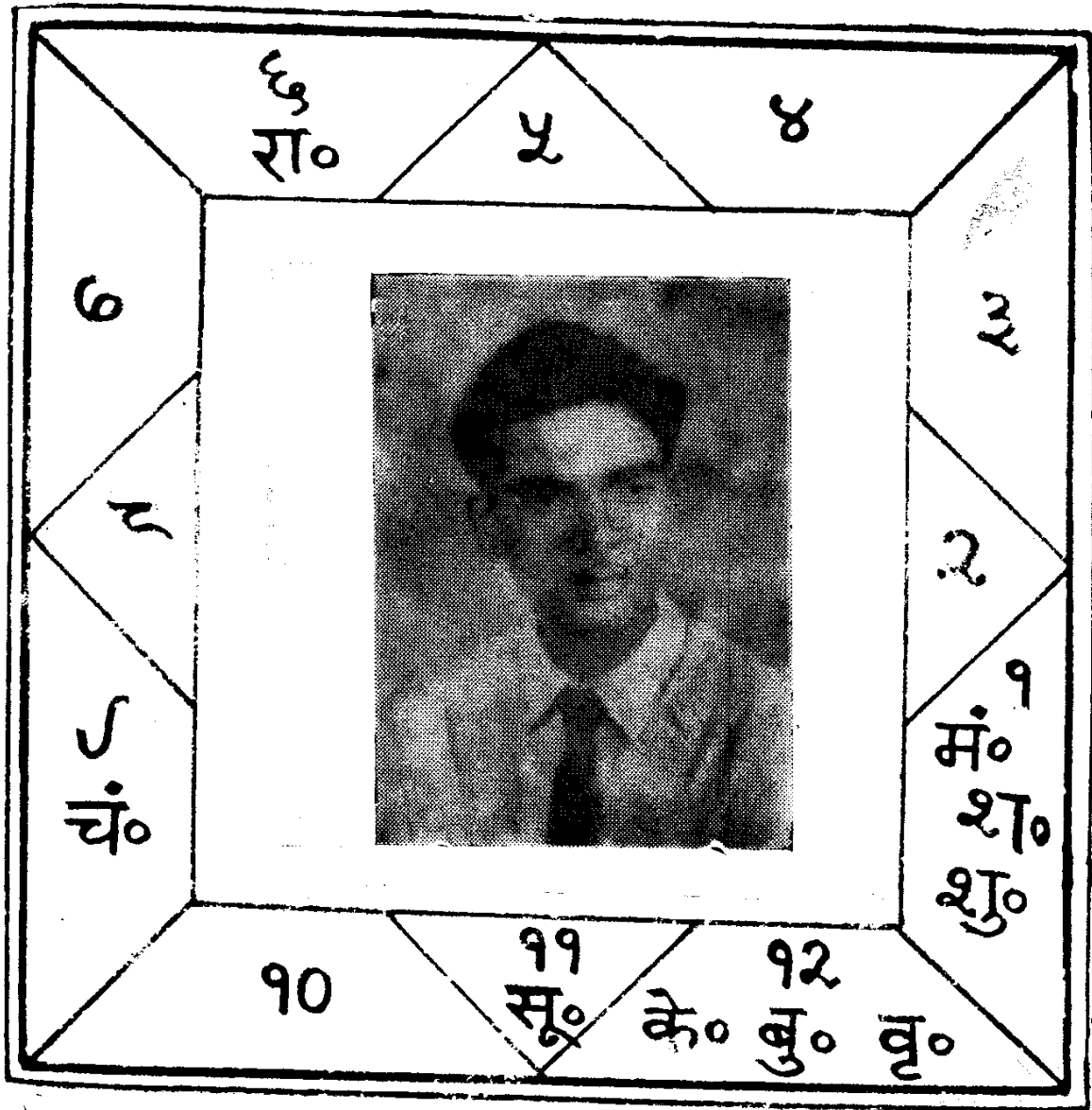
चित्र सं०-३५
श्री आत्मा प्र० सिंह
जन्म सं० १९९६ श० १८३१ फाल्गुन कृष्ण ११ चन्द्रवार
ता० ४ मार्च १९४० ई०
इष्ट २६।३४
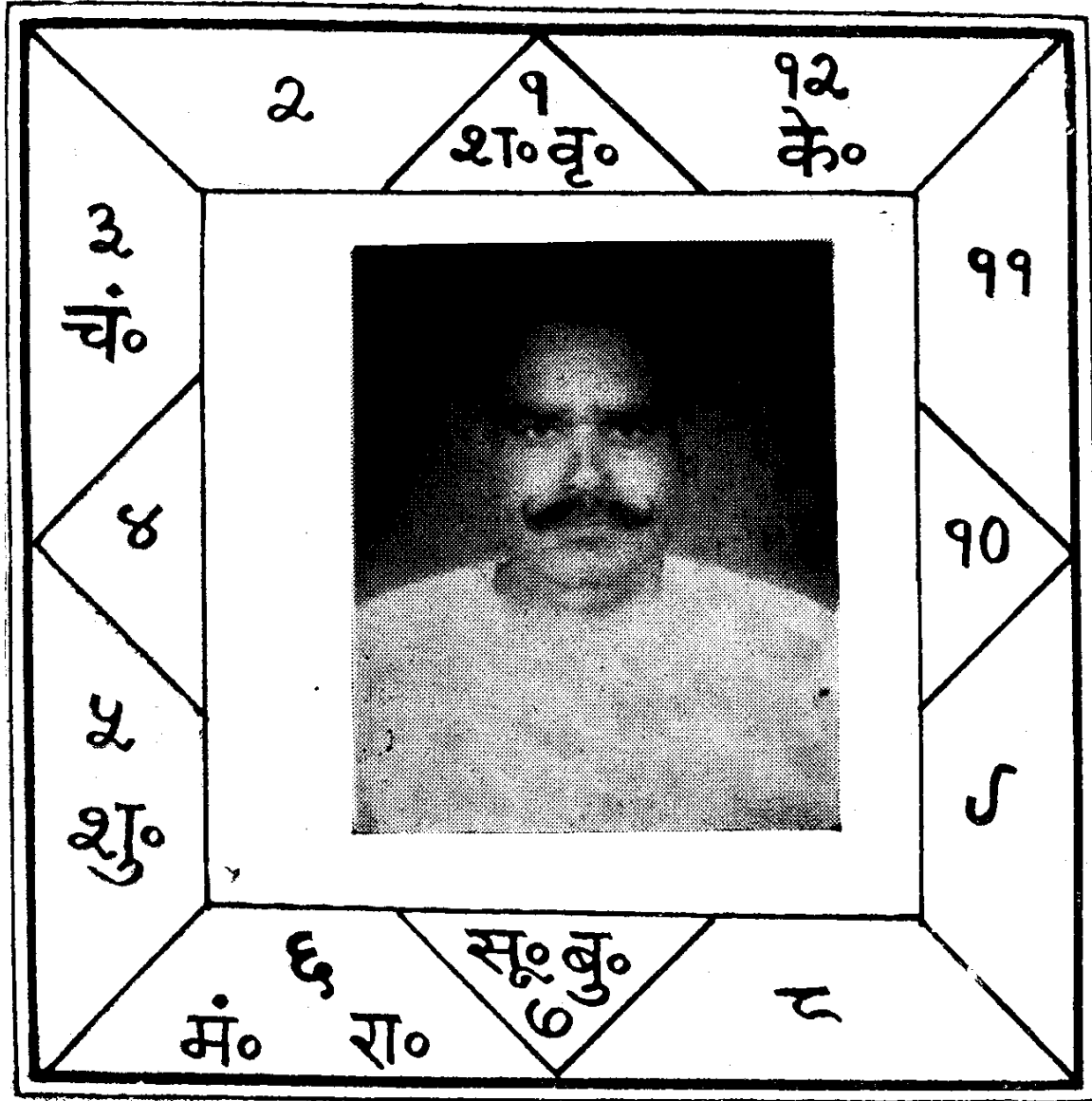
चित्र सं०-३६
श्री राजेन्द्र पाठक
जन्म सं० १९९७ कार्तिक कृष्ण ७ बुधवार
इष्ट २७।२१
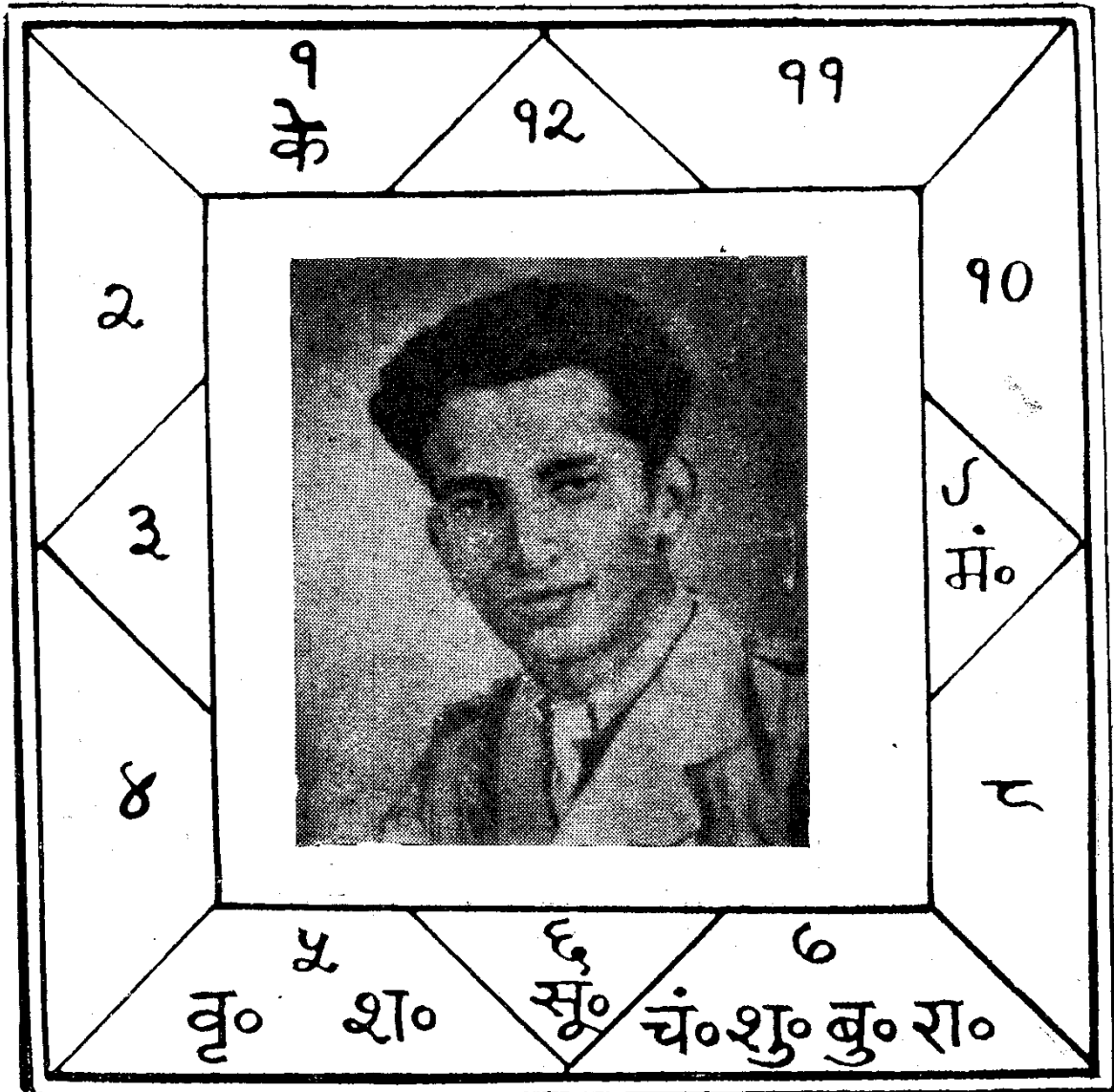
चित्र सं०-३७

श्री राजकुमार ठाकुर

जन्म सं० १९७७ श० १८४२ आश्विन शुक्ल २

इष्ट २८।१२
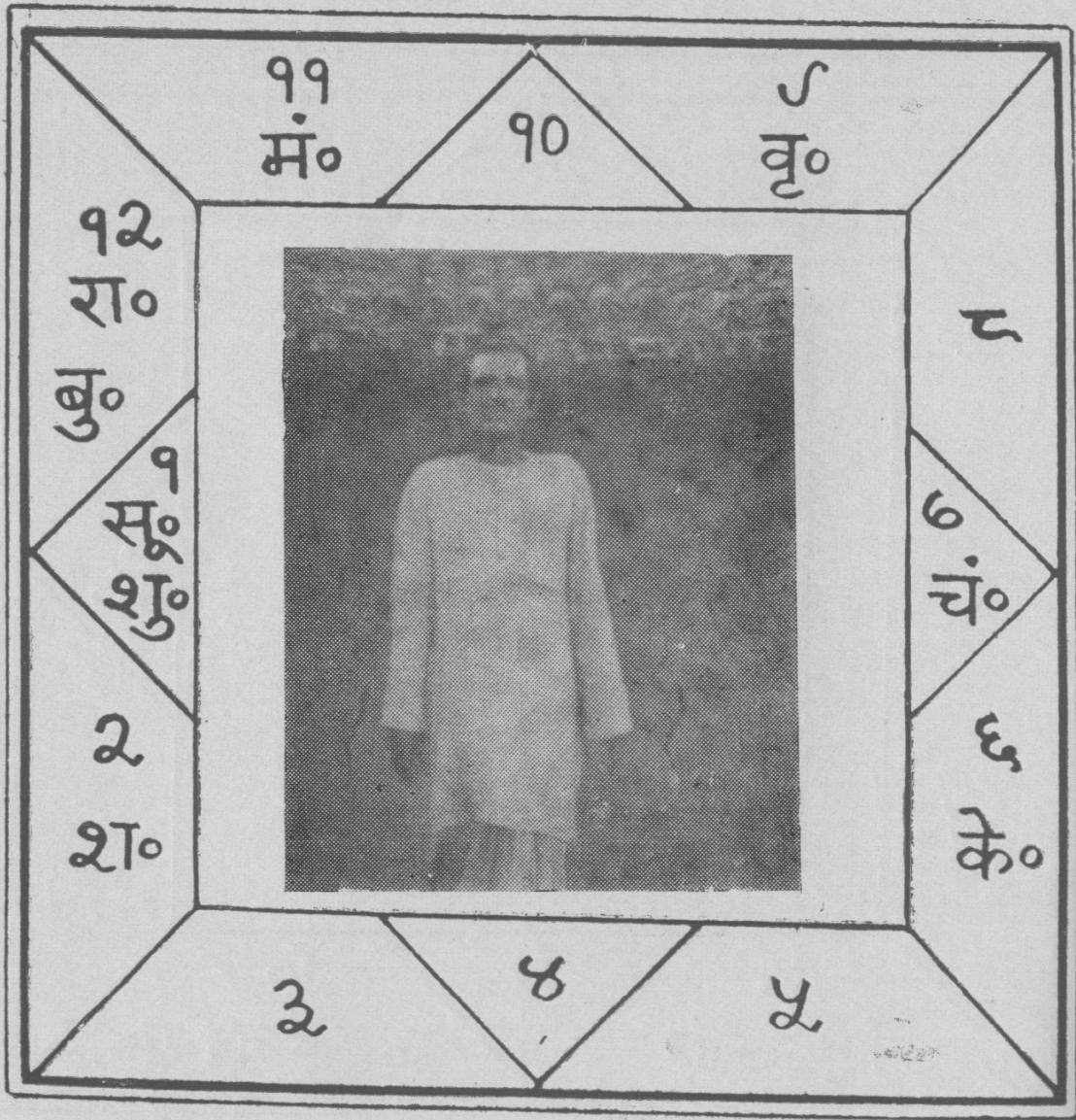
चित्र सं०-३८

श्री प्रद्युम्न सिंह

जन्म सं० १९७० श० १८३५ चैत्र शुक्ल पूर्णिमा रविवार

इष्ट ४८।५२
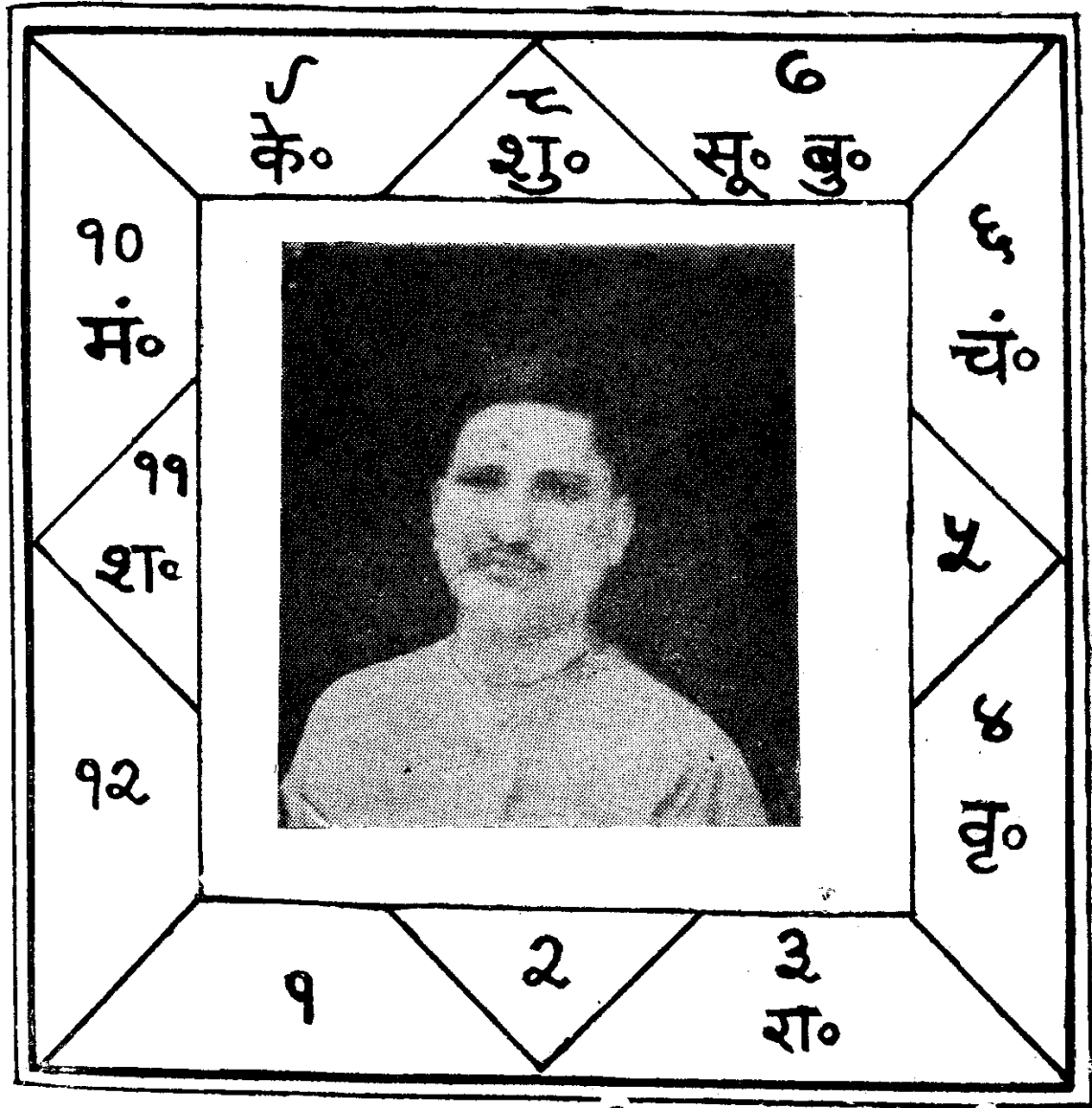
चित्र सं०-३९

श्री सुरेश्वर सिंह

जन्म ता० ४ ११-१९०७ ई०

इष्ट ७।४
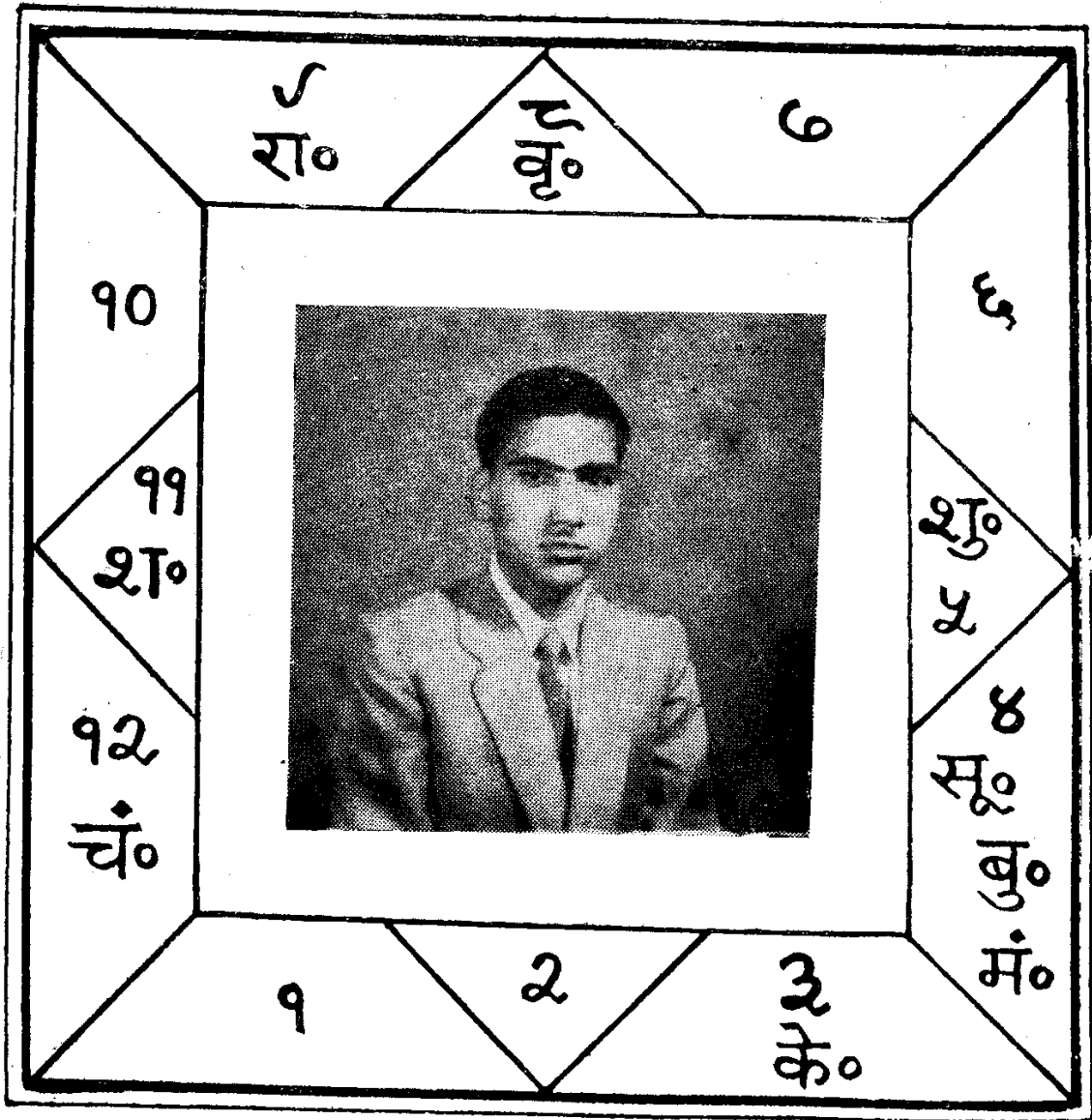
चित्र सं०-४०

श्री डी० एन० सिंह

जन्म ता० ७-८-१९३६ ई०,

इष्ट २१।२५

चित्र सं०-४१
श्रीयुत् यशवन्त सिंह, मड़वनियाँ
जन्म सं० १९८६ श० १८५१ वैशाख शुक्ल ५ चन्द्रवार
इष्ट १४।५६
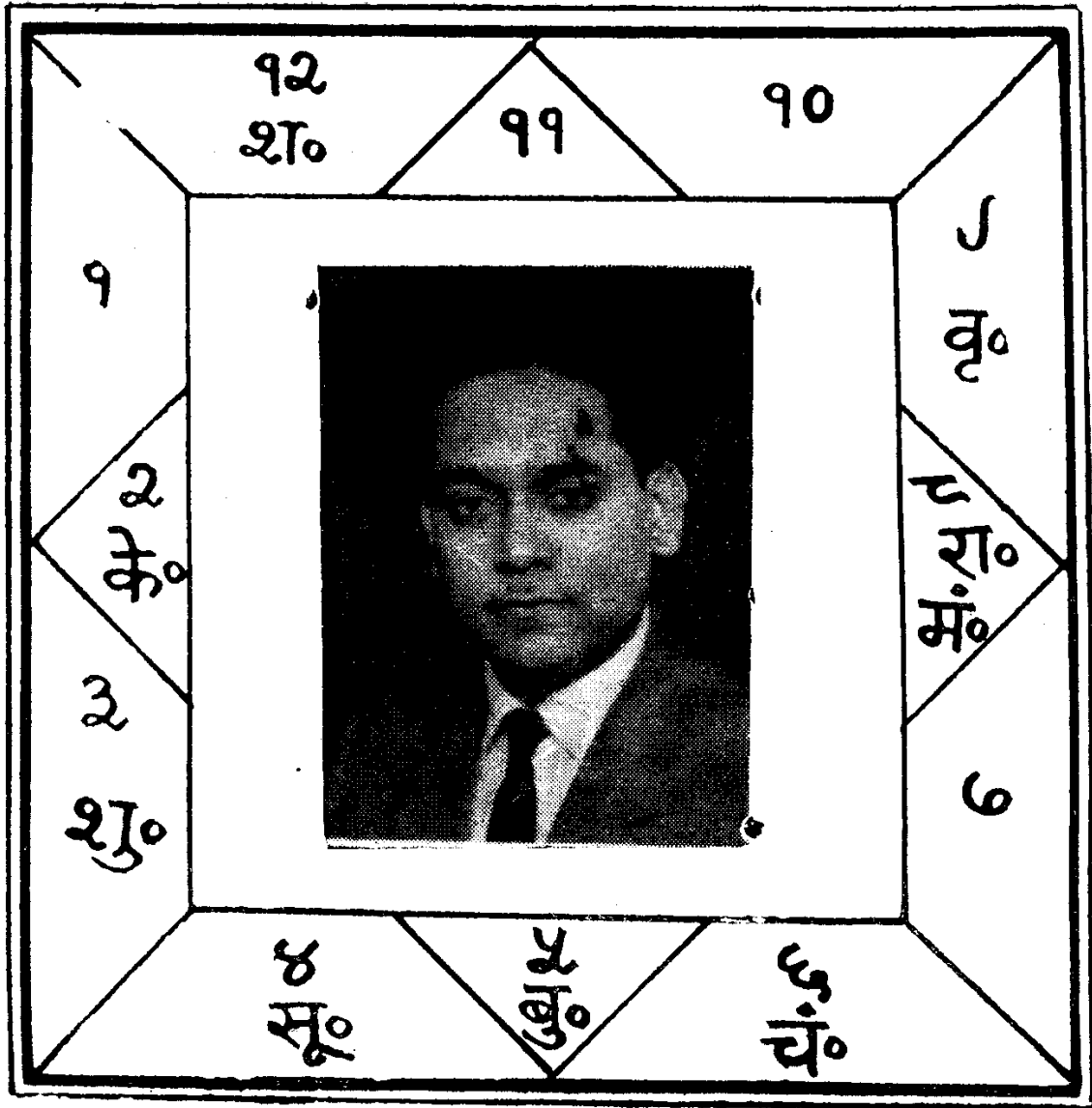
चित्र सं०-४२

प्रो० अखिलेश्वर प्रसाद सिंह,

जन्म सं० १९९४ श० १८५९ श्रावण शुक्ल ६ गुरुवार

इष्ट ३२।३२
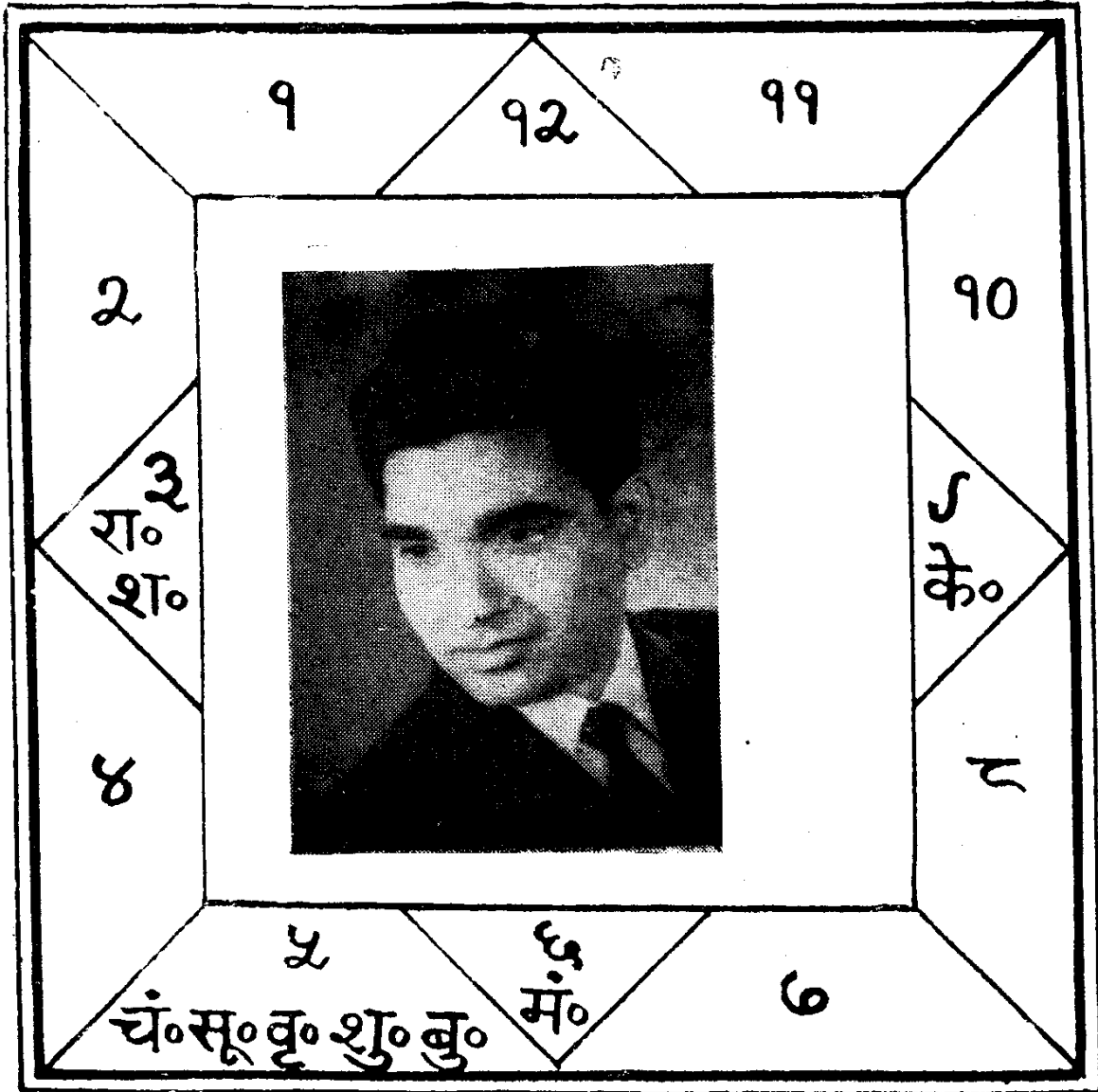
चित्र सं०-४३

श्री डॉ० वंशी प्रसाद कश्यप

जन्म सं० २००९ श० १८६६ आश्विन कृष्ण १३ शुक्र

इष्ट ३३।३४
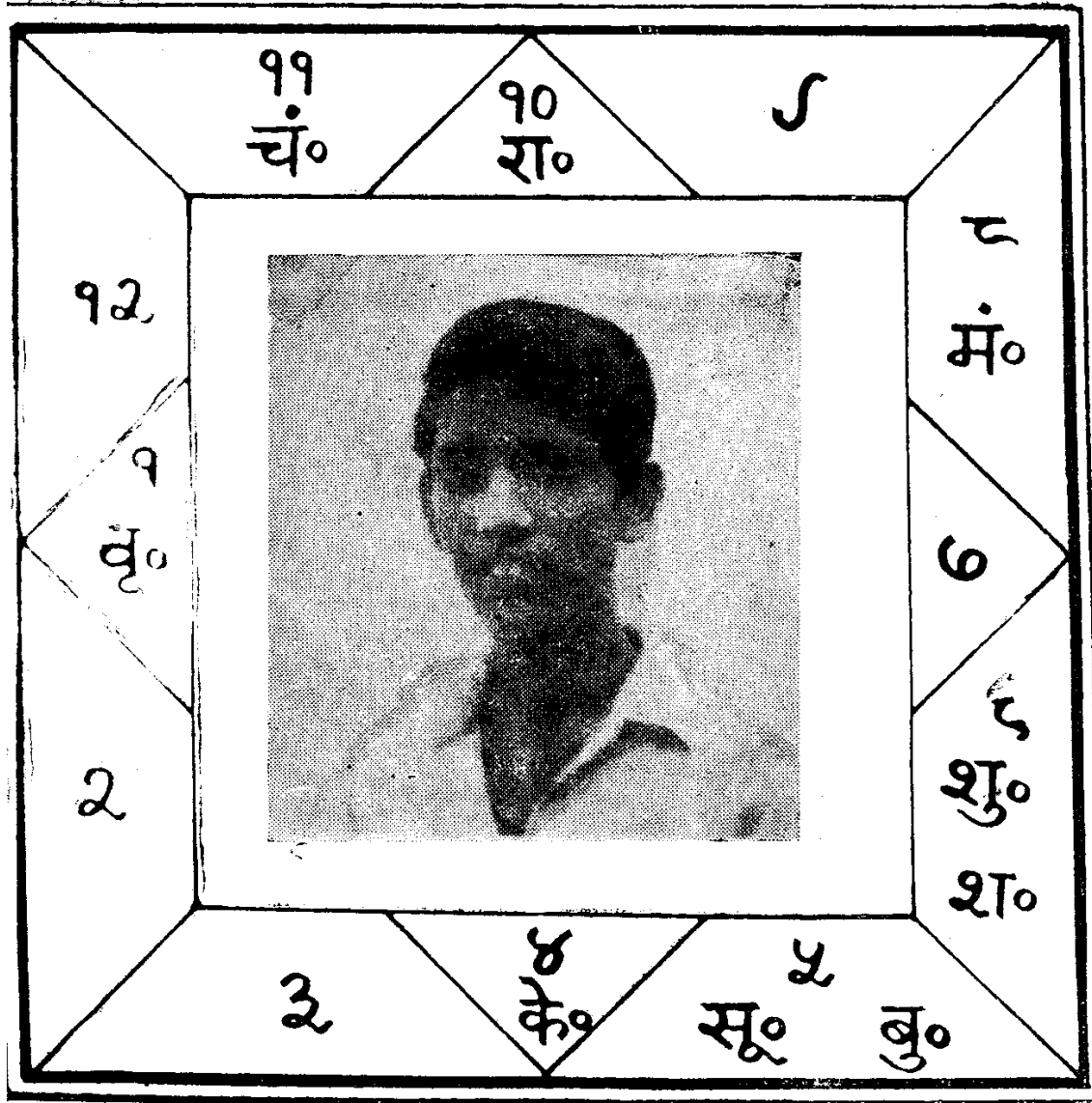
चित्र सं०-४४

श्री रवीन्द्रनाथ वर्मा

जन्म ता० ३-९-१९५२ समय ५।१६ सायं
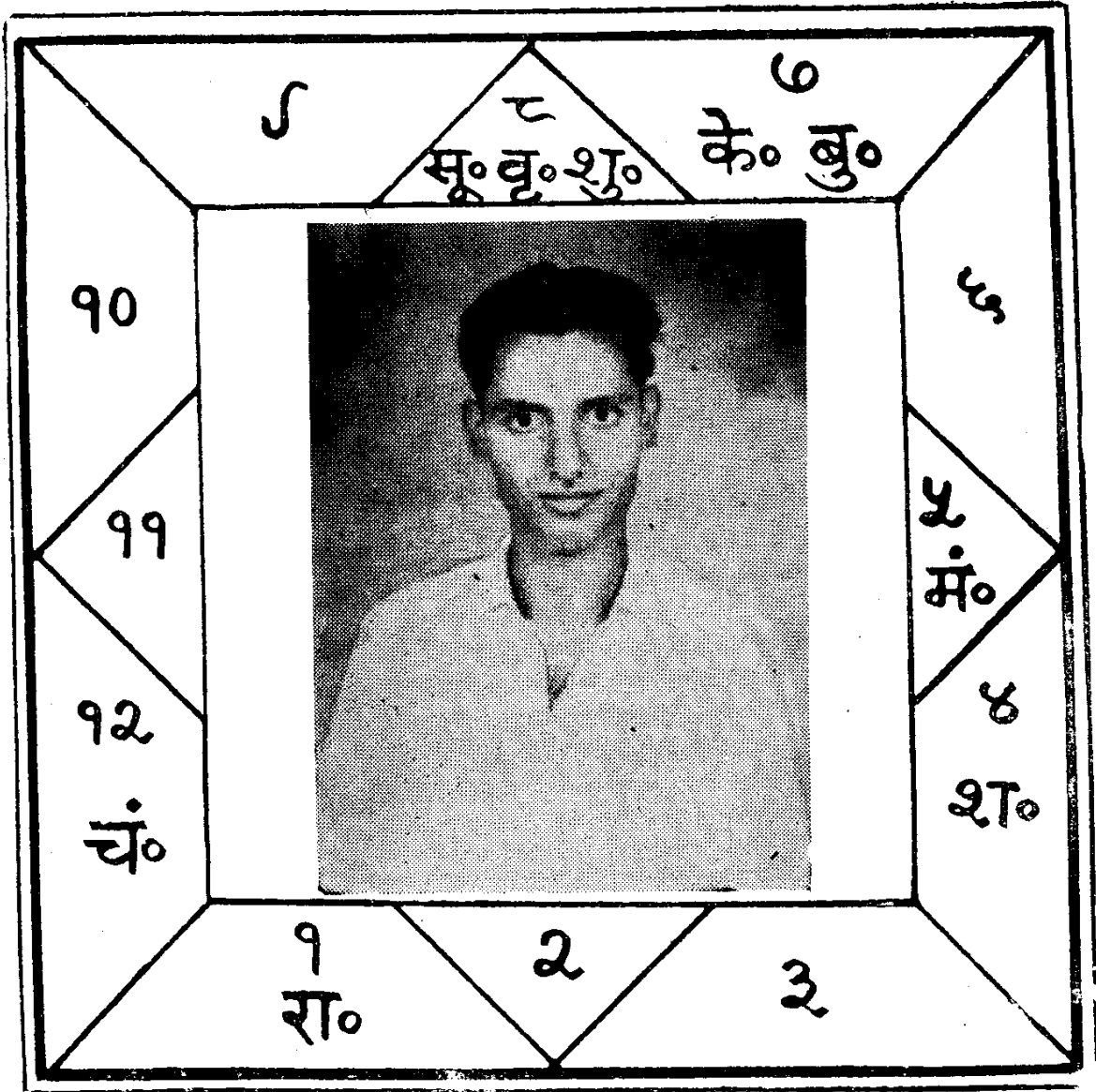
चित्र सं०-४५

श्रीकांत पाण्डेय, कविसा

जन्म सं० २००४ श० १८६९ कार्तिक शुक्ल ११ चन्द्रवार

इष्ट ५९।३७।३०
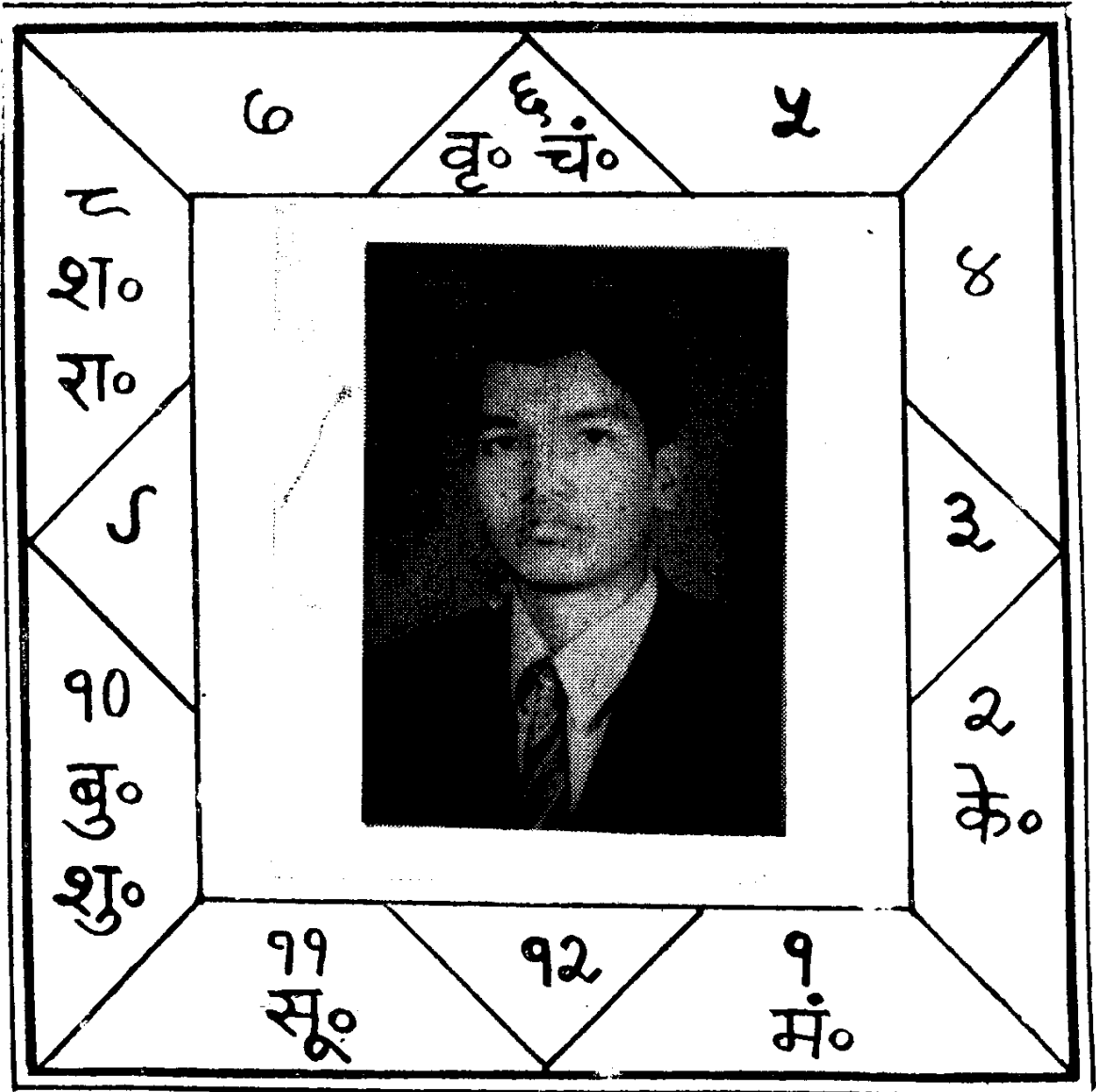
चित्र सं०-४६

श्री सुनील कुमार सिंह, मुरना

जन्म सं० २०१३ श० १८७८ फाल्गुन कृष्ण ३ रविवार

इष्ट ३६।५
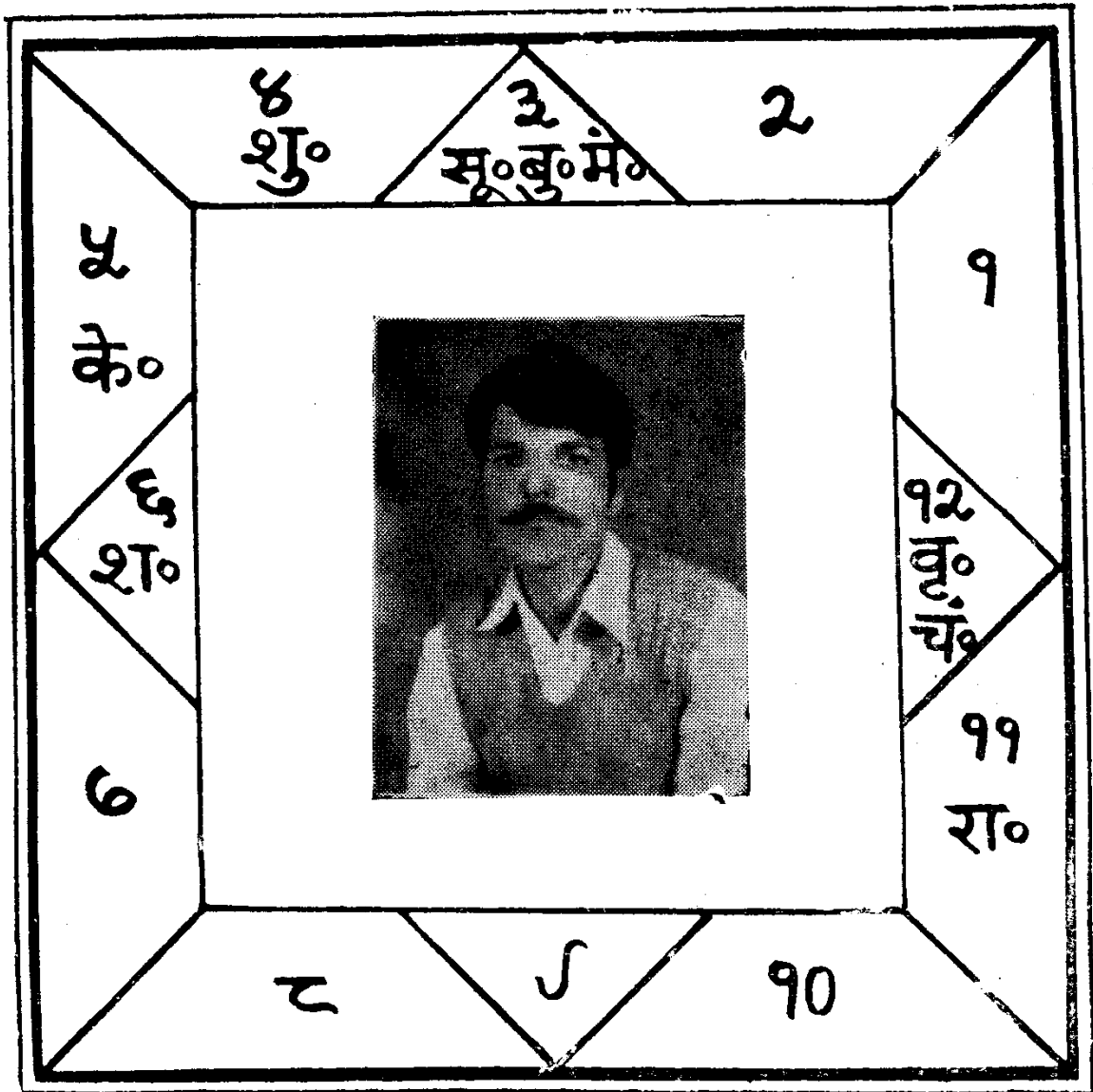
चित्र सं०-४७

श्री कृष्णमणिधर दुबे, कविसा
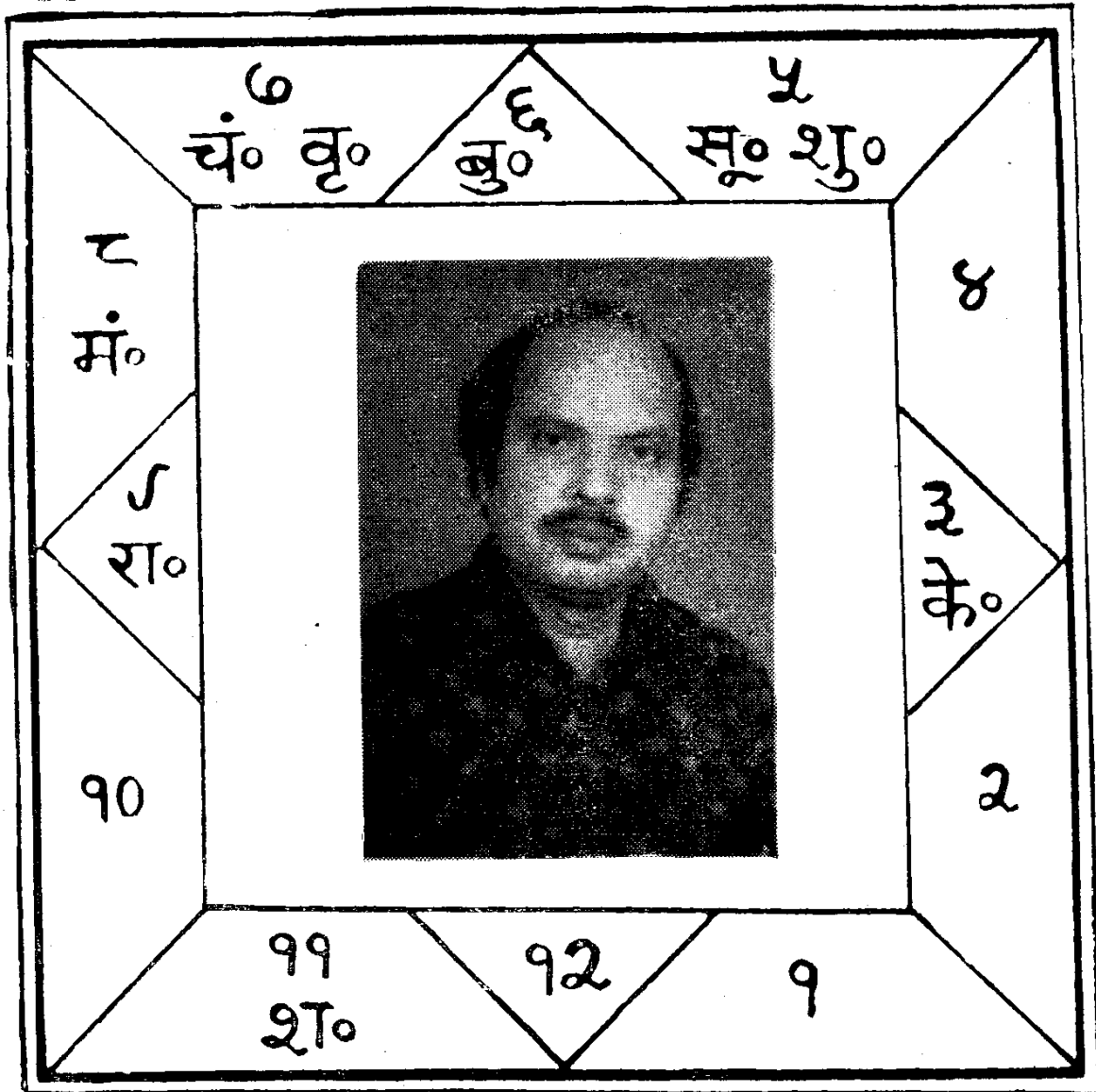
चित्र सं०-४८

श्री विनोद शंकर प्रसाद
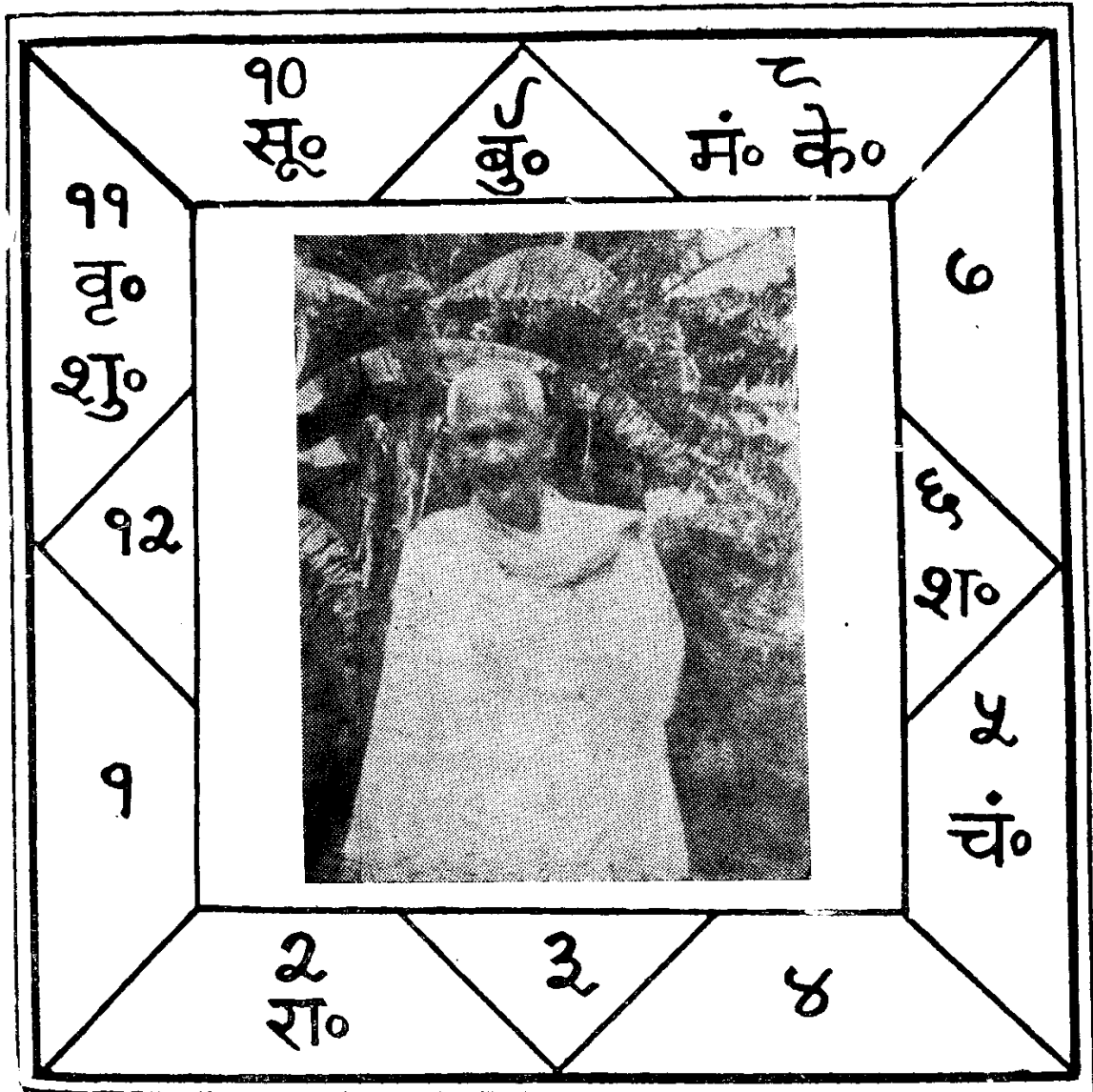
चित्र सं०-४९
श्रीयुत् रामजन्म सिंह, मड़वनियाँ
जन्म सं० १९४८ श० १८१२ माघ कृष्ण २ रविवार
इष्ट ५९।०

चित्र सं०-५०
स्व० रामपरीखा सिंह, रमुना
जन्म सं० १९५९ अग्रहण कृष्ण एकादशी भौमवार
इष्ट ३।३
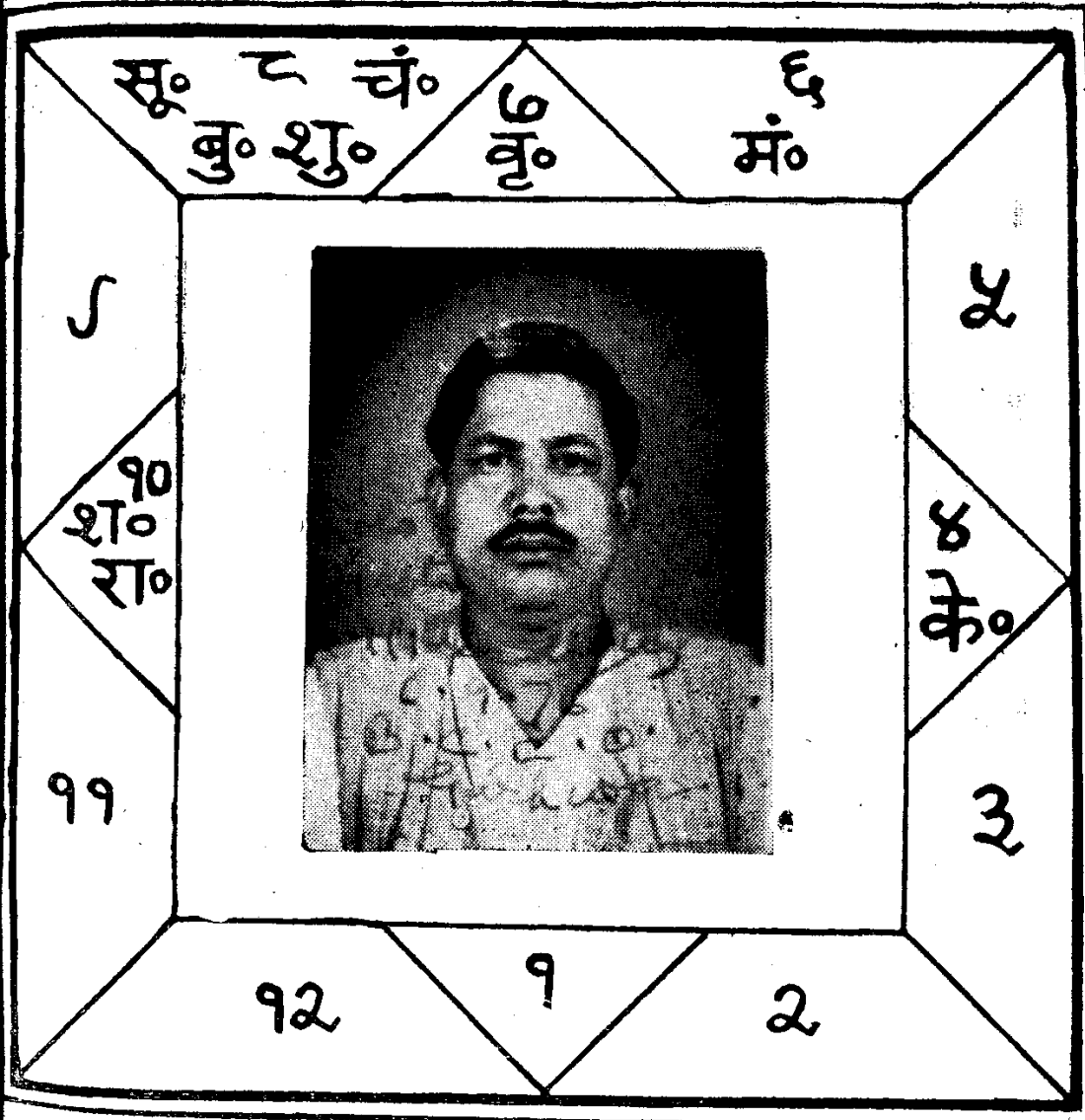
चित्र सं०-५१
श्री कृष्ण महतो, गढवा (अरंगी)
जन्म दिनांक ६।७ दिसम्बर, १९३४ ई०
इष्ट ५०।२७
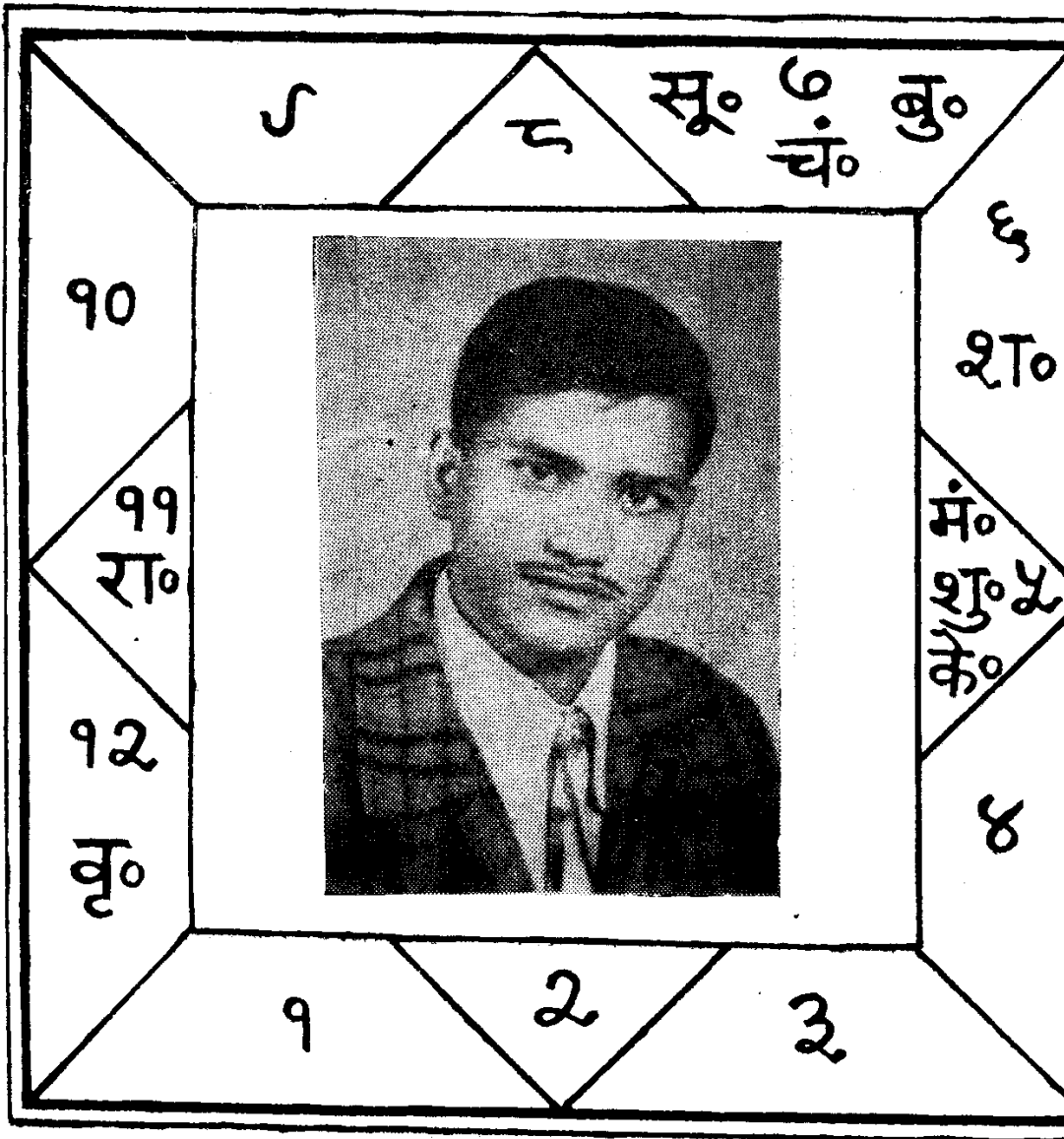
चित्र सं०-५२

श्री कमल किशोर सिंह, मड़वनियाँ

जन्म ता० ३१ अक्टूबर, १९५१ ई०, घं० ७।३७ प्रातः
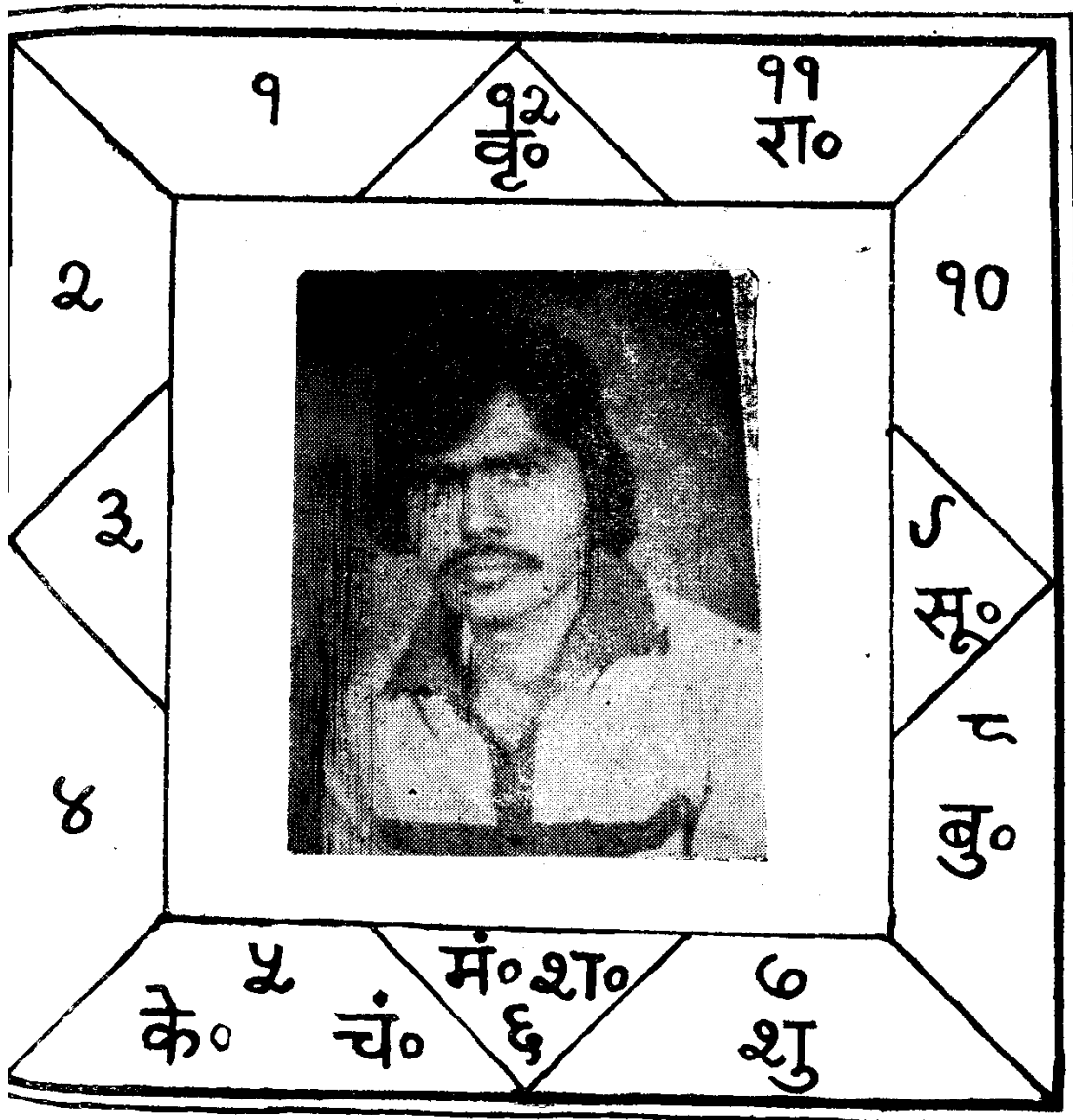
चित्र सं०-५३
डॉ० अनिल कुमार सिंह
जन्म दि० १९ सितम्बर, १९५१ ई०
दिन में १२।१५ पर
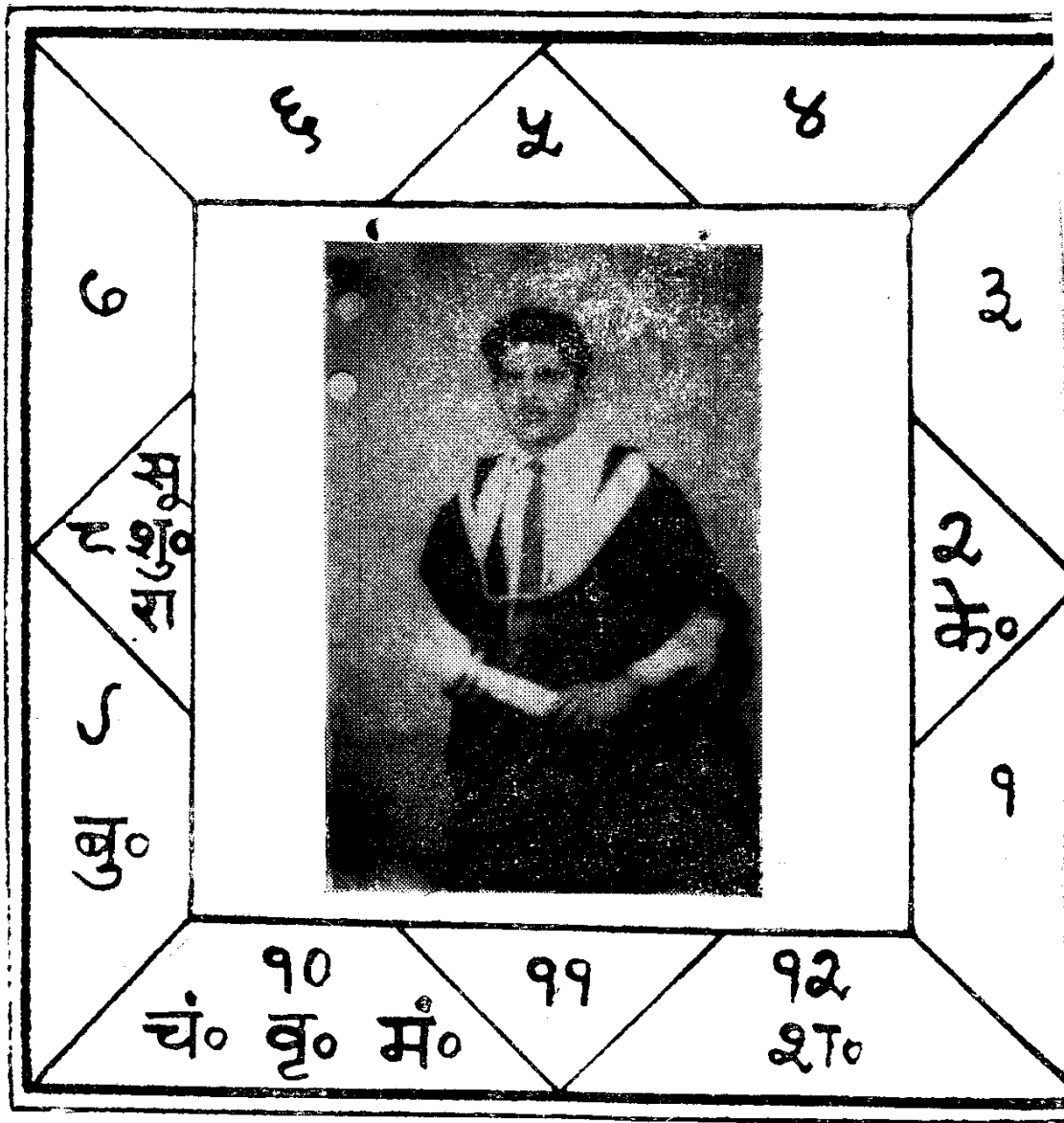
चित्र सं०-५४
श्री अनिरुद्ध सिंह, रमुना
जन्म सं० १९९४ मार्गशीर्ष चतुर्थ्यम मंगलवार
इष्ट ४३।७
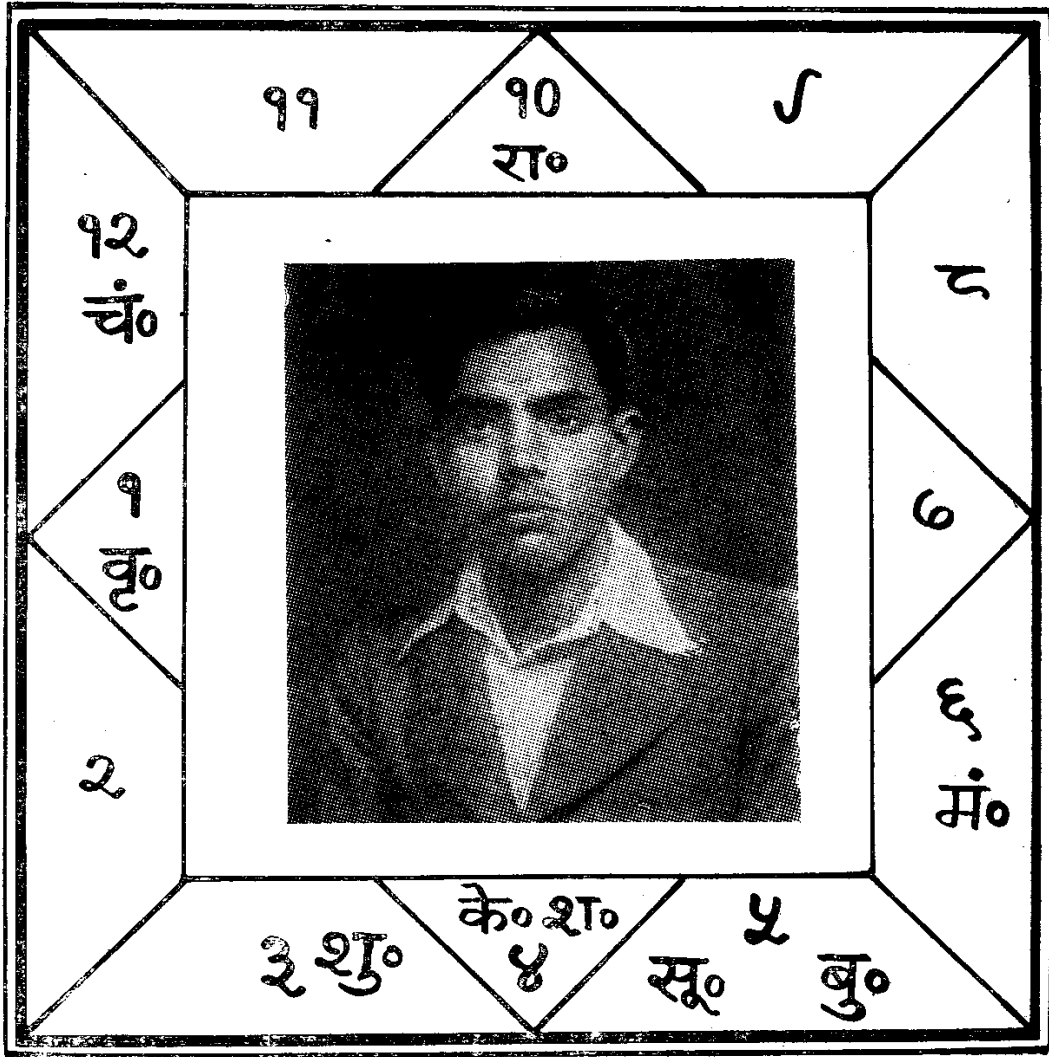
चित्र सं०-५५

श्री तृपित नारायण सिंह

जन्म ता० १६-८-१९१६ ई० बुधवार

इष्ट ४ बजे दिन
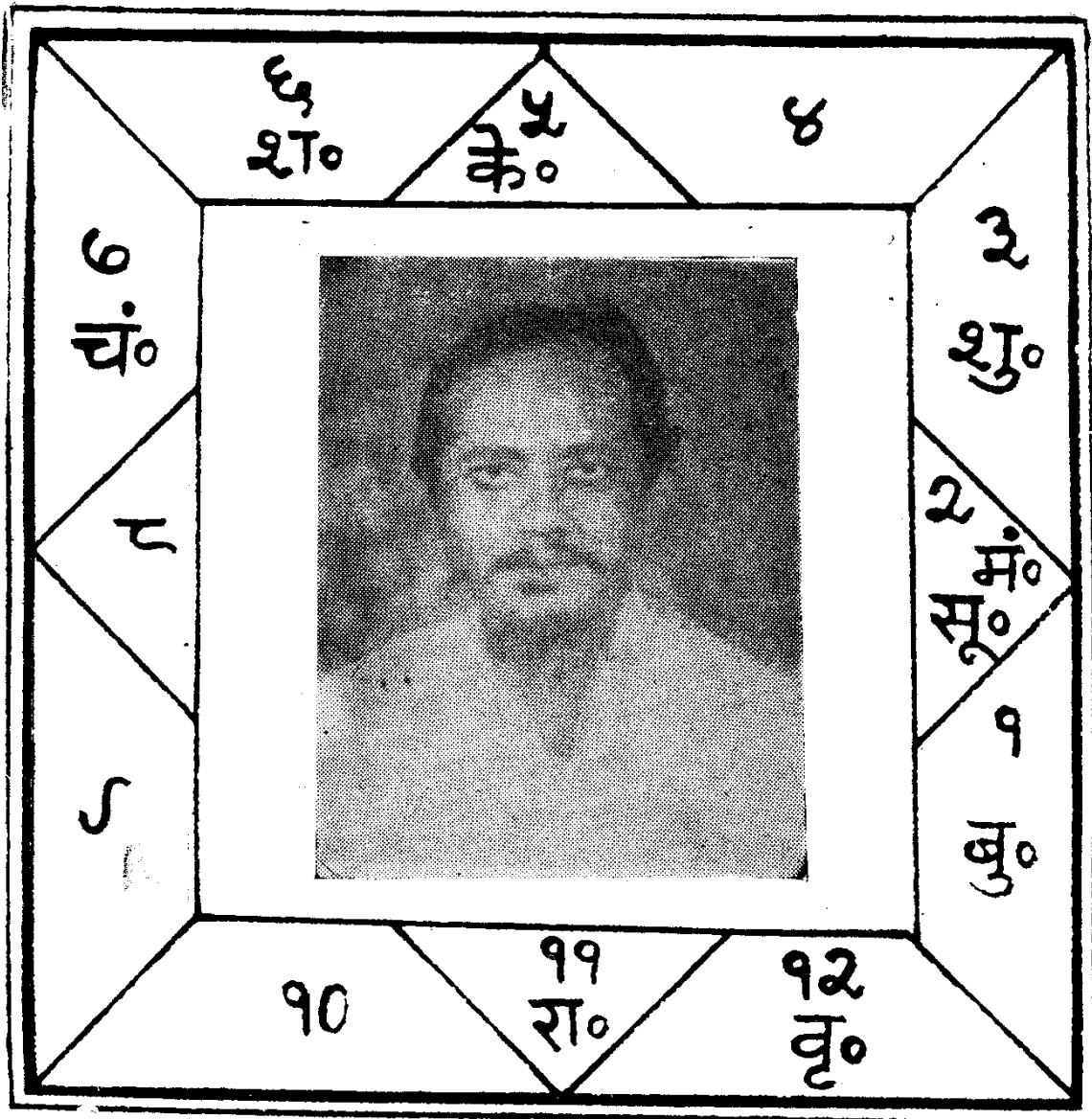
चित्र सं०-५६
श्रीयुत् गोपाल सिंह, रमुना
जन्म सं० २००८ श० १८७३ वैशाख शुक्ल १३ शी शनिवार
इष्ट १८।३५
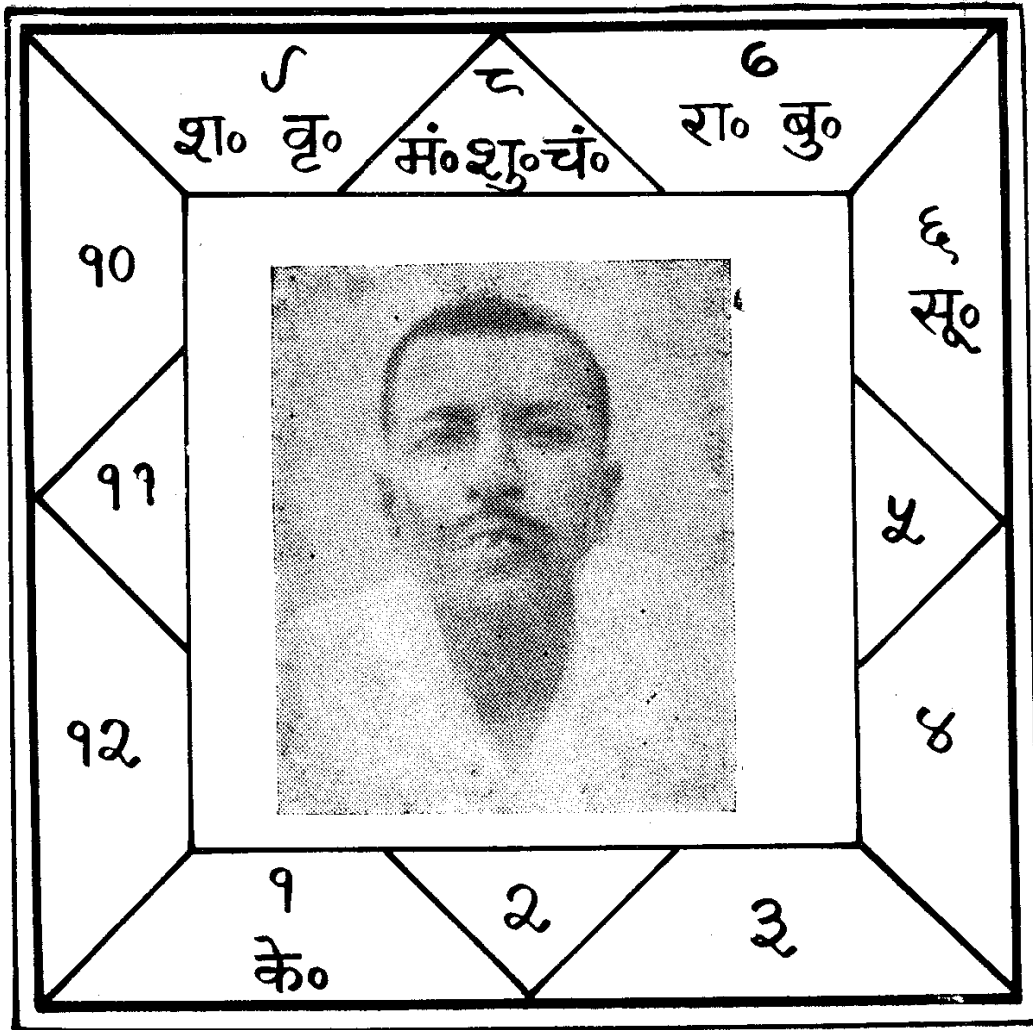
चित्र सं०-५७

श्रीयुत् बाबू ब्रह्मदेव पाण्डेय, डालटेनगंज

जन्म ता० १६-१०-१९०१

इष्ट १०।०
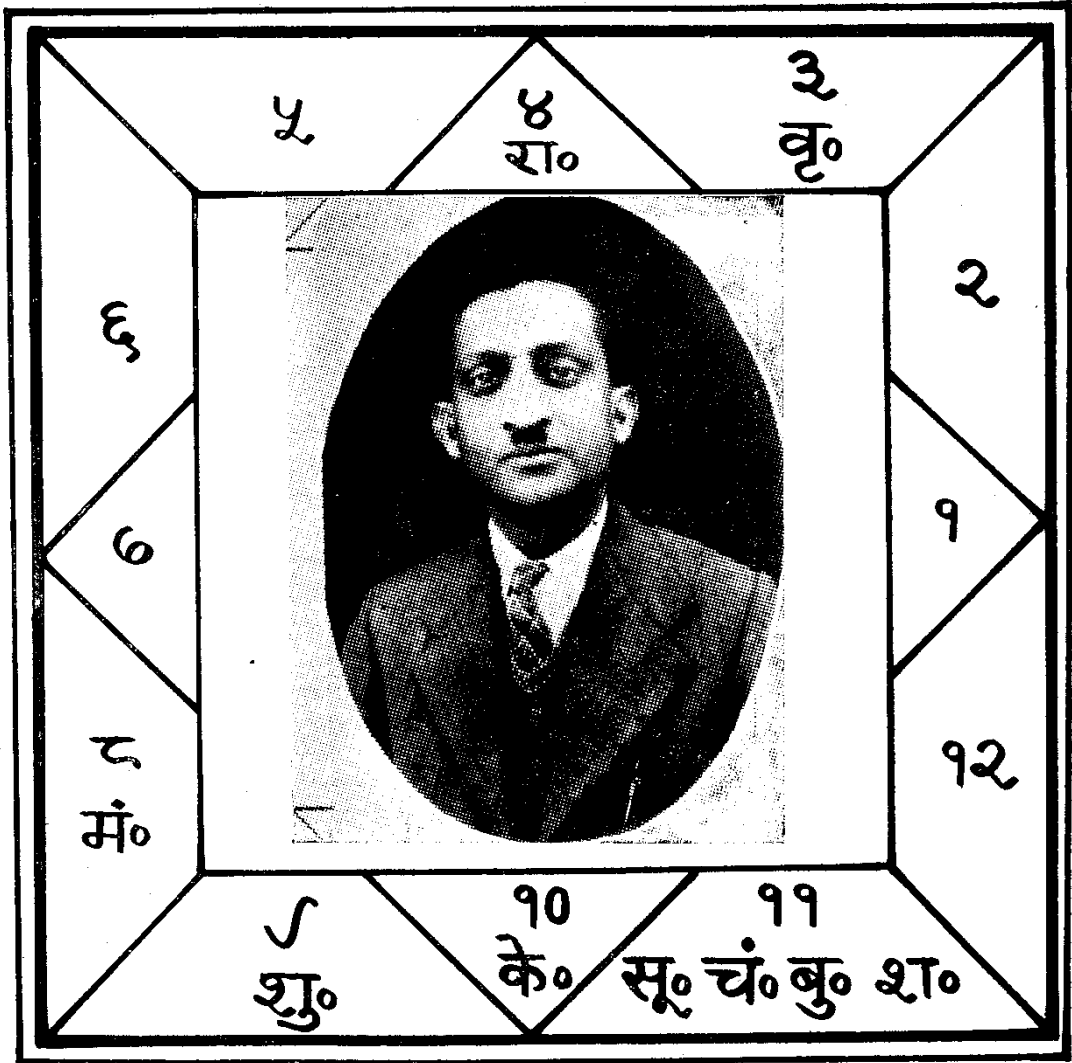
चित्र सं०-५८

श्री श्रीराम भार्गव, अधिवक्ता, दिल्ली

जन्म ता० १३-२-१९०७ ई०

इष्ट २२।४०

चित्र सं०-५९

श्री पं० विंध्याचल पाठक

जन्म ता० १-१२-१९०५ ई०

इष्ट ४०।५

चित्र सं०-६०

श्री बाबू राजेन्द्र सिंह, रईस, रमुना, पालामऊ

जन्म २०-१०-१९२५ ई०

इष्ट ३।१२

चित्र सं०-६१

स्व० बाबू लक्ष्मीनारायण वर्मा

जन्म ता० ९-७-१८८३ ई०

इष्ट ५३।२२
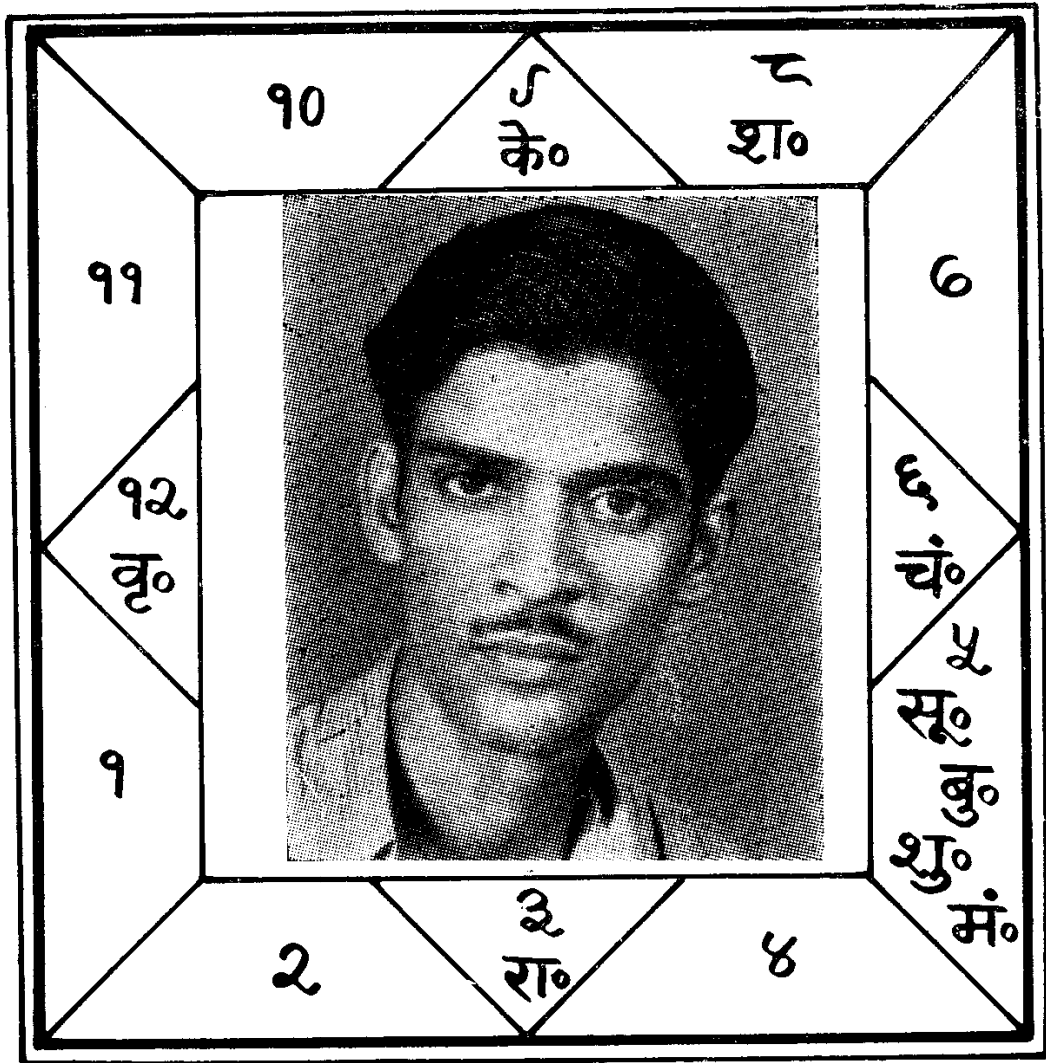
चित्र सं०-६४

श्री राधिका शरण लाल

जन्म ता० ३०-८-१९२७ ई०

चित्र सं०-६५

श्री सूर्यनारायण वर्मा

जन्म ता० २४-११-१९१३ ई०
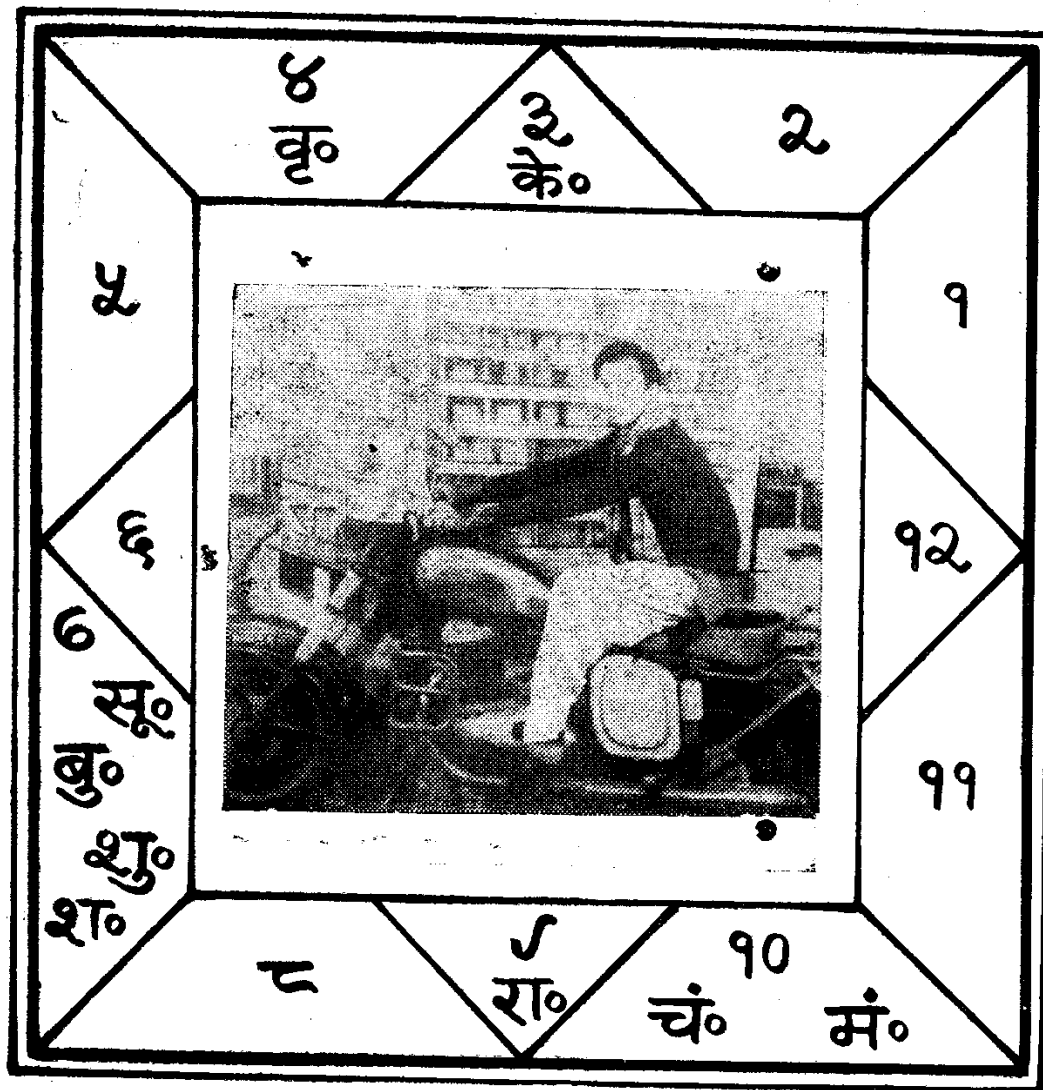
चित्र सं०-६६

श्री रामाधार चौबे

जन्म सं० २०११ कार्तिक शुक्ल ८ बुधवार

इष्ट ३६।०
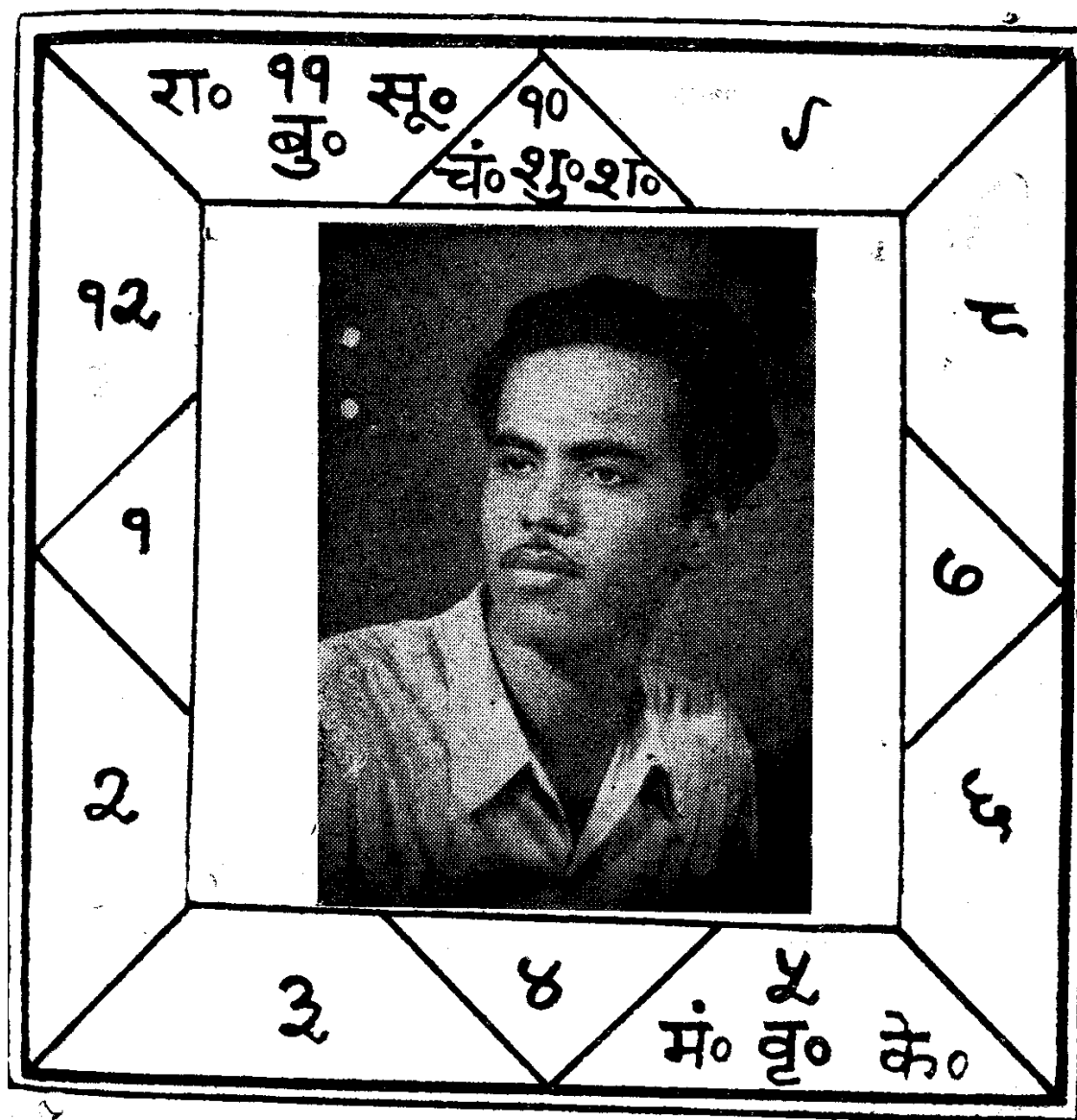
चित्र सं०-६७

श्री शिवजी श्रीवास्तव

जन्म सं० १९८९ श० १८५४

फा० कृष्ण १३

चित्र सं०-६८

श्रीयुत चित्तरंजन सिंह
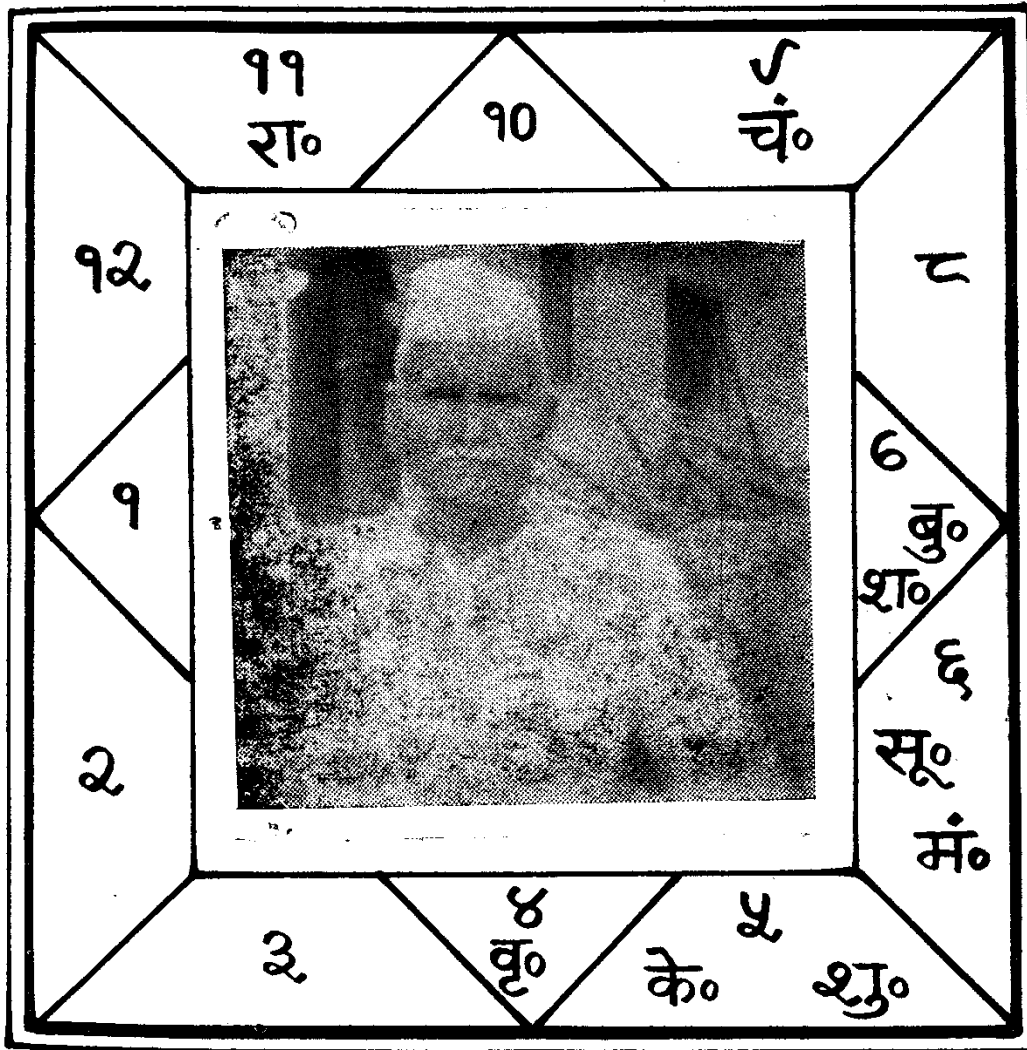
चित्र सं०-६९

श्री बाबू रामेश्वर सिंह, रईस, रमुना, पालामऊ

जन्म सं० १९५२ श० १८१७ आश्विन शुक्ल ८ गुरुवार

इष्ट २२।०
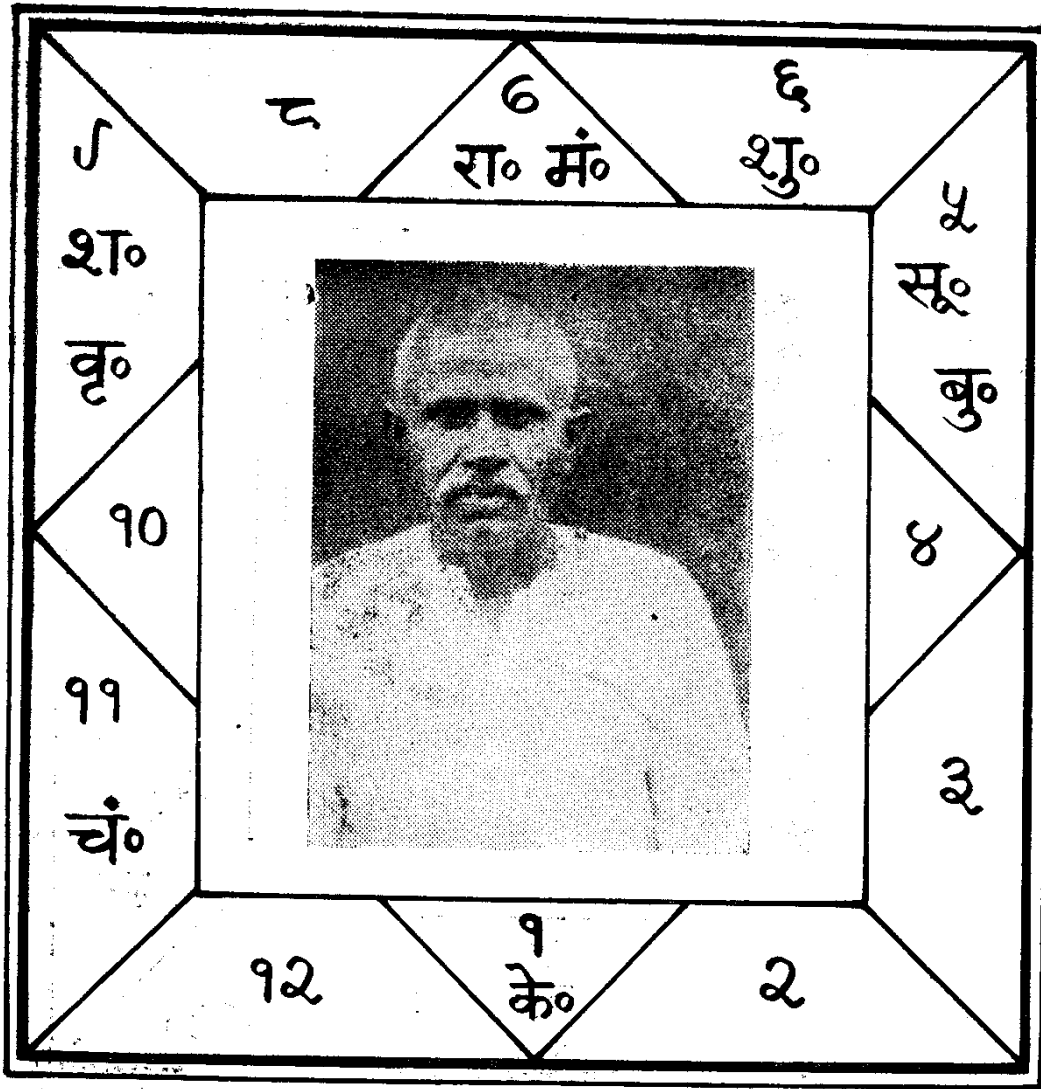
चित्र सं०-७०

स्व० पं० रामनारायण चौबे, मँडरा, पालामऊ
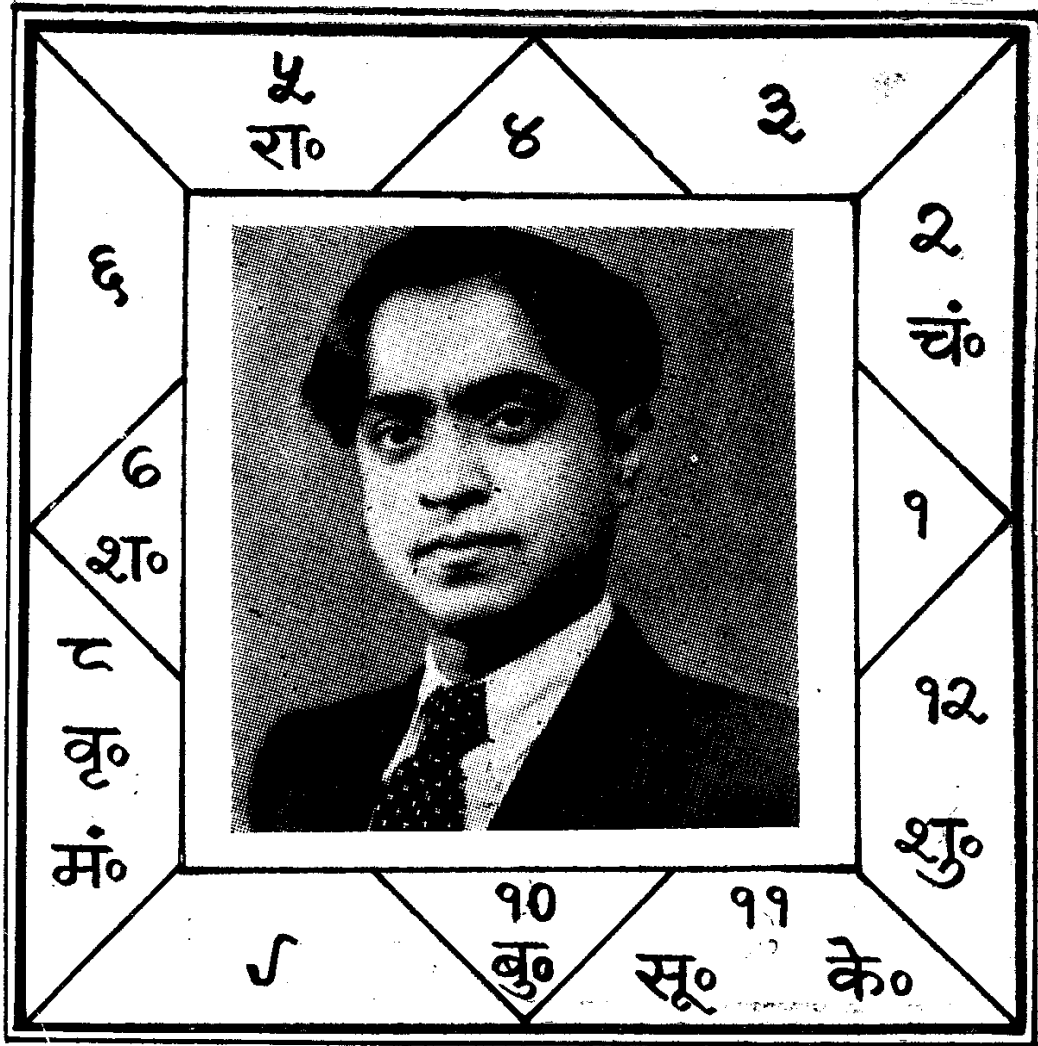
चित्र सं०-७१

श्री भीष्म प्रसाद

जन्म सं० १९८० श० १८४५ माघ शुक्ल ८ बुधवार

इष्ट २७।१४

चित्र सं०-७२

स्व० पं० दीनदयाल उपाध्याय

चित्र सं०-७३

श्री बाबू वीरेन्द्र प्रसाद सिंह, बी० ए०,
मुखिया, ग्रामपंचायत, मड़वनियाँ, पालामऊ
जन्म सं० १९८७ श० १८५२ आषाढ़ शुक्ल ४ सोमवार
इष्ट ४०।४५
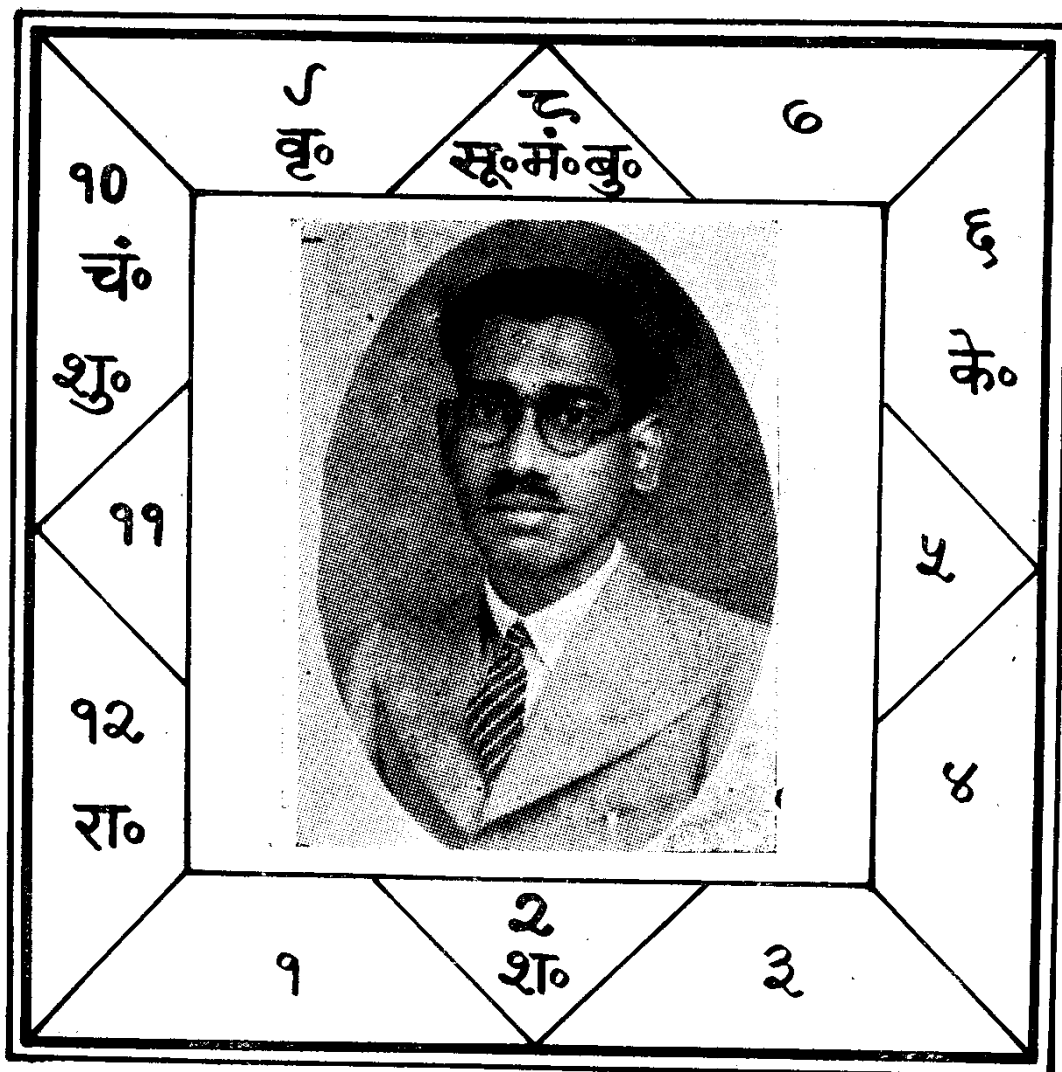
चित्र सं०-७४

श्री एस० गोपाल राव

जन्म ता० १३-१२-१९१२ ई०

जन्म समय ५ बजकर १० मिनट पर भोर में

चित्र सं०-७५

श्री आदित्यानन्द त्रिपाठी

जन्म सं० १९९५ श० १८५० आषाढ़ शुक्ल चतुर्थी
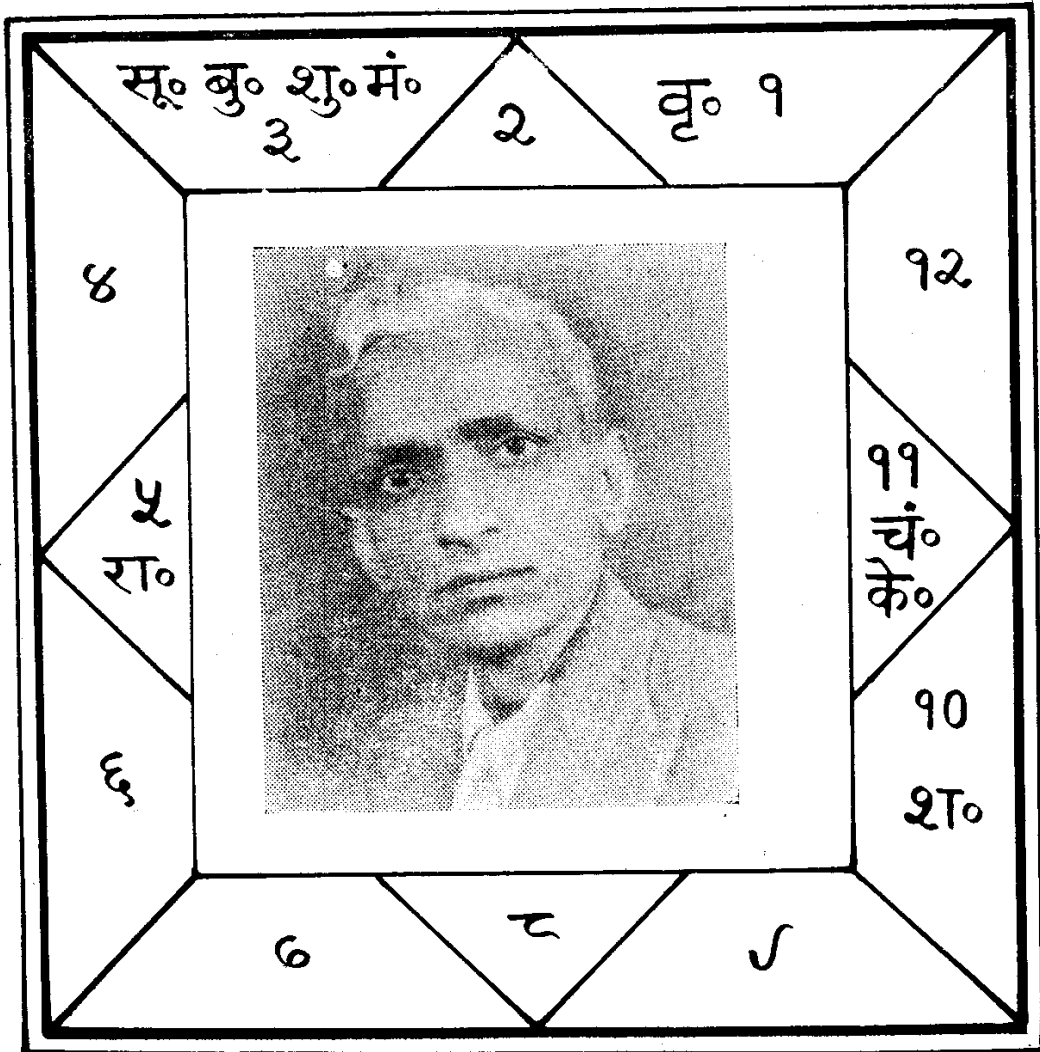
चित्र सं०-७६
श्री चन्द्रशेखर प्रसाद वर्मा
जन्म सं० १९६१ आषाढ़ कृष्ण ४ शुक्रवार
जन्म ता० १ जुलाई १९०४ ई०,
इष्ट ५२।३३
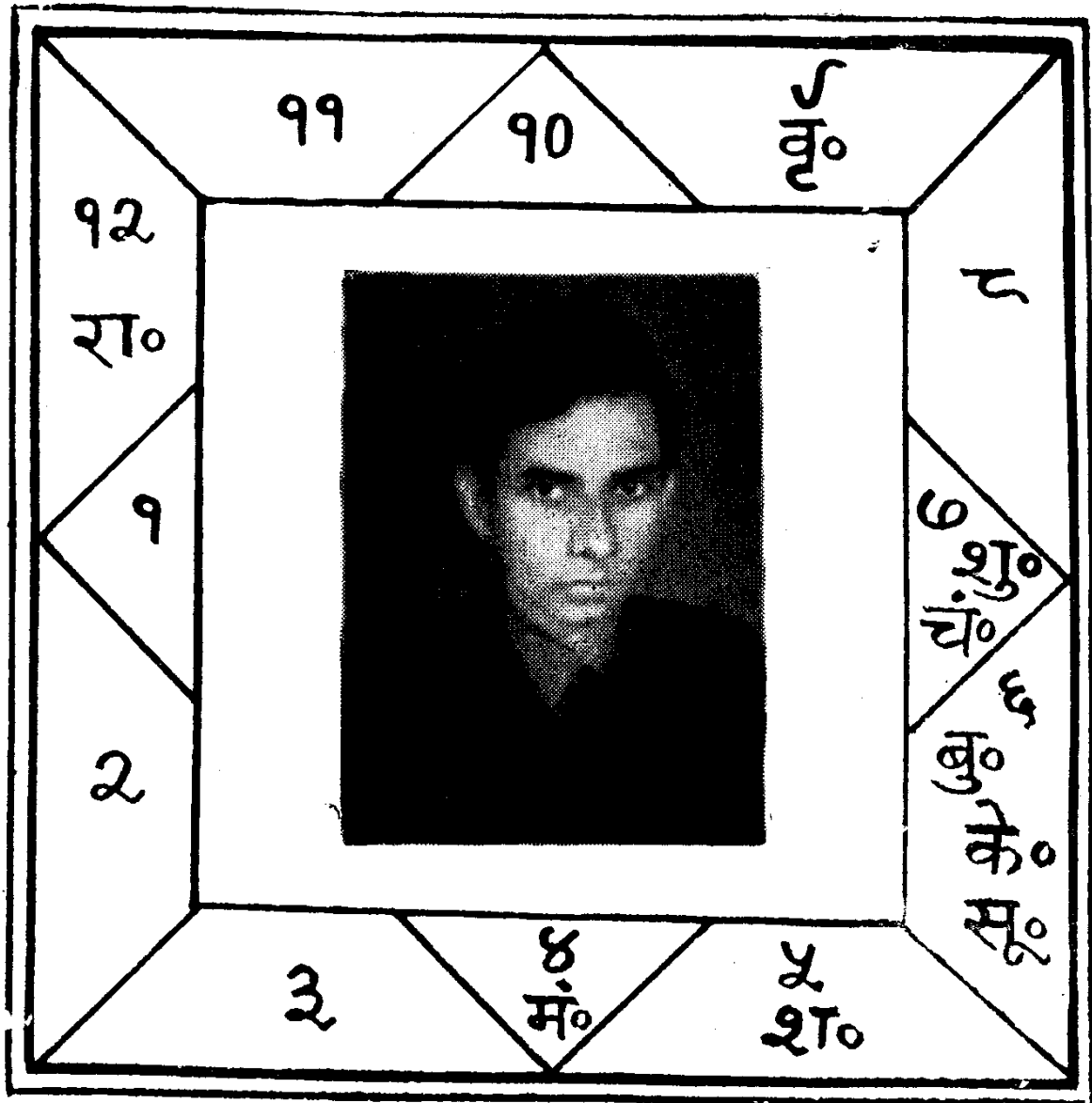
चित्र सं०-७७

श्री गणेश कुमार सिंह

जन्म ता० २५-९-१९४९ ई०
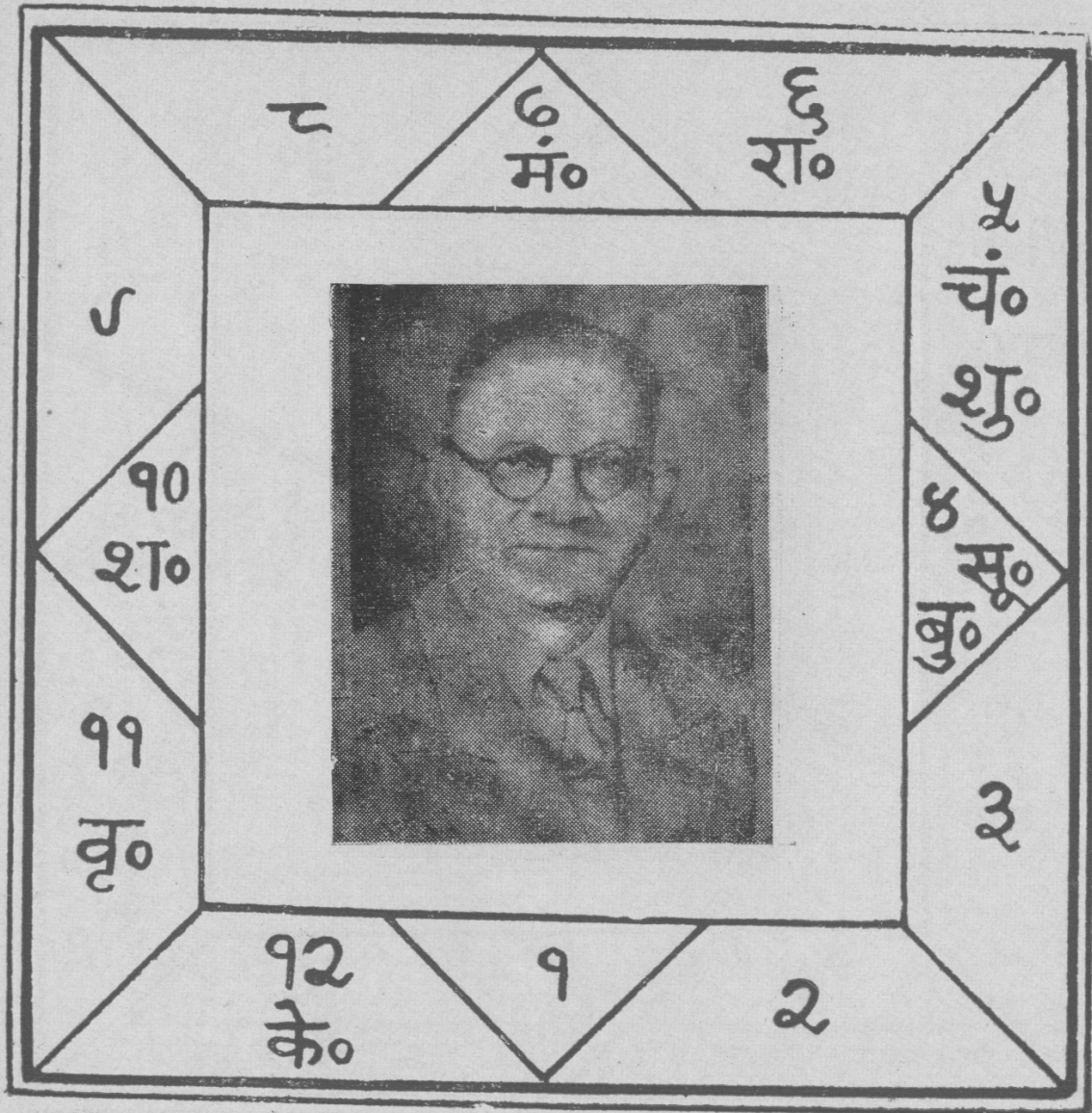
चित्र सं०-७८
लेखक, बाबू रामाधार सिंह
जन्म दिन २७-७-१९०३ ई०
इष्ट १७।१५
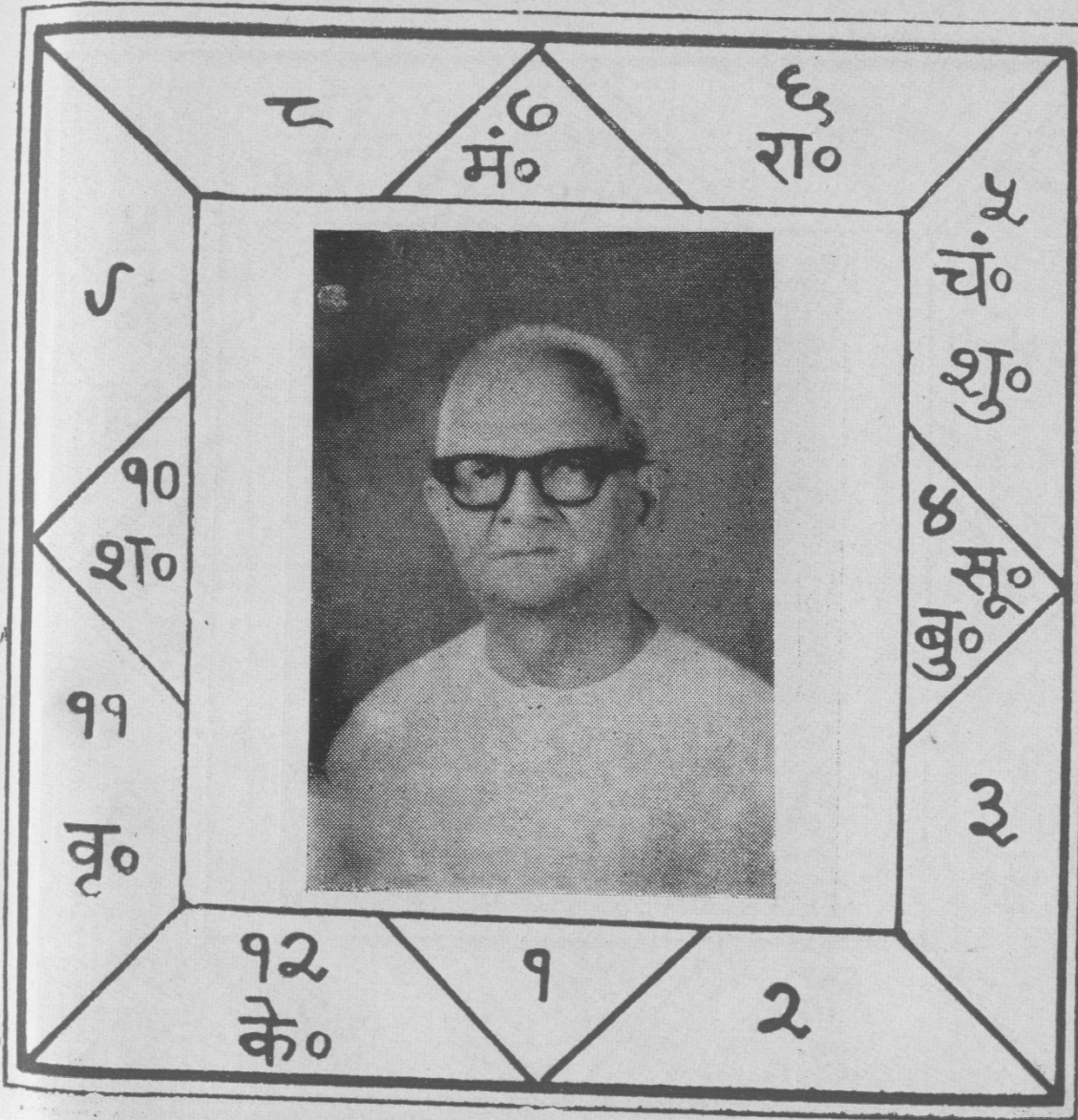
चित्र सं०-७९

लेखक, बाबू रामाधार सिंह
जन्म दि० २७-७-१९०३ ई०
इष्ट १७।१५
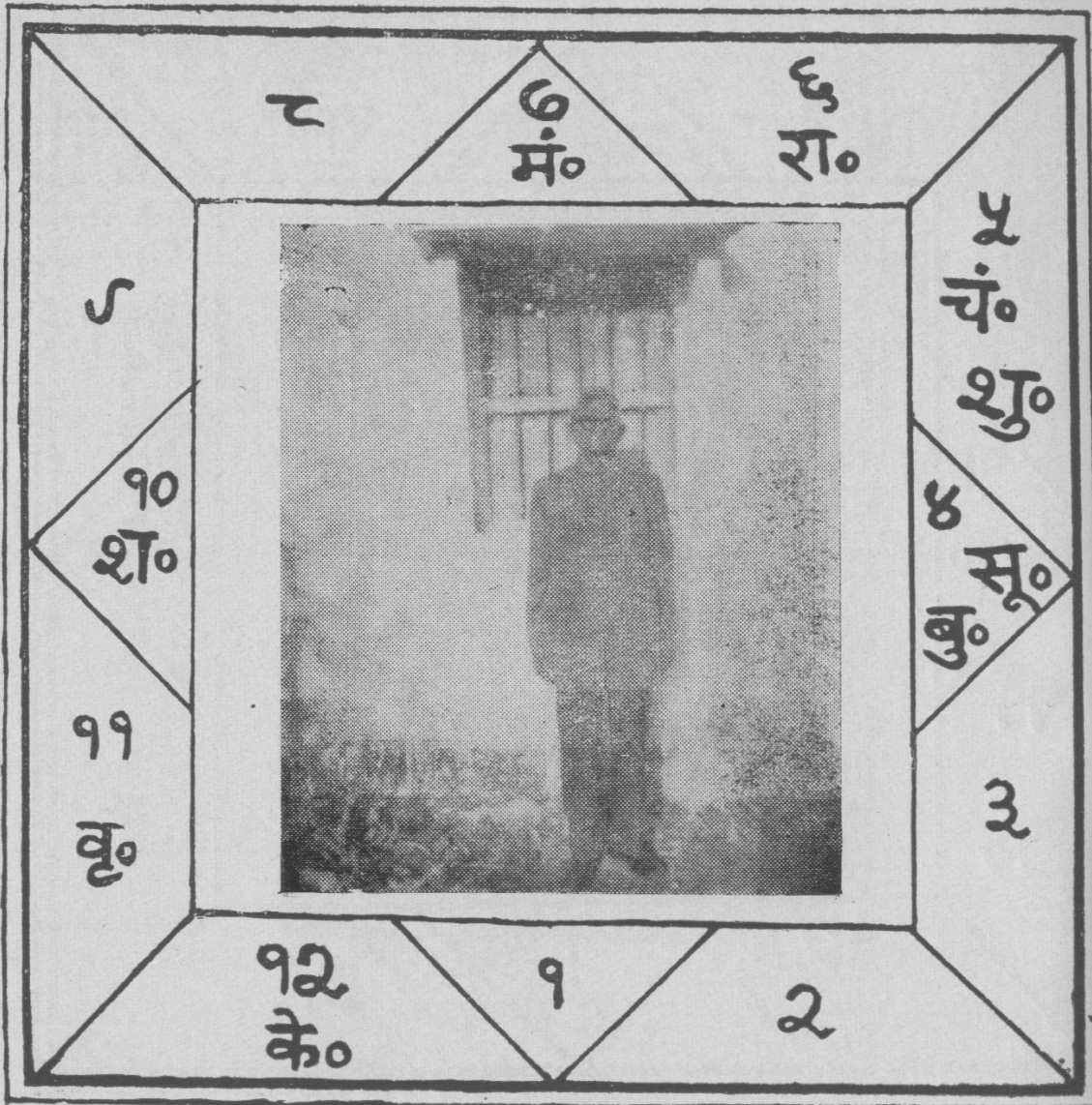
चित्र सं०-८०

लेखक, बाबू रामाधार सिंह
जन्म दिन २७-७-१९०३ ई०
इष्ट १७।१५
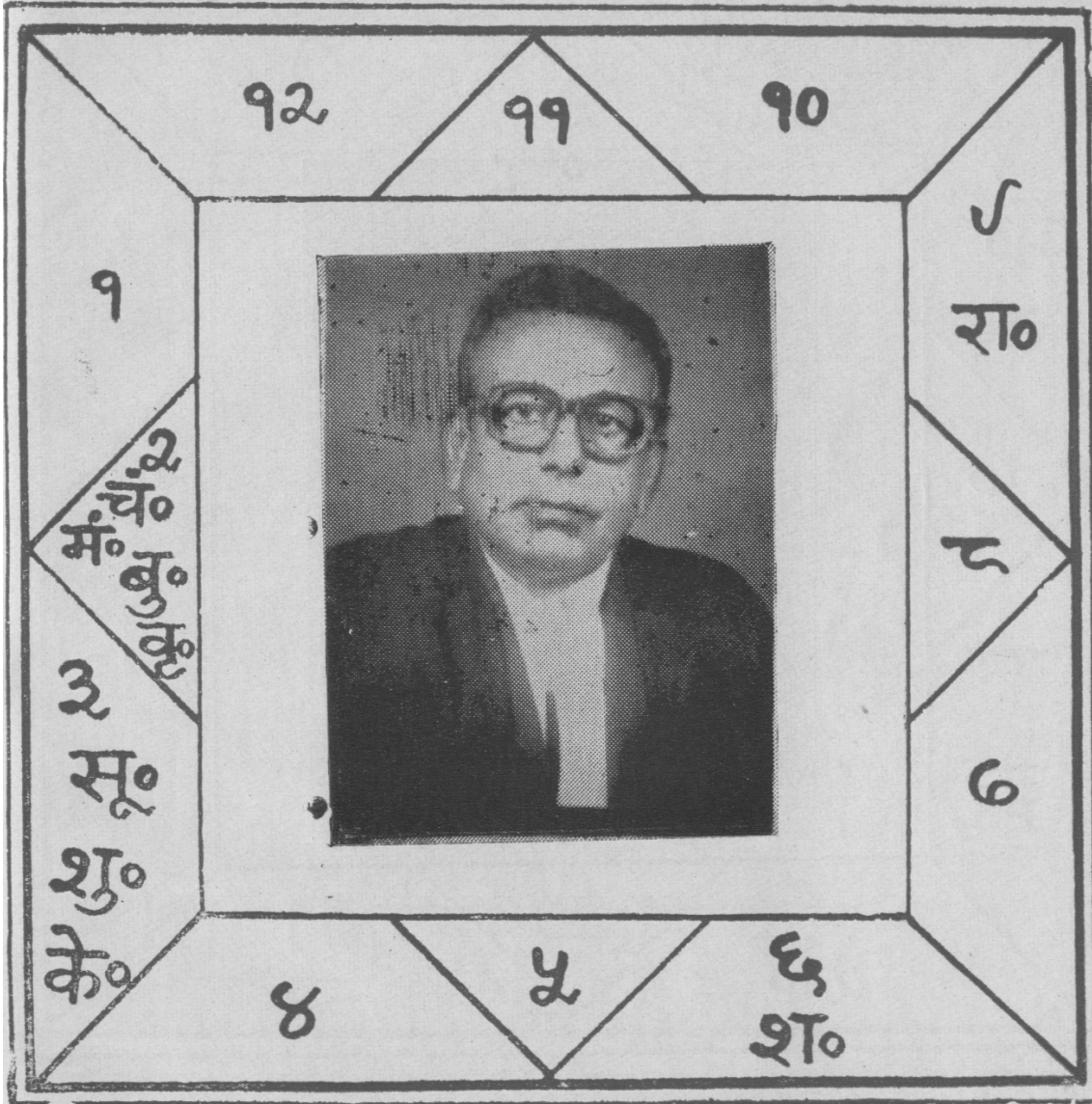
चित्र सं०-८१

श्री यमुना प्रसाद वकील, गढ़वा

जन्म ता० १८ जून, १९११ ई०

चित्र सं०-८२

श्री नवीन सिंह उर्फ लड्डू

जन्म दिनांक १४ सितम्बर १९५९ ई० चन्द्रवार

समय २ बजकर ५५ मिनट पर रात्रि में
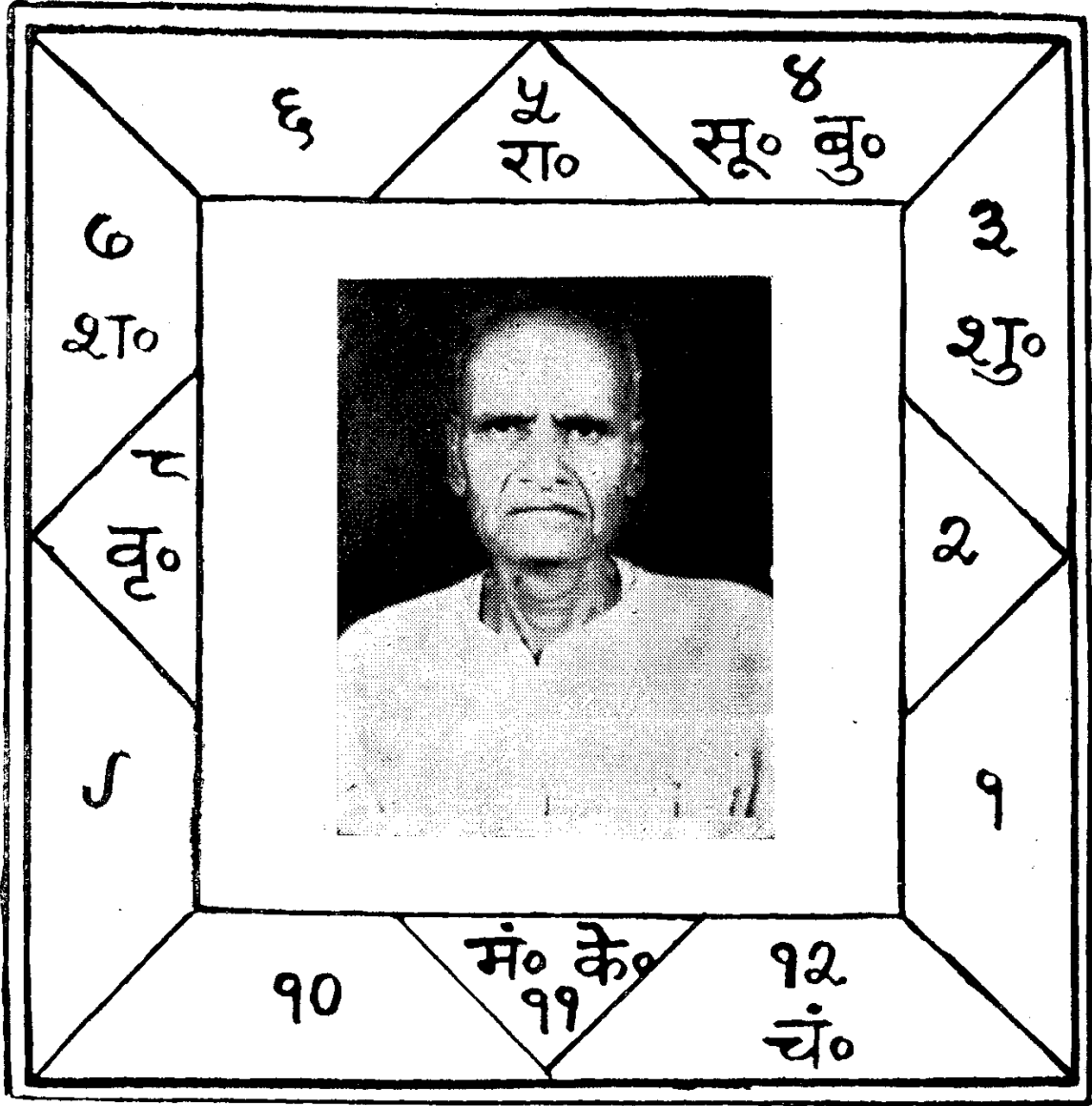
चित्र सं०-८३

श्री राम प्रसाद सिंह, रमुना

जन्म सं० १९८१ श० १८४६ श्रावण कृष्ण ५ मी सोम०

इष्ट ७।५७

चित्र सं०-८६

स्व० श्री यदुवंश सहाय, वकील, विधायक, बिहार

जन्म ता० ११-१-१९०१ ई०, शुक्रवार
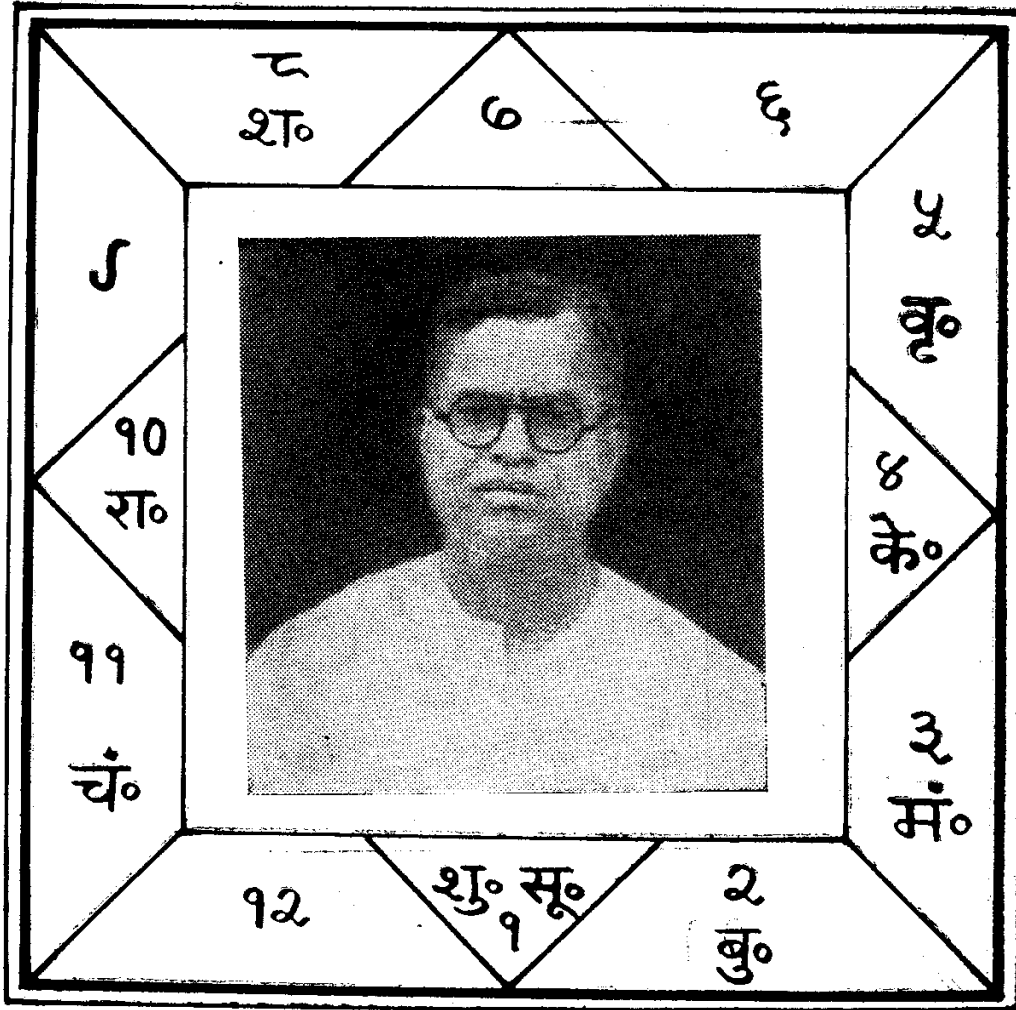
चित्र सं० ८७

स्व० बाबू पशुपतिनाथ सिंह, वकील, डालटेनगंज

जन्म सं० १९५४ वैशाख कृष्ण ११ मंगलवार,

जन्म ता० २६ अप्रिल, १९९८ ई०

इष्ट २९।१९
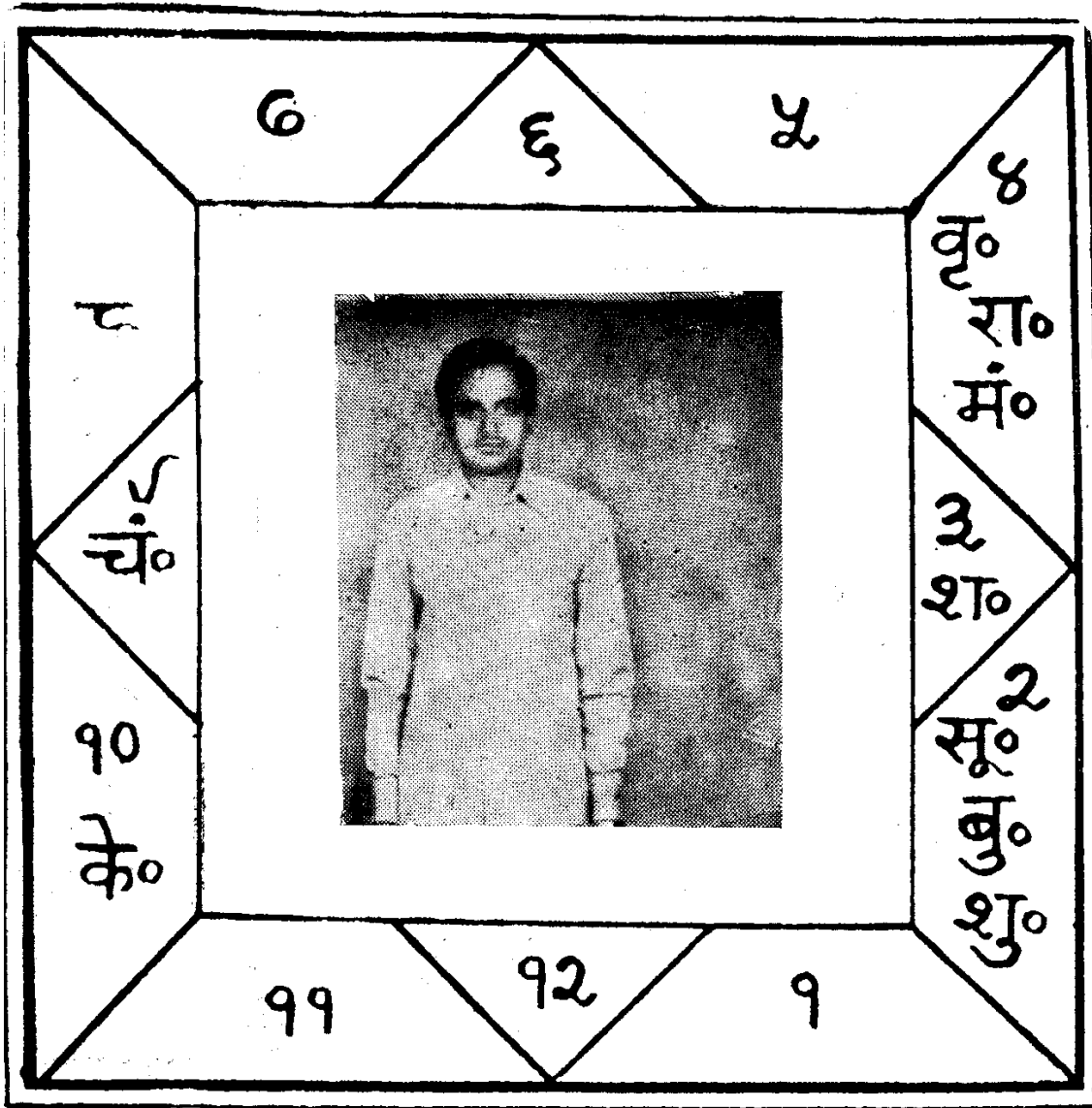
चित्र सं०-८८

श्री भगवान तिवारी, प्रिंसिपल, नामधारी कॉलेज, गढ़वा

जन्म ता० ८-६-१९४४ ई०
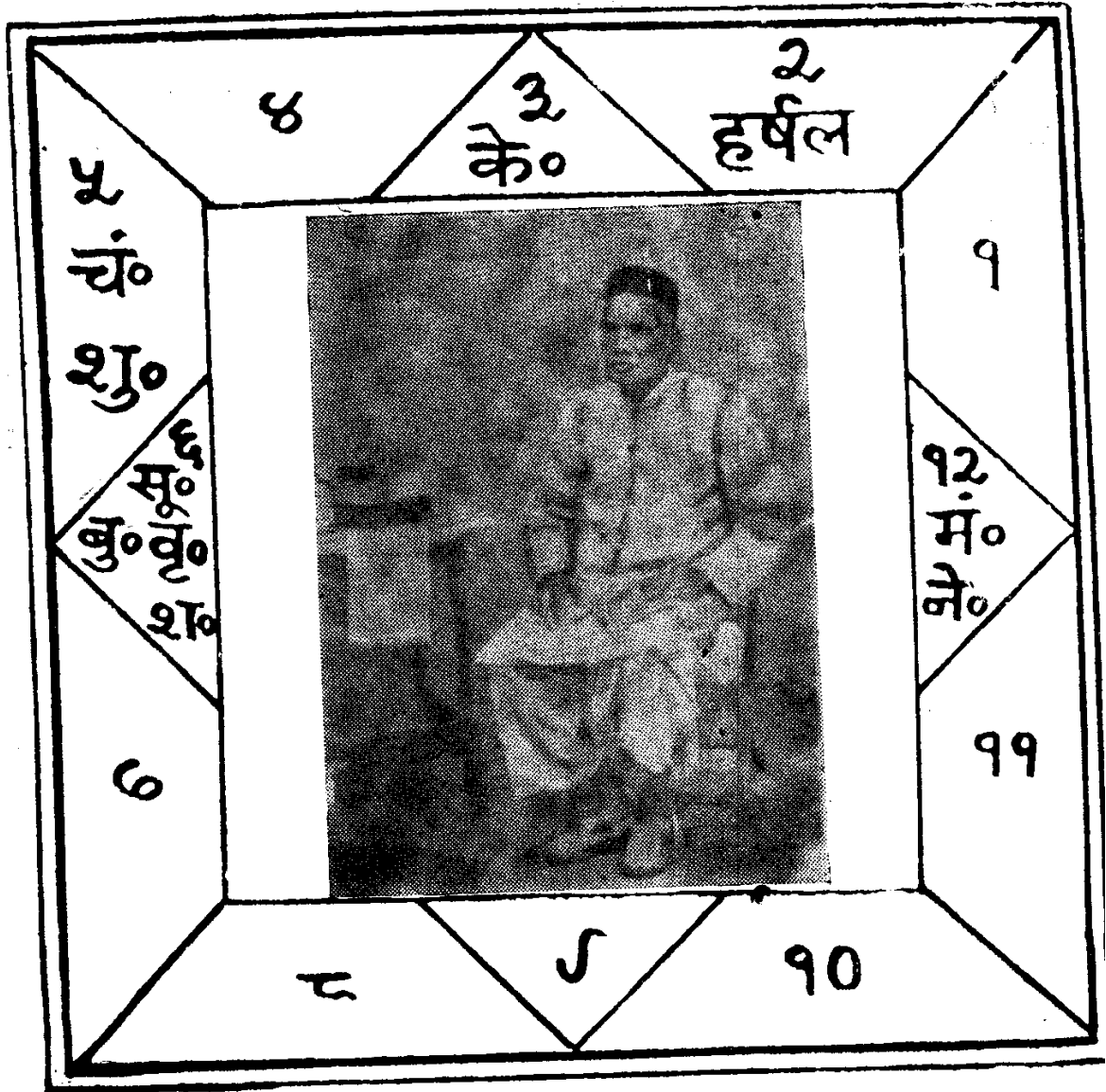
चित्र सं०-८९

श्री रामफल लाल, ज्योतिषी

जन्म ता० २१ सितम्बर, १८६२ ई० रविवार, आधी रात
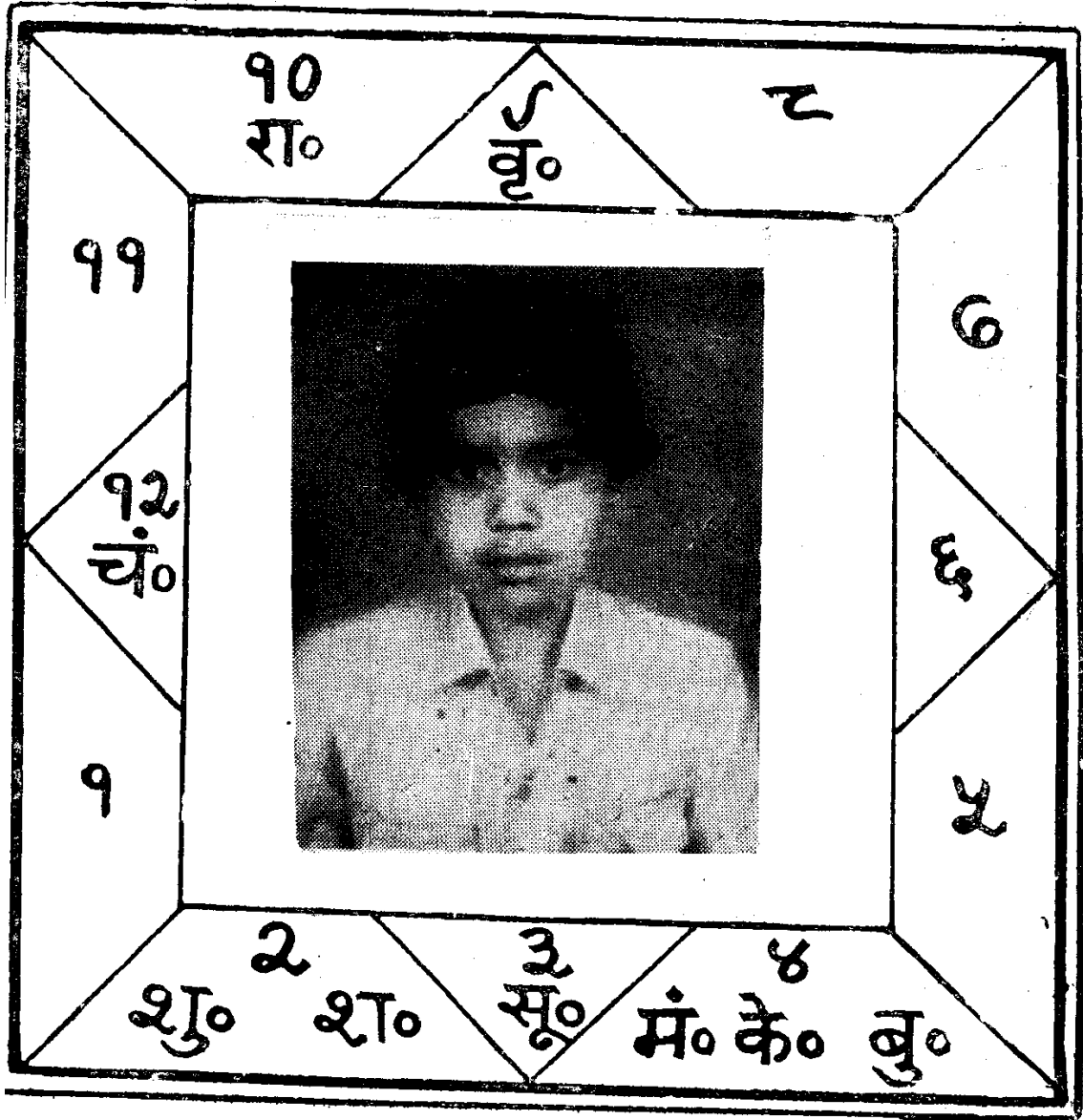
चित्र सं०-९०

श्री अरविन्द पाठक

जन्म ता० ४-७-१९७२ ई०
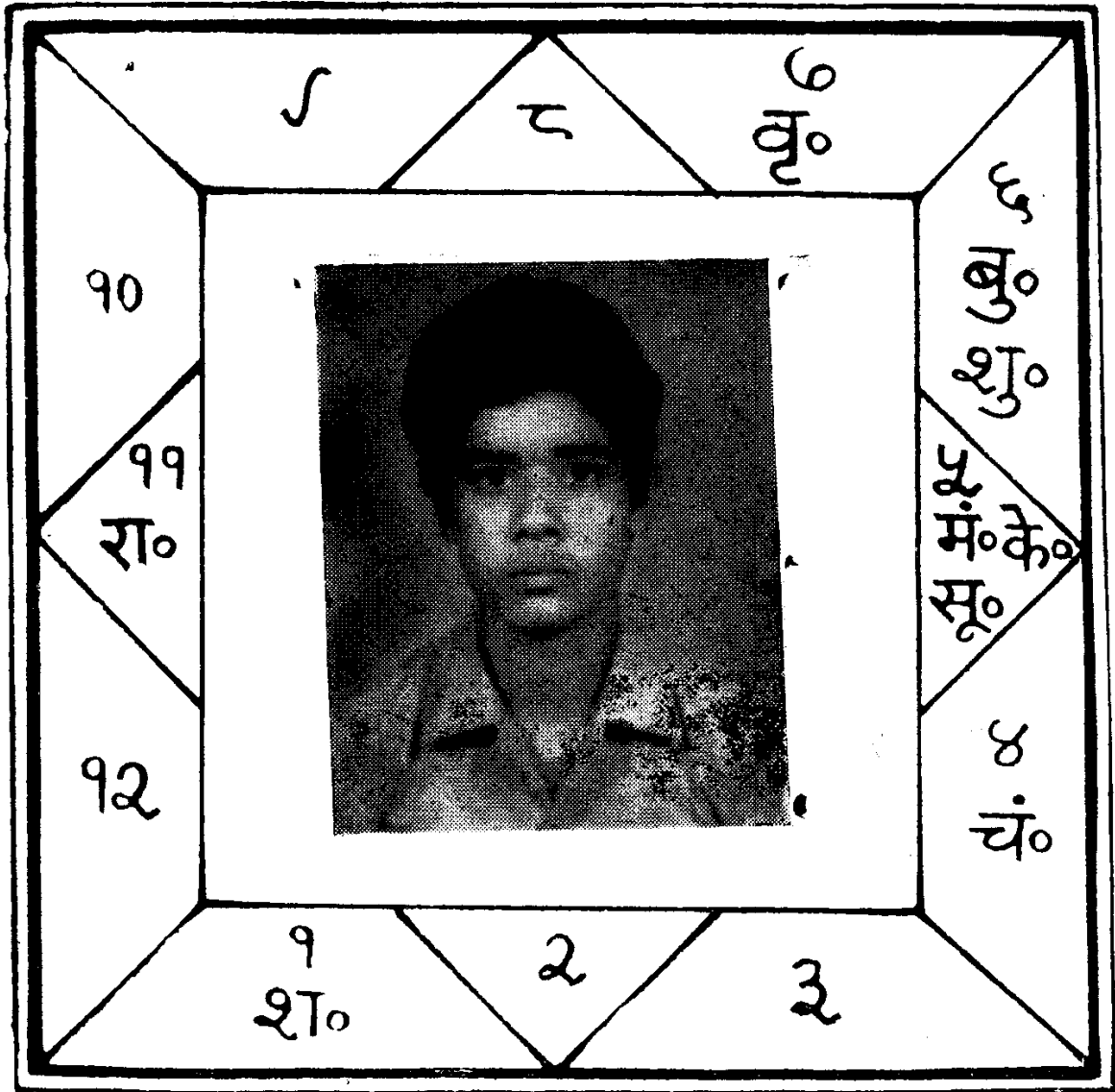
चित्र सं०-९१

श्री उमाकान्त पाठक

जन्म ता० २९-८-१९७० ई०
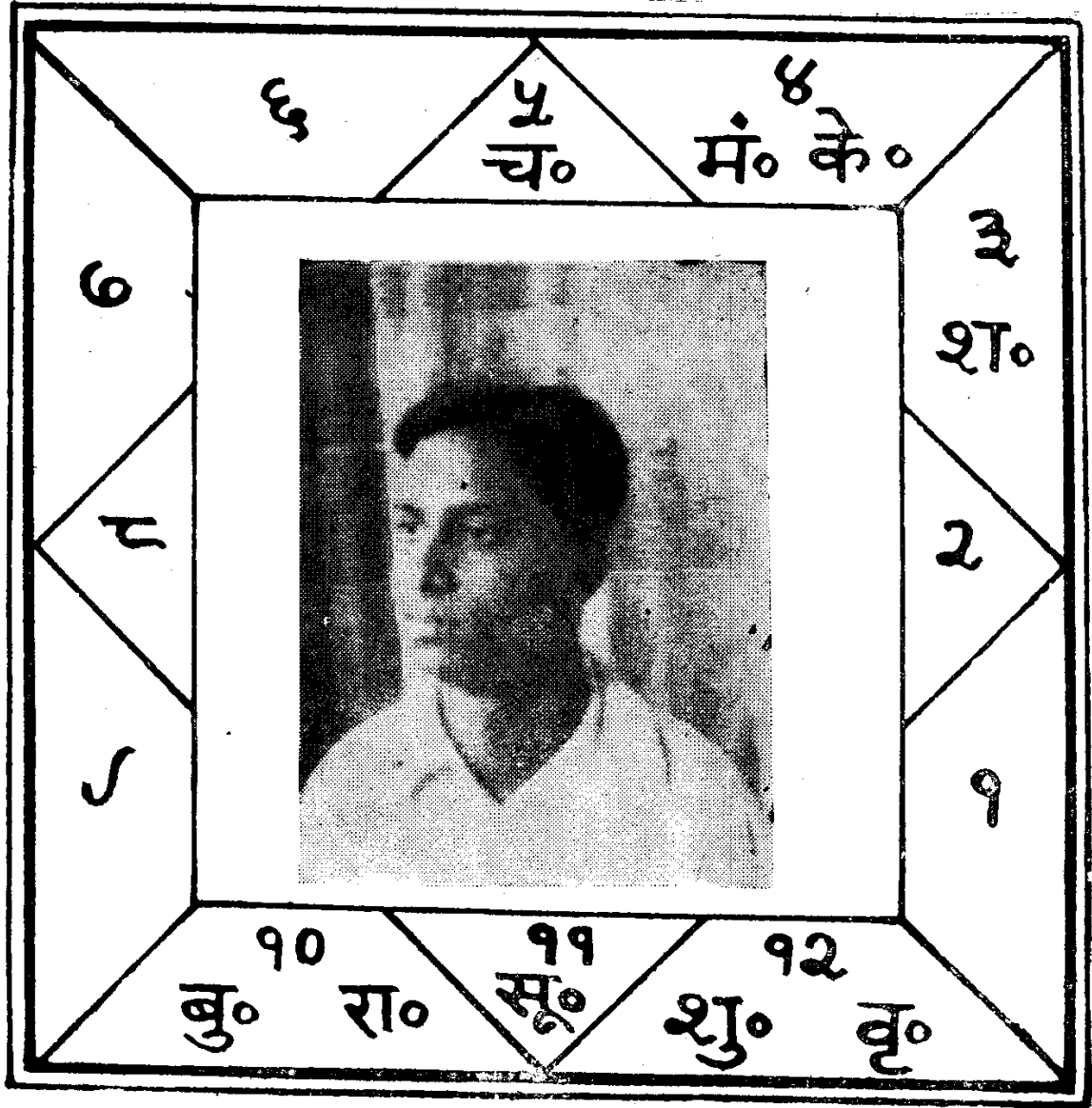
चित्र सं०-९२

श्री रवीन्द्रनाथ गुप्त

जन्म तारीख २०-२-१९१६
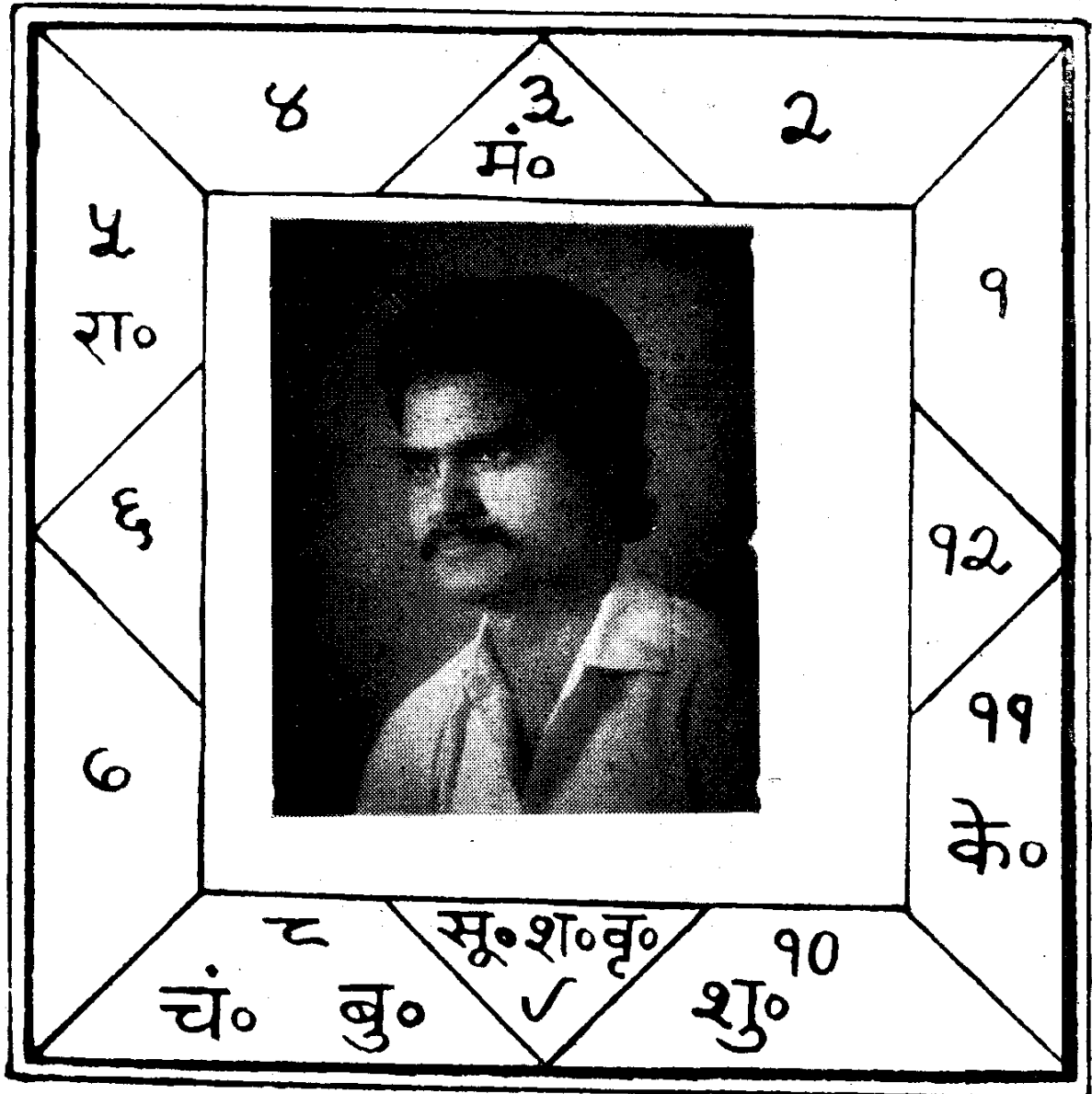
चित्र सं०-९३

श्री राम कुमार

जन्म ता० १७-१२-१९६० ई०
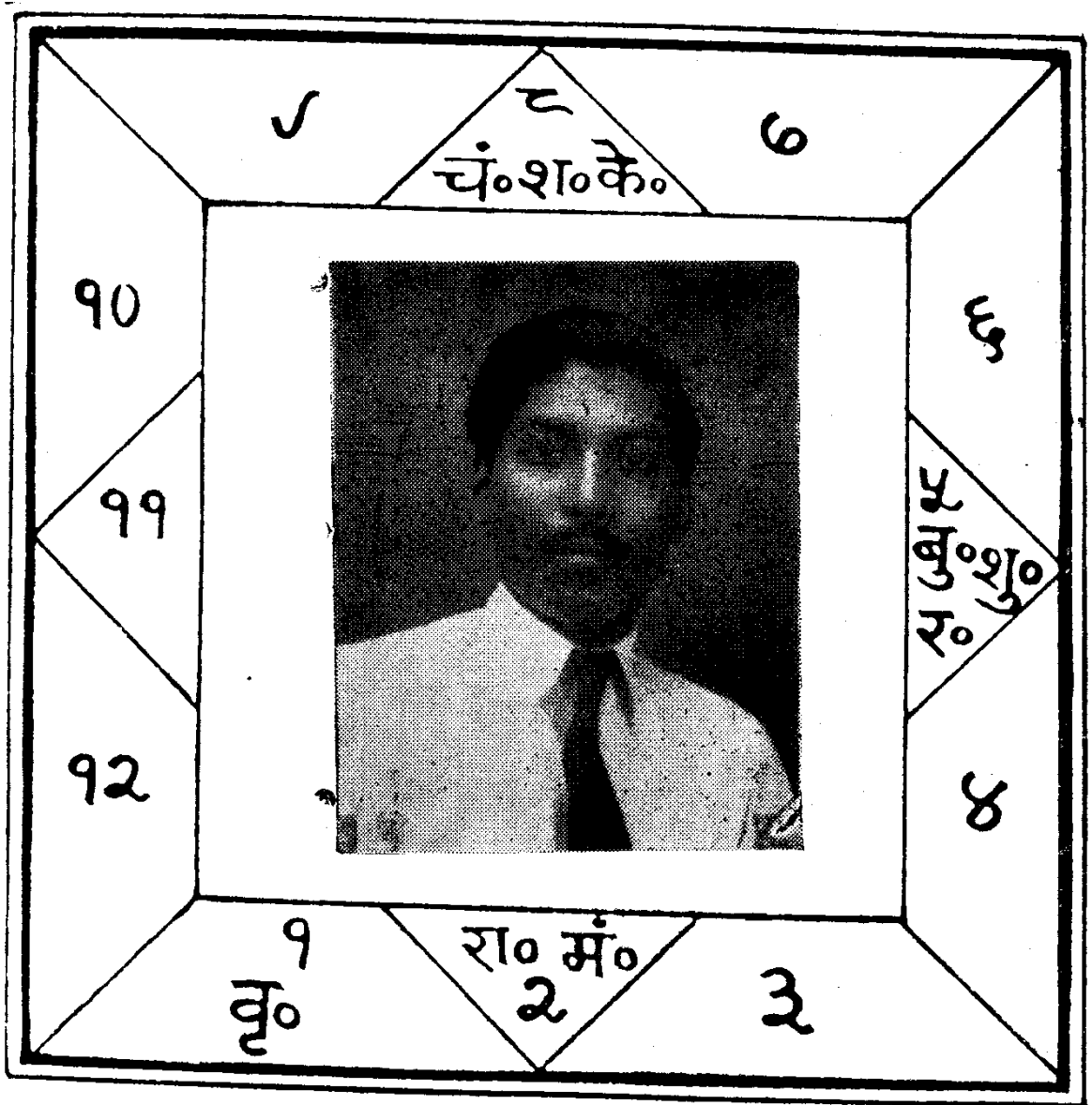
चित्र सं०-९४

डॉ० महेश्वर कुमार
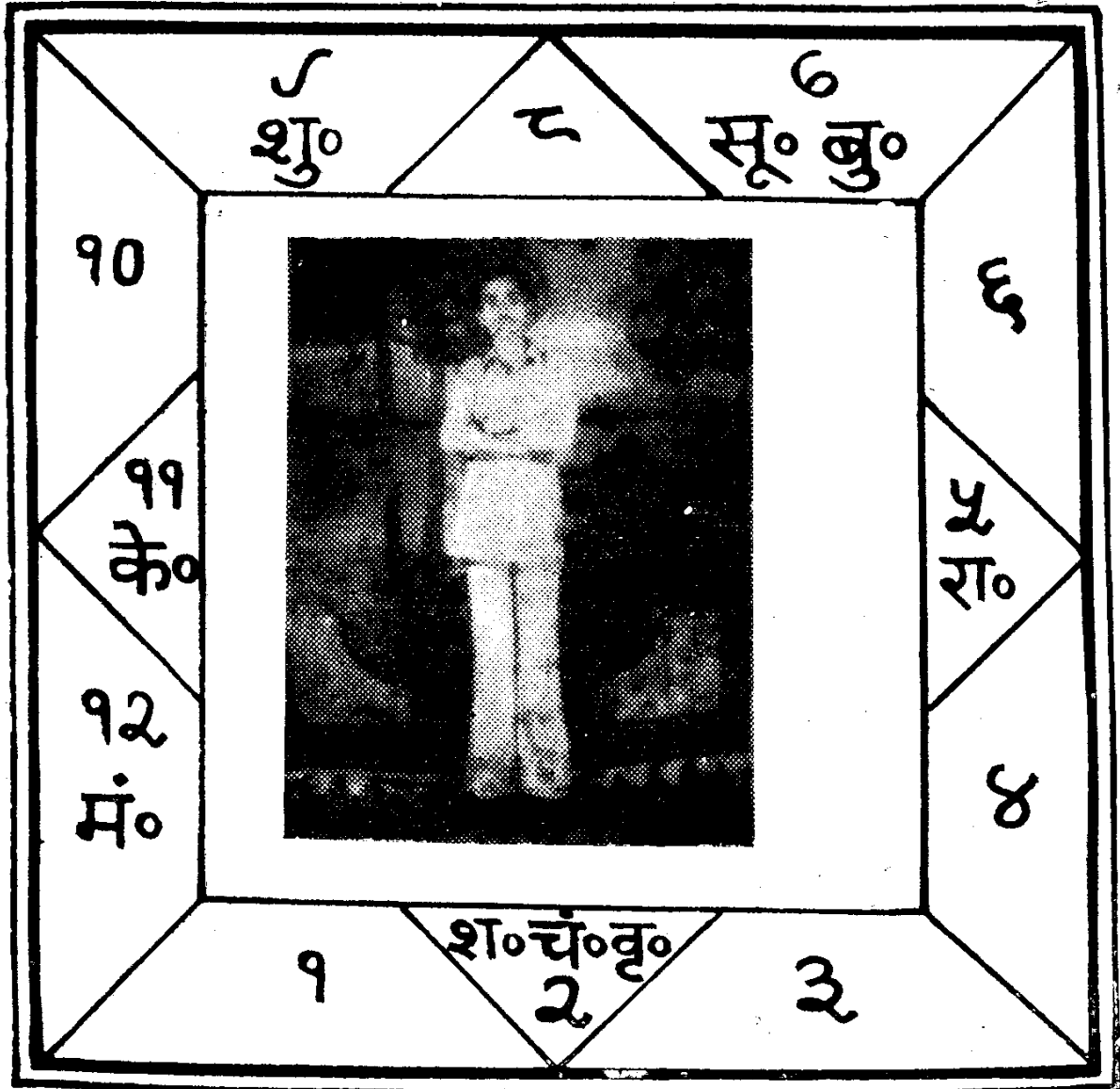
चित्र सं०-९५

श्री श्यामा प्रसाद द्विवेदी

जन्म तारीख ६-११-१९४१ ई०, समय ७।५९ प्रातः

ग्रंथ में जितने सिद्धांत ग्रहों और लग्नों की अचूक पहचान के दिए गए हैं उन सभी के आदर्श चित्र की नाईं इस चित्र को पाठकों के सामने ध्यानपूर्वक अध्ययन और मनन के लिए दिया जा रहा है।

विस्तृत विवेचन न कर सूक्ष्म रूप से पाठकों की जिज्ञासा जागृत करने के लिए मात्र कुछ आधारभूत लक्षणों की ओर संकेत मात्र कर दिया जा रहा है। मनोयोगपूर्वक ध्यानगम्य हो जाने पर सिद्धांतों के चिह्नों तथा लक्षणों को यहाँ प्रदर्शित पाकर पाठकों को बड़ा आनन्द एवं मार्ग-दर्शन होगा।

देखें—

१. लम्बाई
२. एकहरा एवं छरहरा बदन
३. अस्थिपंजर की दीर्घता
४. जोड़ों का ढीलापन
५. मेदहीनता
६. नसों की प्रधानता
७. वर्तुलाकार आँखें
८. धनुषाकार भौहें
९. दूज चाँद-सा ललाट
१०. चिंतनपरक भंगिमा और आभास
११. विशेष तीक्ष्ण बुद्धि और तर्कसंगत निष्कर्ष शक्ति
१२. लग्नेश स्थित राशि की मुखाकृति
१३. उसके पार्श्व में केतु की स्थिति
१४. वृहस्पति के प्रतीकात्मक लक्षणों का पूरा अभाव।

इन सभी के सिद्धान्त गणित में वर्णित हैं।